Social Life of India in the Thirteenth and Fourteenth Centuries as Depicted through Contemporary Hindi Literature

तेरहवीं तथा चौदहवीं शताब्दियों के समकालीन हिन्दी साहित्य में चित्रित भारत का सामाजिक जीवन

(इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी. फिल. उपाधि हेतु प्रस्तुत)
शोध प्रबन्ध

शोधकर्त्री
कु० अलका सिंह

निर्देशक
डा० हेरम्ब चतुर्वेदी
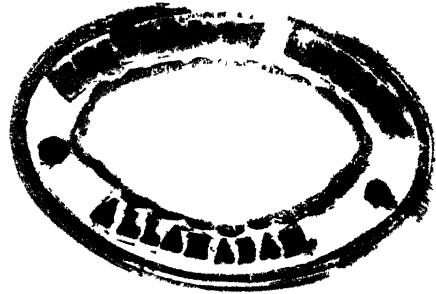
मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

१९९३

x x x x x
x x x
x

प्रेरणा, स्नेह और विश्वास

की प्रतिमूर्ति

पूज्यनीय डा0 शीला सिंह व डा0 विजय कीर्ति प्रताप सिंह चौहान

तथा

पिता श्री उदयवीर सिंह राठौर

और

माँ श्रीमती ऊषा सिंह राठौर के चरणों में

सादर समर्पित

x x x x x
x x x
x

विषय सूची

xxxxxxxx
xxxxxx
xxxxx
xxx
x

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी0 फिल उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध प्रबंध " तेरहवीं तथा चौदहवीं शताब्दियों के समकालीन हिन्दी साहित्य में चित्रित भारत का सामाजिक जीवन:-

इसमें तेरहवीं तथा चौदहवी शताब्दियों के सामाजिक आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक तथा संस्कृति अध्ययन का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया है।

साहित्य और समाज का संबंध सदैव अनन्य और अपूर्व माना जाता है। साहित्य समाज का प्रतिबिंब है, इस उक्ति के साथ साहित्य और समाज को एक दूसरे का प्रतिरूप और आदर्श माना जाता है। जो समाज में अनुपलब्ध है वह साहित्य में उपलब्ध है। और जो साहित्य में अनुपलब्ध है वह समाज में मिल जाता है। अतः किसी भी युग देश काल में किसी भी समाज में मिल जाता है। अतः किसी भी युग देश काल में किसी भी समाज को जीवन धारा को सभी क्षेत्रों विषयों और प्रसंगों में देखने के लिए तात्कालीन साहित्य एक बहुआयामी आधार और कुछ अंशों में प्रमाण भी होता है। साहित्य से ही हमें किसी समाज के विश्वास विचार परम्परा उद्देश्य कार्य और लक्ष्य की स्पष्ट अभिव्यक्ति होती है। क्यों कि साहित्य उस समाज के स्रोत दर्शन आधार संगठन प्रणाली और पद्धति को तथ्यों घटनाओं और चरित्रों के माध्यम से प्रतिबिंबित करता है साथ ही साथ इतिहास राजनीति धर्म, संस्कृति सभ्यता, कला से भी प्रेरणा गति व शक्ति प्राप्त करता है। ये सम्बन्धित देश, काल और युग में विचार कर्म और अनुभूति करते नायकों प्रतिनायकों घटनाओं, कार्य और स्थितियों के साथ-साथ सामान्य जन को इससे प्रभावित जीवन स्थितियों का भी स्पष्ट चित्रण करता है।

सार रूप में साहित्य किसी भी देश काल युग के विशिष्ट जनों और सामान्य जनों दोनों की स्पष्ट और बेबाक उनके विचारों व्यवहारों कार्यों और सुख-दुख के अनुभूतियों से चित्रण करता है। अतः साहित्य को समाज की जीवन -धारा चेतना, विचार , आदर्श, मूल्य व्यवहार और प्रगति अवनति सुख-दुख एक सामान्य और बेबाक लेखा जोखा माना जा सकता है ।

यहाँ साहित्य किसी भी समाज के जीवन को कल्पना विचार और अनभूति के साथ प्रस्तुत करने वाला कलात्मक साक्ष्य होता है । वहीं दूसरी ओर इतिहास उस समाज के सार्वदेशिक शक्तियों तथ्यों घटनाओं कार्य परिणामों और विशिष्ट जनों के उत्थान और पतन का ही वस्तुनिष्ठ लेखा -जोखा प्रस्तुत करता है । उसमें राज्य सत्ता , राज्य वंश, राजपुरुषों का ही वर्णन मिलता है । उनके ही विचार कार्य जीवन और अनुभूतियाँ इतिहास की नोधि बनती है। इसी कारण इतिहास को आधुनिक विचारक राजवंशों का इतिहास कहते हैं। जिसमें केवल सत्ताधारी पुरुषों का ही वर्णन किया जाता है लेकिन इसमें समाज व्यक्ति और जीवन अनुपस्थित होता है । इतिहास की इस असमर्थता और अभाव को केवल साहित्य ही पूर्ति करता है । साहित्य को यह भूमिका किसी भी समाज के सामाजिक जीवन का ज्ञान प्राप्त करने के लिए इतिहास के समान ही एवं सम्पूरक दस्तावेज का कार्य करता है । प्रस्तुत शोध प्रबंध में इसी धारणा के अनुसार मध्ययुगीन भारतीय समाज की जीवन शैली को साहित्यिक साक्ष्यों से खोजने और उसके रूप को स्पष्ट करने का अकिंचन प्रयास किया गया है ।

इस शोध प्रबंध के विषय की प्रेरणा और विचार मुझे अपने निर्देशक डा0 हेरम्ब चतुर्वेदी से मिली थी। उनके निर्देशन में यह दुश्कर शोध कार्य सम्पन्न हो सका है । उनकी प्रेरणा और आशीष तथा समय-समय पर बहुमूल्य निर्देशन के प्रति आभार मुक्त होना संभव नहीं है । उनके अति व्यस्त जीवन में बार-बार व्यवधान बनने की धृष्टता करते हुए मै निरन्तर उनसे दिशा निर्देश प्राप्त करती रही हूँ । उनका परम स्नेह आशीर्वाद मुझे सदा ही प्राप्त होता रहा है । उनके प्रति आभार मेरा यह शोध प्रबंध ही है । इसके पश्चात मै अपने निर्देशक डा0 हेरम्ब चतुर्वेदी जी की पत्नी श्रीमती आभा चतुर्वेदी को आभार देना चाहूँगी । जिनका असीम स्नेह एवं आशीर्वाद मुझे सदैव मिलता रहा है । तथा निराशा के समय आप ने मुझे अपने इस कठिन कार्य को पूरा करने का प्रोत्साहन दिया तथा मुझे अपने घर का एक सदस्य मान कर मेरा समय-समय पर उत्साहवर्धन किया। अतः मैं आप की बहुत ही आभारी हूँ ।

मेरे जैसे दूसरे प्रदेश की प्रवासी छात्रा के लिए प्रयाग विश्वविद्यालय में निरन्तर शोध कार्य करना एक कठिन कार्य होता यदि आदरणीय जिज्जी (डा0 शीला सिंह) अम्मा व बड़े मामा से असीम प्यार स्नेह और देखभाल सहित प्रचुर सुविधाएँ न प्राप्त होतीं । मुझे इस शोध कार्य को करने के लिए प्रेरित किया तथा मुझे सुविधाओं और साधनों को देने के लिए उनके प्रति आभार प्रकट न करना कृतघ्नता होगी । मै उनकी आभारी हूँ ।

उपलब्धि और अन्य उपलब्धि के प्रकाश और अंधकार में सदा लक्ष्य पूर्ति की आशा प्रेरणा और शक्ति प्रदान करने वाले तथा मुझे उत्साहित करने वाले मम्मी-पापा , दीदी व परिवार के अन्य सदस्यों के प्रति भी आभार समर्पित हूँ । जिनके कारण शोध जैसा दुष्कर कार्य सम्पन्न हो सका ।

मै अपने विभाग के समस्त प्राध्यापकों के प्रति आभार प्रकट करती हूँ। जिनका मुझे सदैव स्नेह व सहयोग प्राप्त हुआ ।

मै भारतीय मध्ययुग के सामाजिक जीवन का वर्णन करने वाले दस्तावेजों, साक्ष्यों और ग्रंथों को प्राप्त करने अध्ययन करने और सारतत्व निकालने के लिए सदा से भारत में प्रसिद्ध इलाहाबाद विश्वविद्यालय के पुस्तकालय से अभूतपूर्व सहायता मिली । साथ ही हिन्दी साहित्य सम्मेलन ईश्वरी प्रसाद शोध संस्थान, इलाहाबाद , काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी , काशी विद्यापीठ, वाराणसी, नट नागर शोध संस्थान सीतामऊ आदि से तत्कालिन सामाजिक जीवन शैली से संबंधित की कार्यपूर्ति और प्रस्तुत इन पुस्तकालयों के प्रति निसंदेह पूर्ण आभारी हूँ ।

मै अपने बड़े भाई दादा तथा विनोद भइया, दिनेश भइया, रमेश भइया, शरद भइया, सुभाष भइया, राजू भइया, राजेश सिंह भइया की आभरी हूँ । जिन्होंने मुझे सहयोग प्रदान किया तथा शोध कार्य को सम्पूर्ण करने में सहायता तथा सुझाव प्रदान किया ।

मै अपने मित्रों में अपने सहकर्मी मित्र दयाशंकर दीवान, मनीषा, राजकुमार की आभारी हूँ। तथा राहुल दुबे की आभारी हूँ जिन्होंने अपना बहुमूल्य समय व सुझाव देकर इस शोध कार्य को सम्पूर्ण करने में अपना योगदान दिया।

मै इस शोध प्रबंध का टंकण कार्य करने वाले श्री सुभाष चन्द्र श्रीवास्तव को आभरी हूँ। जिन्होंने व्यक्तिगत रूचि के साथ इस शोध प्रबंध का टंकण कार्य सम्पादित किया। साथ ही मै शुभम् फोटो स्टेट कापियर्स के समस्त कर्मचारियों को धन्यवाद ज्ञापित करती हूँ।

साभार
[signature] 11-10-95
अलका सिंह
'शोध छात्रा'
मध्य/आधुनिक इतिहास विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

पृष्ठ भूमि ॥ 999-1030 ई0 ॥

भारत वर्ष पर महमूद गजनवी के आक्रमण के पश्चात के डेढ़ शताब्दियों का इतिहास राजपूत राज्यों के राजनीतिक उत्थान, सामाजिक रूप से जाति प्रथा का तीव्रीकरण तथा गंगा-जमुना के दोआब में बढ़ाता तुर्की प्रसार का इतिहास है । उपरोक्त तत्वों के परिणाम स्वरूप परिवर्तित राजनीतिक, सामाजिक प्रवृत्तियों ने वह पृष्ठ भूमि तैयार कर दी जिस पर तुर्कों द्वारा भारत विजय का मार्ग प्रशस्त हो गया ।[1] वस्तुतः राजपूतों के इस वैभव काल ने प्रारम्भिक मध्यकाल में उत्तर भारत में सामन्त शाही प्रवृत्तियों के जन्म देकर स्थापित किया । इसके परिणाम-स्वरूप जहाँ एक तरफ सामूहिक नागरिकता की भावना का ह्रास हुआ, वहीं इन तुर्कियों की गतिविधियों ने भारतीय स्थिति की आधारभूत कमजोरी प्रकट करके, बड़े पैमाने पर सैन्य कार्यवाहियों का आधार प्रस्तुत कर दिया ।[2] गोरियों को मुख्यतः इन नई परिस्थितियों का सामना करना पड़ा, क्यों कि बारहवीं -तेरहवीं शताब्दी में राजनीतिक रंगमंच पर सांभर और अजमेर के चौहान, मालवा के परमार चेदी के कलाचूरी, बुंदेल खण्ड के चंदेल, गुजरात के चालुक्य, कन्नौज के गहदवाल, मगध के पाल और पश्चिमी बंगाल

॥1॥ हबीब एवं निज़ामी, दिल्ली सुल्तनत, पृष्ठ ।।7

॥2॥ वहीं,

के पहले सूर और तत्पश्चात सेन छाए हुए थे।[3]

इन राजपूत राज्यों का विशिष्ट सामन्ती स्वरूप था, प्रत्येक राज्य जागीरों में विभक्त था, जिन पर सत्तारूढ़ राजघरानों जिन्हें कुल कहते थे के सदस्यों का प्रशासन था।[4] इस अभिजात वर्ग को अपने शिलालेखों में शासन का नाम उल्लिखित करना पड़ता था, परम्परागत राजकीय समारोहों में उपस्थित होना पड़ता था, नियमित कर देना पड़ता था, त्यौहारों, विवाहों आदि अवसरों पर शासक को उपहार देने पड़ते थे, एक निश्चित संख्या में सैनिक भी भेजने पड़ते थे। किन्तु दूसरी तरफ उन्हें मुद्रा प्रचलित करने का अधिकार नहीं प्राप्त था।[5] किन्तु शीघ्र ही, विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्तियाँ राजा की शिथिलता के कारण प्रोत्साहित होने लगीं। तथा इन सामन्तों के पारस्परिक आन्तरिक सैन्य संघर्ष ने राजनीतिक अराजकता को जन्म दिया।[6] तुर्कों के आगमन व सैन्य गतिविधियों के चलते ये परिस्थितियाँ अधिक स्थायी व सशक्त हो गयी।[7] यही राजनीतिक प्रणाली उस युग की सामाजिक संगठन प्रणाली के मूल दोषों को भी प्रतिबिम्बित करती थी। उस काल के भारतीय सामाजिक प्रणाली के आधार अर्थात वर्ण व्यवस्था के सिद्धांत ने न केवल नागरिकता की

---

(3) हबीब एवं निजामी, पूर्व पृष्ठ 117

(4) ए० एस० अल्तेकर, दि स्टेट एण्ड गवरमेन्ट इन एनसीयेन्ट इंडिया पृ0225

(5) वहीं,

(6) हबीब एवं निजामी, पृ0 पृष्ठ 118

(7) ए० एस० अल्तेकर, राष्ट्रकूटाज एन्ड देयर टाइम्स, पृ0 265, राजतरंगनी भाग 8, पृष्ठ 1028, तथा हबीब व निजामी पृष्ठ 118

सम्यक् चेतना नष्ट करी बल्कि देश भक्ति की भावना भी समाप्त कर दी ।[8] अपने अध्ययन काल में हम तुर्की को अपना राजनीतिक क्षेत्र विस्तृत करने के लिए बार-बार प्रयत्न करता पाते है, जिसके परिणाम स्वरूप सैन्य गतिविधियों का एक अविरल क्रम तथा गंगा की घाटी में तुर्की सैन्य दबाव को बढ़ता हुआ पाते हैं ।[9]

यद्यपि तुर्को के राजनीतिक प्रभाव के प्रसार का राजपूतों ने उत्तर कालीन गजनवी शासकों के युग में दृढ़तापूर्वक विरोध किया, किंतु , मुसलमान व्यापारी, साहूकार संत और सन्यासियों ने शांतिपूर्वक देश में प्रवेश किया और अनेक महत्वपूर्ण स्थानों में बस गए। ये मुसलमान प्रवासी प्रथमतः जाति-पाति के अंधविश्वासों और दूसरे भारतीय जनसाधारण से सम्पर्क स्थापित करने की सुविधाओं के कारण सुरक्षित नगरों के बाहर भारतीय नागरिकों के निम्न वर्गो के साथ रहते थे ।[10]

बारहवीं शताब्दी के अन्त में भारत वर्ष पर इन तुर्की अभियानों का नेतृत्व मुइज़ुद्दीन मोहम्मद गोरी के हाथों में था जिसकी प्रथम सैनिक गतिविधि भारत वर्ष में 1175 ई0 में हुई जब उसने मुल्तान के करामाथियों पर आक्रमण किया ।[11] तत्पश्चात 1191 में तराइन के युद्ध में उसकी पराजय तथा एक वर्ष

---

(8) डा0 बेनी प्रसाद दि स्टेट इन एन्शीयेन्ट इंडिया , पृ0 12

(9) हबीब एवं निज़ामी, पृ0 120

(10) वही, पृ0 121

(11) वही पृ0 134

पश्चात इसी युद्ध क्षेत्र में पृथ्वीराज चौहान को पराजित कर प्रतिशोध के लिए आया ।[12] 1192 ई0 के तराइन के द्वितीय युद्ध में मुइज्जुद्दीन की सामरिक चालें सफल हुई और राय पिथौरा की भयंकर पराजय हुई । तरायन राजपूतों के लिए एक महान दुर्घटना थी। सामान्य रूप से राजपूतों की, और विशेष रूप से, चौहानों की राजनीतिक प्रतिष्ठा को बड़ा धक्का पहुचा । समस्त चौहान राज्य अब आक्रमण के चरणों में था। चूँकि तरायन का युद्ध राजपूत शासकों का भारी पैमाने पर सामूहिक प्रयास था इसलिए उसकी प्रतिक्रिया भी बड़ी विस्तृत हुई और व्यापक स्तर पर नैतिक पतन भी हुआ । तरायन में विजय प्राप्त करने के तुरंत पश्चात मुईज्जुद्दीन ने हांसी और सरसुती सहित समस्त शिवालिक प्रदेश पर अधिकार कर लिया ।[13]

मुइज्जुद्दीन मोहम्मद गोरी की उत्तर भारतीय विजय की जड़े बहुत गहरी थीं ।गोरियों की उत्तर भारत विजय ने देश के राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक जीवन में धीरे-धीरे किन्तु अवश्यंभावी परिवर्तन किए । ग्यारहवीं तथा बारहवीं शताब्दी के भारत वर्ष से जो अनेकदेशीय प्रणालियाँ थी उनके विलयन के लिए मार्ग बन गया । सामंतवाद के लिए अपने दो मूल सिद्धान्तों अर्थात शासन में स्थानीयता तथा सामन्तों पर दैविक नियन्त्रण से मुक्ति का राजतंत्र में कोई स्थान नहीं था और उसे नष्ट करने के लिए प्रभाव

---

(12) तबकाते-नासिरी, पृ0 119-120, फरिश्ता, भाग -1 पृ0 58 तारीखे मुबारक-शाही ,पृ0 10।

(13) हबीब व निज़ामी, पृ0 141 व 142

शाली प्रयत्न किए गए । विभिन्न क्षेत्रों में सामन्तवादी परंपराएँ तोड़ने और साम्राज्य के सुदूर स्थित प्रदेशों को केंद्रिय व्यवस्था में जोड़ने के लिए " इक्ता" प्रणाली का सहारा लिया गया ।[14]

उत्तर भारत में एक केन्द्रीय राजतंत्र के उदय के साथ राजनीतिक क्षितिज में भी एक विशिष्ट परिवर्तन हुआ । राजनीतिक दृष्टि कोण विस्तृत होता गया और अलगाव की स्थिति कम होने लगी ।[15]

उत्तरी भारतवर्ष पर तूर्कों की विजय का एक महत्वपूर्ण पहलू वह था जिसे प्रोफेसर हबीब "नगरीय क्रांति" कहते है ।[16] राजपूत युग के प्राचीन "कुलीन नगरों" के द्वारा ऊँच-नीच के भेदभाव बिना प्रत्येक वर्ग के लोगों, मजदूरों और कारीगरो, हिंदुओं और मुसलमानों, चांडालो और ब्राहम्णों सबके लिए खोल दिए गए । तुर्क शासन ने सामाजिक भेदभावों और उस नागरिक जीवन का आधार वर्ण व्यवस्था को मानना अस्वीकार कर दिया।[17] सैनिक दृष्टि से तुर्क विजय का प्रभाव भारतीय सेनाओं के स्वरूप और संगठन तथा सैनिक भर्ती और उसकी व्यवस्था के परिवर्तन में दृष्टिगत होता है । अब युद्ध केवल एक वर्ण अथवा वर्ग विशेष का एकाधिकार नहीं रह गया और सेना में भर्ती के द्वारा सभी उचित प्रशिक्षण प्राप्त सैनिकों के लिए जो युद्ध की कठिनाइयाँ सहन कर सकते थे खोल दिए गए ।[18]

---

(14) हबीब व निजामी, पृ0 157

(15) सर जदुनाथ सरकार, इंडिया थ्रू द एजेज, पृ0 43,

(16) ईलियट एण्ड डाउसन, भाग 2 की भूमिका

(17) हबीब व निजामी पृ0 158

(18) हबीब व निजामी, पृ0 158, के0 ए0 निजामी, सम आस्पेक्ट्स

तुर्क विजय के परिणामस्वरूप बाह्य विश्व से संपर्क स्थापित होने और नए " श्रमिक वर्गीय " नगरों के उदय के साथ ही व्यापार को नया प्रोत्साहन मिला । वैधिक प्रणाली की एकरूपता कर-संबंधी नियम और मुद्रा ने व्यापारियों का क्षेत्र बढा दिया और एक स्थान से दूसरे स्थान तक गतिशीलता में सुविधा की व्यवस्था की ।[19]

1206 ई0 में हिन्दुस्तान में गोरियों के द्वारा अधिकृत किए-गए प्रदेशों में मुल्तान, उच्छ, नहरवाला, पुरशोर, सियालकोट, लाहौर, ताबर हिंदा, तरायन, अजमेर, हांसी, सरसुती, कुहराम, मेरठ, कोयल, दिल्ली, थनकर बदायूं, ग्वालियर , भीरा, बनारस, कन्नौज, कालिंजर , अवध, मालवा, बिहार तथा लखनौती सम्मिलित थे।[20] किंतु तुर्कों की शक्ति समस्त स्थानों पर एक समान नहीं थी। वास्तव में , कुछ स्थानों जैसे कालिंजर और ग्वालियर में उनका नियंत्रण यदि समाप्त नहीं हुआ था तो शिथिल अवश्य हो गया था ।

1206 ई0 के पश्चात् ऐबक ने नई विजयों के बजाय विजित प्रदेशों की सुरक्षा की तरफ ध्यान दिया। वह अपने हिन्दुस्तानी प्रदेशों का प्रशासकीय संगठन कर उन्हें निश्चित रूप देने के लिए अधिक उत्सुक था और उसकी अनिश्चित सीमाएं स्थाई बनाना अधिक उपयुक्त समझा था बजाय इसके

---

(19) हबीब व निजामी, पृ0 159

(20) मिनहाज, पृ0 127, रेवर्टी , 491

कि सुरक्षा खतरे में डाल कर अपनी सत्ता का प्रसार करें। यह तभी संभव हो सकता था जब मुइज्जी दास और मलिक उसे सर्वशक्तिमान समझें। उसने अनेक कठिनाइयों का सफलतापूर्वक सामना किया किंतु जब एक दुर्घटना से उसका जीवन समाप्त हुआ उस समय भी यह कार्य अधूरा था। चौगान खेलते समय वह अपने घोड़ों से गिर पड़ा एवं तत्काल 1210 ई0 में उसकी मृत्यु हो गई

ऐबक के पश्चात् 1191 ई0 से 1210 ई0 तक भारत वर्ष का इतिहास गोरी की परम्पराओं से प्रभावित होता रहा। कुछ तो परिस्थितियों की सहायता से किन्तु, विशेषत:, अपने राजनीतिक विचारों से प्रेरित होकर इल्तुतमिश ने दिल्ली का गोरी गौर गजनबी नियंत्रण से बिलकुल संबंध विच्छेद कर दिया। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि उसने एक ऐसे राज्य की स्थापना की जो पूरी तरह से भारतीय था किंतु जिसके एकमात्र उच्चपदीय अधिकारी तुर्क दास अधिकारी और ताजीक थे। उसने मुईजुद्दीन के अधीकृत प्रदेशों ने गोरी और मध्य एशियाई देशों से नाता तोड़ कर अपना एक राजनीतिक व्यक्तित्व विकसित किया।[22]

इल्तुतमिश के छब्बीस वर्ष का शासन तीन कालों मे विभाजित किया जा सकता है 1210 ई से 1220 ई तक जब वह मुख्यत: अपने विरोधियों का दमन करने में व्यस्त था, 1221 ई0 से 1227 ई तक जिसमें उसे चंगेज खां के आक्रमण से उत्पन्न खतरे का सामना करना पड़ा तथा, 1228 ई से 1236 ई तक जब वह अपनी वैयक्तिक और वंशीय सत्ता के संगठन में व्यस्त रहा।[23]

---

(21) हबीब एवं निजामी, पृ0 178

(22) हबीब एवं निजामी, पृ0 194

(23) वही, पृ0 184

इल्तुतमिश के पश्चात तीन दशकों का इतिहास उसके उत्तराधिकारियों के अक्षमता दुर्बलता, अकर्मण्यता , तथा राजनीतिक प्रभुत्व के लिए शासक तथा उमरा वर्ग के मध्य परस्पर संघर्ष का काल था ।[24]

अत: भारत वर्ष में तुर्की साम्राज्य का सम्मान इल्तुतमिश की मृत्यु के पश्चात उत्पन्न परिस्थितियों के कारण जनता के मन में कम हो गया । भारतीय शासकों और उसके शत्रुओं ने तुर्कों द्वारा विजित प्रदेशों पर अधिकार करना पुन: शुरू कर दिया ।[25] इल्तुतमिश के उत्तराधिकारियों मे योग्यतम रजिया थी जिसने तीन वर्ष छह मास व छह दिन तक शासन किया। उसे यह आभास हुआ कि तुर्क सामंतों की महत्वाकांक्षा कानून और व्यवस्था की स्थापना में गंभीर रूकावट डाल रहा है और शक्ति संतुलन के लिए उनके विरूद्ध उसने अतुर्क अमीरों का एक दल संगठित करने का प्रयास आरंभ कर दिया। इस नीति के फलस्वरूप प्रतिक्रियाओं की जो श्रृंखला आरंभ हुई उससे रजिया का पतन हो गया ।[26] रजिया का अंत तुर्क मलिक और अमीरों की सफलता थी । इसके बाद " चालीस " के दल ने सुल्तानों को चुनने और पदच्युत करने का अधिकार पूर्णत: अपने हाथ में ले लिया । उन्होंने सुल्तान के पद पर अधिकार करने का प्रयत्न नहीं किया । सुल्तान केवल एक कठपुतली बनकर रह गया था ।[27] इल्तुतमिश के अंतिम उत्तराधिकारी नसिरूद्दीन महमूद के काल के बीस वर्षो में वह ही वास्तविक शासक था तथापि बीस वर्ष वह संप्रभु शासक रहा ।

---

§24§ हबीब व निजामी , पृ0 198

§25§ तबकाते-नासिरी, "तबका" 22-4

§26§ तबकाते-नसिरी, पृ0 392 तथा हबीब व निजामी पृ0 202 से 207

§27§ मध्यकालीन भारत, भाग 1 सम्पादित डा0 हरिश्चन्द्र वर्मा, पृ0 157

अपने दुर्गों और सैनिक चौकियों द्वारा बलबन ने अपने साम्राज्य के मुख्य प्रान्तों में हरियाणा से बिहार तक, कानून और व्यवस्था स्थापित की । उसके आरम्भिक कार्यों के बिना खिल्जी युग की उपलब्धियाँ संभव नहीं हो सकती थी। इस प्रकार यह शांति, नगरों तथा मुख्य रूप से ग्रामों में सुल्तानत के अधिकारियों द्वारा स्थापित की गई और शेष क्षेत्रों में वंशानुगत हिंदू शासकों द्वारा ।[28]

बल्बन के दो दशकों के शासन के उपरान्त उसकी मृत्यु के बाद, शीघ्र ही तीन वर्षों में उसके वंश का अन्त हो गया और शाइस्ता खा जलालुद्दीन फीरोज खिल्जी का जून 1290 में कैलूगढ़ी के राजमहल में (सिंहासनारोहण हो गया) पच्चास वर्ष पूर्व बलबन के राज्यारोहण के विपरीत वह एक युग का अंत था क्यों कि ममलूक वंश के साथ-साथ वह नस्लवाद भी समाप्त हो गया जिससे कुतुबुद्दीन इल्तुतमिश और उनके उत्तराधिकारियों का राजनीतिक दृष्टिकोण प्रभावित था । तुर्कों ने विजय का आवाहन किया था और अद्भुत उत्साह से अपने शत्रुओं से युद्ध किए थे किंतु राज्य का शासन संगठित करने में उन्होंने जातिवाद पर अधिक बल दिया था । यहां तक कि सर्वमान्य खिलाफत भी उसका तुर्क स्वरूप नहीं बदल सकी थी। तुर्क हितों का ही स्थापना होने के फलस्वरूप सुल्तनत को आधार शिला उन्हो लोगों तक सीमित रखने का प्रयत्न किया गया जो मंगोल आक्रमणों और परिस्थितियों के प्रभाव से दिनों-दिन यह महसूस करने लगे थे कि वे अपनी ही एक मात्र सम्पत्ति की भाँति अपने नियंत्रण में नहीं रख पा रहे और जैसा कि बलबन के शासन काल में हुआ, विरोधी

---

(28) हबीब एवं निज़ामी, पृ0 252

तत्वों का हिंसात्मक दमन करने के लिए भीषण तरीकों का सहारा लिया गया था । कथित अतुर्क खल्जी दल की सरल विजय ने पूर्व प्रचलित इस तथ्य का महत्व प्रकट किया कि जातीय निरंकुशता और अधिक समय तक राज्य धारण नहीं कर सकती। वह ऐसी स्थिति में पहुंच चुकी थी, जहां नई शक्तियां और आकांक्षाएं निरंतर समायोजन की मांग कर रही थी और विजय की प्रक्रिया के एकत्रीकरण से सहज विनाशकारी प्रवृत्तियों का अधिक समय तक नियंत्रण नहीं हो पा रहा था । साम्राज्य के विस्तार से कहीं अधिक नियोजित प्रशासन के लिए नए दृष्टिकोण और नए समाज की जरूरत थी ।[29]

खल्जियों ने प्रदान करी जलालुद्दीन (खलजी) एक निष्ठावान, निष्कपट दयालु और उदार व्यक्ति था पर वह शाही सत्ता का दृढ़ प्रयोग करने में असमर्थ रहा । बलबन की कठिन विचारधारा में पले यथार्थवादी राजनीतिज्ञ उसके भावुक वार्तालापों और मनोवेगों से प्रेरित कार्यों से निराश हुए । इस प्रकार की भावनाएँ व्यक्त करने वाला सत्तर वर्षीय जलालुद्दीन उस युग के शासकों की नीति का पालन करने में पूर्णतः असमर्थ था । जलालुद्दीन की इस दुर्बलता का लाभ उठाकर उसके दामाद व भतीजे अलाउद्दीन ने बलपूर्वक सिंहासन हथियाने का उचित अवसर पाया ।जलालुद्दीन जब भतीजे से मिलने गया उस समय अलाउद्दीन ने संकेत देकर उसकी हत्या करवा दी । यह घृणित कृत्य 20 जुलाई, 1296 ई0 को किया गया था ।[30]

---

§29§ हबीब व निज़ामी , पृ0 272

§30§ मध्यकालीन भारत, सम्पादक डा0 हरिश्चन्द्र वर्मा, पृ0 194-195

शक्ति सत्ता व राजत्व के संघर्ष में अलाउद्दीन खल्जी सफल हुआ था । उसने मानवीय भावनाओं की अपेक्षा कर गद्दी प्राप्त की थी। उसकी पहली समस्या थी राज्य को हड़पने के इस कृत्य का औचित्य जनता की दृष्टि में स्थापित करना और वह स्नेह और स्वाभिभक्ति प्राप्त करना जो किसी भी शासन की सफलता के प्रमुख तत्व थे। एकीकरण, ठोस प्रशासन, दृढ़ सुरक्षा और स्वतंत्र राज्यों को जीतना उसकी नीति के प्रमुख आधार थे। जलालुद्दीन के पुत्र अभी जीवित थे और उनके खतरे से बचने के लिए उन्हें समाप्त करना आवश्यक था । ऐसे अमीर वर्ग से निबटना था जो सिंहासन के विरुद्ध षडयंत्र करने के अभ्यस्त थे। उसे मंगोलों के विरुद्ध भी सीमा की सुरक्षा की समस्या को सुलझाना था । स्थानीय व केन्द्रिय प्रशासन में सुधारों की आवश्यकता थी और एक ऐसी प्रशासनिक एकता प्रदान करने में वह सफल हुआ जो मध्ययुगीन यातायात और परिवहन के उपलब्ध साधनों के अन्तर्गत हो सकती थी। यद्यपि वह जघन्य हत्या के सहारे गद्दी पर आया था तथापि वह एक धीर सावधान साहसी, कठोर और सफल नियोजक व संगठनकर्ता सिद्ध हुआ । अलाउद्दीन के समकालीन अमीर ख़ुसरों और उसके परवर्ती इसामी दोनों ने अलाउद्दीन को एक भाग्यशाली व्यक्ति कहा है ।[31] अलाउद्दीन खल्जी के पश्चात 1316 ई0 खल्जी वंश मात्र चार वर्ष और चला तथा गाजी मलिक अथवा तुगलुक गाजी गयासुद्दीन तुगलूक के नाम से 1320 ई0 में दिल्ली का सुल्तान बना । इसी शासक के नाम से तुगलुक वंश का प्रारंभ हुआ । गयासुद्दीन तुगलक के पश्चात, उसका पुत्र जौना खाँ, मोहम्मद बिन तुगलक के विरुद्ध के साथ सिंहासनारूढ़ हुआ ।

- -

(31) मध्यकालीन भारत सं0 डा0 हरिश्चन्द्र वर्मा, पृ0 195

मुहम्मद तुगलुक के राज्य गद्दी पर बैठते ही एक विशाल साम्राज्य तथा भरपूर खजाना मिला। गयासुद्दीन तुगलक ने तुगलकाबाद के महल में असीम सोना-चांदी छोड़ा था। काश्मीर तथा आधुनिक बलूचिस्तान को छोड़कर लगभग सारा हिन्दुस्तान दिल्ली सुल्तनत के नियन्त्रण में था । उत्तर-पूर्व में हिमालय तक उत्तर पश्चिम में सिंध तक, पूर्व तथा पश्चिम में दोनों समुद्रों तक तथा दक्षिण में मालाबार तथा माबर का प्रदेश सल्तनत के प्रभाव को मानता था। कुल मिलाकर तुगलक साम्राज्य तेईस मुक्तों (प्रांतों) गंजरात, अवध, कन्नौज, लखनौती, बिहार, मालवा , जाजनगर (उड़ीसा) द्वारा समुद्र आदि शामिल थे। आवागमन के साधनों की कमी के कारण इतने विशाल साम्राज्य का नियंत्रण करना कोई सुगम कार्य नहीं था । यही कारण है कि मुहम्मद तुगलक का शासनकाल मध्ययुग के इतिहास का एक महत्वपूर्ण युग माना जाता है । अपनी सुविधा के लिए हम इस शासनकाल को दो भागों में विभक्त कर सकते है :- 1325 से 1335 तक जब मुहम्मद तुगलक नए-नए प्रयोग करता रहा तथा उसके भारतीय साम्राज्य में प्राय: शांति बनी रही ।

1335 से 1351 ई0 तक जब उसकी नई योजनाओं तथा प्रयोगों की असफलता दिखाई देने लगी अत: समस्याएँ बढ़ने लगी और अमीर तथा धर्माचार्य उसके विरुद्ध हो गए ।[32] अन्तत: 1351 ई0 में इन विद्रोहों में से एक सिंध के विद्रोह का दमन के दौरान सुल्तान की मृत्यु हो गई ।

---

(32) हबीब व निजामी , पृ0 439-475 मध्यकालीन भारत, सं0 डा0 हरिश्चन्द्र वर्मा, पृ0 228-229

20 मार्च 1351 ई0 में मुहम्मद तुगलक की सिंध में मृत्यु के पश्चात उसका चचेरा भाई फिरोजशाह तुगलक दिल्ली का सुल्तान बना । मुहम्मद तुगलक के द्वारा हारे हुए प्रदेशों को वापस लेने का मामूली सा प्रयास किया गया । इस उद्देश्य से बंगाल तथा सिंध में सैनिक अभियान किए गए जब कि दक्षिण में स्वतंत्र मदुरा, बहमनी तथा विजय नगर राज्य को वापस लेने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया । इस दृष्टि से फिरोजशाह का प्रशासन कमजोर निकला तथा इस कमजोरी पर पर्दा डालने के लिए उलेमा वर्ग को प्रसन्न रखा गया जिन्होंने धीरे-धीरे संकुचित हो रहे साम्राज्य की बात न करके फिरोजशाह के सैंतीस वर्षों को शांति तथा समृद्धि का काल माना गया । हालांकि यह समृद्धि केवल एक दिखावा मात्र थी। फिरोज के राज्यकाल के अंतिम चरण में गंभीर राजनीतिक तथा आर्थिक संकट उत्पन्न हो गया तथा उसकी मृत्यु के कुछ वर्षों में विशाल तुगलक साम्राज्य छिन्न-भिन्न होकर कई स्वतंत्र राज्यों में बँट गया ।

फिरोज तुगलक के उत्तराधिकारियों में उत्तर भारत को भी वश में रखने की क्षमता नहीं थी ।

अतः विकेन्द्रीकरण तथा विभाजन की प्रवृत्तियाँ जो मोहम्मद -बिन तुगलक के काल में प्रकट होने लगी थी तथा फिरोजशाह तुगलक के काल में शसक्त होने लगी थीं वे तुगलकों के अन्तिम शासकों के अधीन सर्व व्यापी हो गयी इसके परिणामस्वरूप विस्तृत या ब्रहत भारतीय साम्राज्य एक बार फिर छोटी-छोटी राजनीतिक इकाईयों में विभक्त होने लगा । इस विखंडित स्राज्य -दिल्ली सल्तनल के ताबूत में अन्तिम कील 1398 ई0 के तैमूर आक्रमण ने ठोक दी ।[34]

---

§33§ हबीब व निजामी पृ0 475-515 मध्यकालीन भारत , सम्पादक, डा0 हरिश्चन्द्र वर्मा पृ0 287

§34§ हबीब व निजामी पृ0 प0 516-523 तथा मध्यकालीन भारत, भाग 1 पृ0 265

अध्याय – 2

समाजिक विभाजन (वर्गीकरण)

प्राचीन काल से ही हिन्दू समाज का विभाजन वर्ण व्यवस्था के आधार पर होने के प्रमाण मिलते है ।[1] वर्ण संस्था हिन्दू समाज की एक ऐसी विशेषता है जो संसार के किसी भाग में नहीं पायी जाती ।[2] "वर्ण" का वास्तविक अर्थ रंग है । अत: समाज का विभाजन रंग पर आधारित था ।[3] मनु स्मृति सदृश विधि पुस्तके समाज का ऐसा चित्र प्रस्तुत करती है जिससे ज्ञात होता है । कि समाज सर्वथा जाति के आधार पर व्यवस्थित था। प्रत्येक जाति का अपना विशेष व्यवसाय है ।[4] किन्तु वर्ण प्राचीन काल में जाति के रूप में प्रयुक्त नहीं होता था जैसा कि उत्तर प्राचीन काल में इसका प्रयोग शुरू हुआ ।[5]

---

(1) सी0 ई0 एम0 जोड, दि हिस्ट्री आफ इण्डियन सिविलाईजेशन मैकमिलन लण्डन 1936 पृ0 4 जी एस घूरे कृत " कास्ट क्लास एण्ड आक्यूपेशन पाप्युलर बुक डिपो बम्बई द्वारा प्रकाशित अक्टूबर 1961, पृ0 43-50

(2) जोगेन्द्रर नाथ भट्टाचार्य हिन्दू कास्टस एण्ड सेक्टस ठाकर स्पिंक एण्ड कं0 कलकत्ता 1896 पृ0 2

(3) इश्तियाक हुसेन कुरेशी दि मुस्लिम कम्यूनिटी आफ दि इण्डो पाकिस्तान सबकान्टिनेन्ट मान्टन एण्ड कं0 नेदर लैण्डस 1962 पृ0 21

(4) दि लाज आफ मनु अध्याय 10 वॉ सेक्रेड बुक्स आफ दि ईस्ट में उद्धत भाग 25 पृ0 402 , एफ मैक्समूलर द्वारा सम्पादित आक्सफोर्ड 1882 ।

(5) इण्डियन एन्टिक्वेरी भाग 60,1931, पृ0 49 ।

अलबेरूनी ने निरूपित काल में प्रचलित हिन्दू समाज के विभिन्न सामाजिक वर्गों का विस्तृत वर्णन किया है। जाति प्रथा की चर्चा करते हुए वह अपनी व्याख्या इस प्रकार आरम्भ करता है , " हिन्दू अपनी जाति को वर्ण अर्थात रंग कहते तथा वंशावली के दृष्टिकोण से उन्हे जातक अर्थात जन्म कहते हैं। प्रारम्भ से ही ये चार जातियाँ है ।[6] " हमें मध्यकालीन साहित्यिक रचनाओं में भी इन चारों वर्गों का उल्लेख मिलता है ।

पंच दिवस च्यारौ वरण भुंजत अंन अपार ।[7]

प्राचीन काल से ही ब्राम्हणों को हिन्दू समाज में उच्चतम स्थान प्राप्त है। प्राचीन हिन्दू विधि-दाता-मनु कहता है " अपनी श्रेष्ठता के कारण अपनी उत्पत्ति की विशिष्टता के कारण प्रतिबन्धित नियमों के पालन के कारण तथा अपने विशिष्ट संस्कार के कारण ब्राम्हण सभी वर्णों का प्रभु है ।[8] धर्म पर ब्राम्हणों का पूर्णतया एकाधिकार था। वह केवल जनता के धार्मिक प्रयोजनों का प्रबन्ध ही नही करता था वरन् ईश्वर और मानव के बीच मध्यस्थता भी करता था ।

---

§6§ अलबेरूनी इण्डिया § सचाऊ सम्पादित § । पृ0 100 ।

§7§ पृथ्वीराज रासौ कविराव मोहन सिंह द्वारा सम्पादित साहित्य संस्थान राजस्थान विश्व विद्यापीठ उदयपुर पृ0 322 , दो0 70 ।

§8§ मनु, मेक्समूलर भाग 25 पृ0 402 ।

अलबेरूनी लिखता है कि केवल ब्राह्मणों और क्षत्रिय ही वेदाध्ययन कर सकते थे। अत: वे ही मोक्ष प्राप्त करने के योग्य थे।[9] ब्राह्मणों का उल्लेख हम समकालीन साहित्यिक रचनाओं में प्राप्त होता है।

तेंड़ बंभण दिन गिणउ आज।[10]

इन्हें उच्चतम वर्णों या द्विजराज भी कह कर सम्बोधित किया गया।[11] इन्हें पंडित[12] तथा विप्र[13] भी कहा जाता था। वेद अध्ययन अध्यापन का अधिकार मूलत: इसी सर्वोच्च वर्ग को प्राप्त था।[14] अत: इन्हें गुरू का स्थान व गुरू का सा सम्मान प्राप्त था तथा गुरू इच्छा का सामाजिक जीवन में बहुत महत्व था।[15] यहाँ तक कि शासक वर्ग भी अनेक कार्यों में व अवसरों पर उनसे सलाह के लिए बाध्य होते थे।

पंडित तोहि बोलवाइ रे राइ।[16]

---

(9) निजामी सम आसपेक्टस आफ रेलिजन एण्ड पलिटिक्स इन इण्डिया डयूरिंग दि थरटीन्थ सेन्चुरी (एशिया पब्लिशिंग हाउस बम्बई 1961) पृ0 68 और अलबेरूनी इण्डिया (सचाऊ)। पृ0 104।

(10) बीसलदेव रास डा0 माताप्रसाद गुप्ता तथा अगरचंद नाहट हिन्दी परिषद् प्रकाशन इलाहाबाद पृ0 118 दो 38 साथ ही देखे पृथ्वीराज रासो पृ0294 दो 4

(11) पृथ्वीराज रासो पृ 2 छ02 तथा पृ 35 दो 18

(12) बीसलदेव रास पृ090 दो0 7 तथा पृथ्वीराज राउस डा0 माता प्रसाद गुप्त द्वारा सम्पादित प्रकाशन साहित्य सदन चिरगांव झांसी। पृ 57 दो-12 - - - - तथा पृथ्वीराज रासो पृ0 171 दो 68।

(13) पृथ्वीराज रासउ प0 30 मृगावती पृ01 दो 1 तथा मधुमालती पृ 81 दो

(14) अलबेरूनी (सचाऊ) 1, पृ0 100-101, मनु (मैक्समूलर) अध्याय1 श्लोक 98 -100 तथा पृथ्वीराज राउस पृ0 30

(15) पृथ्वीराज रासउ पृ0 251

(16) बीसलदेव रास पृ0 90, दो 7 ।

ब्राह्मणों के सामान्य धर्म था" शिक्षा देना शिक्षा ग्रहण करना दान देना-लेना यज्ञ करना तथा कराना" तथा एक ब्राम्हण के समस्त जीवन के सामान्य कर्त्तव्य है पुण्य कार्य करना , भिक्षा ग्रहण तथा शिक्षा दान ।" रूहे विपते उठिठ ते प्राप्त चले वेद विप्प" ब्राम्हण जो कुछ भी स्वयं दान करता है वह पित्रों को प्राप्त होता है । (अर्थात इससे पूर्वजों का हित होता है) । निरन्तर अध्ययन करना यज्ञों का विधान करना तथा जिस अग्नि को जलाता है उसकी रक्षा करना उसका कर्तव्य है। उसे उस अग्नि को नैवेद्य चढाना उसकी पूजा करना तथा उसे बुझने से बचाना चाहिए ताकि मरणोपरान्त वह इसी अग्नि से जलाया जा सके। इसे " होम " कहते हैं । [17] ब्राहम्णों गणना करके त्योहार निर्धारित करते थे। तथा ब्राम्हण का कार्य यह भी था कि वे लग्न ले जाया करते थे जैसा कि हमें समकालीन साहित्य में मिलता है ।

पुच्छ पूछत बंभनीन सुनि कहौं बाल किन बेस । [18]

विवाह के अवसर पर धार्मिक संस्कार सम्पन्न करते है तथा ब्राहम्णों दक्षिणा ग्रहण करतें है। पंडितों के द्वारा विवाह कार्य सम्पन्न कराया जाता था । [19] जोसी (ज्योतिषियों) की सहायता से लड़के लड़की की टिप्पणी का परीक्षण किया करते थे। वे ज्योतिषी विवाह के शंका युक्त पक्षों का निर्णय करते थे। [20]

---

(17) अल्बेरूनी इण्डिया (सचाऊ) 2 पृ0 133 पृथ्वीराज रासउ सम्पादक मा0 प्र0 गु0 4 : 10: 61

(18) बीसल देव रास, पृ0 118 दो0 38 तथा पृथ्वीराज रासौ पृ0 294 दो0 4 ।

(19) ———— पृथ्वीराज रासौ पृ0 171 दो 68

(20) ———— लावण्य समय का विमल प्रबन्ध प्रकाशक गुजरात साहित्य अहमदाबाद प्रथम संस्करण , सर्ग 4 दो 68 पृ0 76 पर एक बालक और बालिका को उनके विवाह के पूर्व ज्योतिषी द्वारा जाँच का उल्लेख देखें ।

शासक वर्ग द्वारा किसी भी कार्य की शुरुआत के पूर्व ज्योतिषी के द्वारा गणना करवा कर फल जान कर ही कार्य किया जाता था ।[21] स्वप्नांतर घटना का फल भी ज्योतिष के द्वारा जाना जाता था । [22] ज्योतिषी का कार्य यह भी था कि वे शकुन का विचार करके किसी भी स्थान की प्रस्थान के पूर्व विचार करना ।[23] तथा युद्ध के पूर्व नक्षत्र योग तिथि देख कर शुभ घड़ी व समय पर राजा को सलाह देकर उसे युद्ध की आरम्भ करने की आज्ञा देता था। शासक वर्ग तथा प्रजा के बीच ज्योतिषी बहुत ही सम्माननीय थे। किसी भी कार्य करने के पूर्व इनसे सलाह अवश्य ली जाती थी। जैसा की मध्यकालीन साहित्य से ज्ञात होता है ।

---

(21) पृथ्वीराज रासउ डा० माता प्रसाद गुप्ता पृ० 27। ।

(22) पूर्वोक्त पृ० 27।

(23) (उ॰प्र॰) पृथ्वी राज रासो पृ० 203 कवित्त । 24 ।

भोग भरणि अष्टमी सुक्रवारइ सुदि रारो ।[24]

संयोगिता और उसकी सखियों को विनय मंगल की शिक्षा ब्राह्मणी द्वारा दी जाती है । [25]

क्षत्रिय सामाजिक बरासत में अगला स्थान क्षत्रियों का है [26] अगली जाति में क्षत्रिय आते हैं, जिनके विषय में कहा जाता है कि ब्रह्मा की बाहु और उसके कन्धों से इनकी उत्पत्ति हुई। इनकी मर्यादा ब्राह्मणों से अधिक नीचे नहीं है ।[27] समकालीन रचनाओं में भी क्षत्रिय का उल्लेख मिलता है ।

दानव कुल क्षत्रीय नाम ढूंढरि विक्स वर ।[28]

क्षत्रियों के छत्तीस वंशों का उल्लेख प्राप्त होता है । युगीन रचनाओं के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि क्षत्रिय वर्ण विभिन्न कुलों में विभाजित था जिनकी संख्या छत्तीस है ।

---

§24§ पृथ्वीराज रासउ § डा0 माता प्रसाद गुप्त § पृ0 197

§25§ पृ0 रा0 सम्पादक मोहन सिंह भाग -3 पृ0 276

§26§ निजामी, सम आसपेक्टस आफ रेलिजन एण्ड पालिटिक्स इन इण्डिया ड्यूरिंग दि थरटीन्थ सेन्चुरी § एशिया पब्लिशिंग हाउस बम्बई 1961§ पृ0691

§27§ अलबेरूनी इण्डिया 1, पृ0 101

§28§ पृथ्वीराज रासो कवित्त 28 पृष्ठ 12 ।

वंस छत्तीस सह, भट विरद भारवत ।[29]

छत्तीस कुलों का वर्णन इस प्रकार है : चौहान [30] गहिलौत [31]

परिहार [32] बघेल [33] चालुक्य [34] तोमर [35] पँवार [36] सोलंकी [37]

---

§29§ पृथ्वीराज रासो पृ0 304 दो 26

§30§ बीसल देव रासो § प्रकाशक हिन्दी परिषद प्रकाशन § प्रयाग वि0 वि0 इलाहाबाद पृ0 91 दो 7 पृथ्वीराज रासउ पृ0 14 तथा वर्ण रत्नाकर पृ0 31 व 61 तथा हेरम्ब चतुर्वेदी पृ0 35

§31§ पृथ्वीराज रासो पृ0 261, कवित 541 पृ0 370 कवित्त 3 , वर्ण रत्नाकर पृ0 31

§32§ पृथ्वीराज रासो पृ0 148 दो0 24

§33§ पृथ्वीराज रासउ माताप्रसाद गुप्त पृ0 2361

§34§ पृथ्वीराज रासउ, माताप्रसाद गुप्ता पा0 21। कवित्त 4 । पृ0 282

§35§ पृथ्वीराज रासउ, माताप्रसाद गुप्त पृ0 2381

§36§ पृथ्वीराज रासउ माताप्रसाद गुप्त पृ0 283, पृ0 तथा पृथ्वीराज रासो पृ0 231 कवित वर्णरत्नाकर पृ0 31

§37§ पृथ्वीरास रासो पृ0 231 कवित्त 32

कूरंभ (कछवाहा)[38] राठौर [39] गूजर [40] रावर (रावलों)[41] गुज्जर [42] रावत [43] समकालीन गुजराती रचना में राजपूतों के छत्तीस सामाजिक वर्गों का उल्लेख है जैसे - बल , वज ,जेठुआ, चूदासमा, राठौर परमार,चौहान,सोलंकी,पडिहार,चावदा,तुवंर,यादव,जल,गोहिल आदि

"क्षत्रिय वेद पढ़ता और सीखता है पर किसी को इसकी शिक्षा नहीं देता । वह प्रजा पर शासन करता तथा उनकी रक्षा करता है क्यों कि इसी कार्य के लिए उसकी सृष्टि हुई है। वह तीन इकहरे सूत का तथा रूई की एक इकहरी डोरी का " यज्ञोपवीत " धारण करता है। बारह वर्ष की अवस्था में उसका यह संस्कार सम्पन्न होता है ।"[44] इसी प्रकार क्षत्रियों का कर्तव्य था- अध्ययन करना, दान देना, यज्ञ करना, शासन करना ।

हिन्दुओं के धर्म ग्रन्थों के अनुसार " क्षत्रिय को हृदय आतंकित करने वाला वीर और उच्चविचार वाला, भाषण के लिए तैयार तथा

---

(38) पृथ्वीराज रासो पृ0 182, कवित्त 20 तथा पृथ्वीराज रासउ प0 74
(39) पृथ्वीराज रासउ पृ0 74, पृ0 226 दो0 17 ।
(40) पृथ्वीराज रासउ पृ0 74
(41) पृथ्वीराज रासो पृ0 369 कवित्त ।
(42) पृथ्वीराज रासो पृ0 182 कवित्त 20
(43) पृथ्वीराज रासउ प0 175 पृ0 210
(44) अल्बेरूनी इण्डिया (सचाऊ) 2 पृ0 136

उदार होना चाहिए। उसे आपत्तियों से निश्चिन्त होकर केवल उन महान कार्यों की पूर्ति की अभिलाषा करनी चाहिए जिनसे चिर-आनन्द की प्राप्ति हो। [45] क्षत्रियों को पुरोहित के कार्य करने का अधिकार प्राप्त नहीं था तथापि पौराणिक संस्कार सम्पन्न करने की उसे अनुमति थी। स्पष्टतः भारतीय संस्कृति की उन्नति या रक्षा में योगदान देने से क्षत्रिय विरक्त थे। किन्तु उनका राजनैतिक विस्तार उन्नति पर था। [46] क्षत्रियों के कर्त्तव्यों के उल्लेख में अलबेरूनी लिखता है " क्यों कि हिन्दू कहते है कि आदि में शासन और युद्ध के कार्य ब्राम्हण के हाथ में थे। किन्तु देश अव्यवस्थित हो गया क्यों कि वे अपनी धर्म संहिता के दार्शनिक सिद्वांतों के अनुसार शासन करते थे। जो प्रजा के अनिष्टशील तथा उच्छृंखल तत्वों के समक्ष असम्भव सिद्व हुआ। उनके हाथों से धार्मिक -प्रशासन भी छिन जाने को था। अतः उन्होंने अपने धर्म स्वामी के समक्ष अपनी दीनता प्रकट की। इस पर ब्रहमा ने उनको वही कार्य सौंपें जो अब उनके पास है जबकि शासन और युद्ध के कर्त्तव्य क्षत्रियों के जिम्मे आया। तब से ब्राम्हण याचना और भिक्षा से अपनी अजीविका चलाते है तथा दण्ड विधान का प्रयोग विद्वानों के निरीक्षण में नहीं अपितु राजाओं के कर्त्तव्य निरीक्षण में होता है। [47]

---

(45) अलबेरूनी इण्डिया (सचाऊ) 1, पृ0 103

(46) जनरल ऑफ दि अलीगढ़ हिस्टरिकल रिसर्च इन्स्टीट्यूट भाग 1 जुलाई अक्टूबर 1940 संख्या 2 एवं 3 पृ0 81

(47) अलबेरूनी इण्डिया (सचाऊ) 2, पृ0 161 -162

वैश्य:-

प्रारंभिक काल में वैश्यों की सामाजिक स्थिति शूद्रों से बहुत भिन्न नहीं था। दोनो के जीविकोपार्जन के साधनों में बहुत समानता थी। [48] अलबेरूनी भी वैश्यों के निम्न स्तरीय व्यक्तियों की समानता शूद्रों से अपने वृतांत में करता पाया जाता है । [49]

गुप्तोत्तर काल में कमोवेश यही स्थिति थी। किन्तु ग्यारहवीं -बारहवीं शताब्दी में व्यापार व्यवसाय की तुलनात्मक विकास ने वैश्यों की स्थिति पूर्व से बेहतर कर दी । [50] अधिकांशत: वैश्यों के लिए बनिज, बनिक, साहु या साह आदि शब्दों का प्रयोग किया है और उनका मुख्य धर्म दया का पालन करना हुआ करता था ।[51] चन्दवरदाई ने इनके चरित्र व आकृति का वर्णन करते हुए इन्हें कोमल शरीर भारी पेट ढीले वस्त्र डरपोक कानों पर लेखनी चढाए हुए तथा बोलने पर सांस फूल जाने वाले बताया है। ये छल-कपटपूर्ण बताये गये है। और इतने कपटी होते थे कि ब्रह्मा और विष्णु को भी छल सकते थे साथ ही बहुत ही दानी और निष्पापी भी हुआ करते थे । [52] चन्दवरदाई ने वैश्यों को नगर शोभा के वर्णन में लखपति और करोड़पति कहा है ।

---

(48) आर० एस० शर्मा शूद्रास इन एन्सीयेन्ट इण्डिया पृ० 281, बी० एन० एस० यादव सोसायटी एण्ड कल्चर इन नार्दर इण्डिया इन दि ट्वेल्थ सेन्चुरी, पृ० 82 तथा हेरम्ब चतुर्वेदी पूर्वोद्धृत ।

(49) अलबेरूनी (संक्षिप्त) पृ० 41 तथा हेरम्ब चतुर्वेदी पूर्वोद्धृत पृ० 38-39

(50) बी० एन० एस० यादव पूर्वोद्धृत पृ० 12, हेरम्ब चतुर्वेदी पृ० 39 ।

(51) पृथ्वीराज रासो (काशी प्रकाशन) पृ० 2012, छन्द 120।

(52) पृथ्वीराज रासो (काशी प्रकाशन) पृ० 2029 छन्द 156-159।

सोमंत नगर जिहि बड़े साहि। लष कोट द्रव्य जिनहट्ट-माह ।[53]

पृथ्वीराज रासो के महोबा खण्ड में गंगा वैश्य को युद्ध करते हुए बताया है ।[54] एक अन्य समकालीन साहित्य चंदायन में सेना में हर रूप रंग वाली के साथ पांच वैस का वर्णन युद्ध के लिए मिलता है ।[55] इसी प्रकार परमाल रासो में भी ईसुर नाम का बनिया युद्ध करता है । [56]

वैश्य और शूद्रों के बीच भेद होते हुए भी वे इस काल में इन दोनो में बहुत सामाजिक - आर्थिक समानताएँ थी । [57]

---

(53) उपरिवत पृ0 2129, छन्द 159 ।

(54) उपरिवत पृ0 2585, छन्द 576 ।

(55) चंदायन सम्पादक डा0 माता प्रसाद गुप्त पद 128, पृ0 126।

(56) परमाल रासो (काशी प्रकाशन) खण्ड 24, छन्द 9।

(57) अल्बेरूनी वैश्यों तथा शूद्रों के विषय में लिखता है 'अंतिम दो वर्गो के बीच अधिक अन्तर नहीं है। इन वर्गो में परस्पर अन्तर है, वे घुल मिलकर नगर और ग्रामो में रहते है।' अल्बेरूनी अण्डिया (सचाऊ) । पृ0 102

अलबेरूनी वैश्यों का उल्लेख इस प्रकार करता है " वैश्य का यह धर्म है कि वह कृषि करें, भूमि को जोते , पशुपालन का कार्य करे , तथा ब्राह्मणों को उनकी आवश्यकताओं से निवृत्त करें । उसे केवल इकहरा यज्ञोपवीत धारण करने की अनुमति है जो कि दो डोरियों का बना होता है ।[58]

वैश्य समुदाय के बड़े-बड़े व्यापारी दल को टांडा कह कर समकालीन साहित्यिक ग्रंथ में सम्बोधित किया गया है जिसमें सात सौ तक व्यापारी हुआ करते थे। तथा ये व्यापार के लिए एक नगर से दूसरे नगर बेरोक-टोक आते जाते थे यहां तक कि ये लोग विभिन्न क्षेत्रों व प्रान्तों से भी व्यापार करते थे ।[59] वर्णित काल में यह व्यापारी वर्ग मदन (मोम) मंजीठ, चिरौंजी सुपारी , नारियल , गुवा (एक प्रकार की सोपारी) लवंग, छुहाड़ी , सुगन्धियां तथा कुंकुमपत्रज (तेजपात) ब्राह्मी का क्रय-विक्रय करते साथ ही -हीरे, प्रवाल, तांबा, रौप्य (चांदी) वीरण, (खस) चेना, (कर्पूर) तथा अगरू आदि का व्यापार किया करते थे ।[60]

पृथ्वी राज रासो में साड़ियां बेचने का जो कार्य करते थे उन्हें बजाज कहा गया है ।

बुद्धि बजाज सु विच्चहिं सार ।[61]

प्राचीन काल में वैश्यों की असंख्य जातियां थी, क्यों कि इनके अन्तर्गत सम्पूर्ण जनवर्ग समाहित था। धीरे-धीरे ब्राह्मणों और क्षत्रियों के अनुकरण पर स्थान और वंश-भेद के आधार पर इनकी अनेक जातियां बन गई।[62]

---

(58) अलबेरूनी इण्डिया (सचाउ) 2 पृ0 136 ।

(59) चंदायन, सम्पादक डा0 माताप्रसाद गुप्त, पद340 पृ0 338-339

(60) वही पद 341 पृ0 339-340 ।

(61) पृथ्वीराज रासउ सम्पादक डा0 माता प्रसाद गुप्त 3:25:9 ।

(62) डा0 राजबली पाण्डे हिन्दी साहित्य वृहद इतिहास प्रथम भाग

शूद्र:-

हिन्दू धर्म का यह चौथा वर्ग एकीकृत न होकर मिश्रित समुदाय था, इसमें अधिकांश कृषि से जुड़े श्रमिक, छोटे कृषक, शिल्पकार श्रमिक, नौकर -चाकर तथा अन्य निम्न प्रकार के कार्य व पेशे में रत व्यक्ति सम्मिलित होते थे।[63] इन्हें प्राय: बारहवीं शताब्दी आते-आते पूर्णत: अस्पृश्यों के वर्ग में सम्मिलित कर लिया गया था।[64] शूद्रों में भी प्रशिक्षित श्रमिक तथा सफाई इत्यादि से सम्बद्ध कार्य करने वाले शूद्र दो अलग-अलग उपवर्गों से विभक्त हो चुके थे।[65] प्राचीन काल से ही इनके लिए अपने से श्रेष्ठ शेष सभी वर्णों की सेवा निर्दिष्ट थी। तथा कोई भी विशेषाधिकार प्राप्त नहीं था अत: वे समाज के सर्वाधिक निम्न व निरीह प्राणी थे।

पृथ्वीराज रासो तथा परमाल रासो दोनों में ही शूद्र जाति का उल्लेख किया गया है। पृथ्वीराज रासो में चन्दबरदाई ने शूद्रों का कार्य सेवा करना निरूपित किया है।

दया सु धर्म्म बनिक्कं सिवा ध्रम सूद्र सदाई।[66]

---

§63§ वी0 एन0 एस0यादव पूर्वोक्त पृ0 38 व हेरम्ब चतुर्वेदी पृ0 सं0 48-50

§64§ वही

§65§ वही

§66§ पृ0 रा0 काशी प्रकाशन खण्ड 24, छन्द 91 ।

अलबेरूनी लिखता है कि " शूद्र ब्राह्मण के नौकर के समान है जो उसके कार्यों की देख-देख और उसकी सेवा करता है वह बहुत ही गरीब होते हुए भी यज्ञोपवीत हीन नहीं रहना चाहता तो वह केवल सन का यज्ञोपवीत धारण करता है। सभी ऐसे काम जिस पर ब्राह्मण का विशेष अधिकार है जैसे : प्रार्थना वेद-पाठ और होम उसके लिए एक सीमा तक निषिद्ध है। कि यदि - यह प्रमाणित हो जाय कि किसी शूद्र या वैश्य ने वेद का उच्चारण किया है तो ब्राहाण द्वारा वह राजा के सम्मुख दोषी ठहराया जाता है और राजा उसकी जीभ काट डालने की आज्ञा देता है । परन्तु ईश्वरोपासना , धर्म निष्ठा के कार्य और दान देने पर उसे रोक नहीं थी ।"[67] शूद्र के बाद उन लोगों का स्थान है जिन्हें अल्बेरूनी ने " अन्त्यज" कहा जाता था। जिनका कार्य था विभिन्न प्रकार से सेवा करना। इनकी गिनती किसी भी जाति के रूप में नही होती थी। किसी विशेष पेशा करने वालों या शिल्पकार के रूप में उनकी गिनती होती थी। उनके आठ वर्ग है जो कि धोबी, चमार और बुनकर को छोड़कर , आपस में वैवाहिक सम्बन्ध जोड़ते थे । क्यों कि उनके साथ किसी प्रकार का भी सम्बन्ध स्थापित करने को किसी ने कृपा नहीं की। अलबेरूनी इनको आठ श्रेणियों का वर्णन करता है ।

- -

(67) अलबेरूनी इण्डिया (सचाऊ) 2, पृ0 136-137 ।

धोबी , चमार, मदारी, डोम और ढाल बनाने वाला नाविक , मछुआ ब्याधा और बुनकर ।[68]

मध्यकालीन साहित्य की रचनाओं में चंदायन में हमें धोबी बुनकर, व केवट (नाविक) का उल्लेख मिलता है ।

तेलि भूंज और कोयरी धोबी नाऊ चेर । [69]

इसी प्रकार :- " पटुवइं " केर देखि बौसाऊ । हाथ, ऊभ " भइं परइ न पाऊ ।[70]

तथा

सरंगा ठाउ , जउ, खेवट आवा । कर कंगन चांदइं चमकावा । [71]

---

(69) अलबेरूनी इण्डिया (सचाऊ) । , पृ0 101

(69) चंदायन, सम्पादक , डा0 माता प्रसाद गुप्त पद 254, पृ0 247

(70) वही, पद , 277 पृ0 269 - 270 ।

(71) वही पद 287 पृ0 280 ।

चार जातियाँ इन आठ श्रेणियों के साथ एक ही जगह नहीं रह सकती थीं। ये पेशेवर जातियाँ गावों या नगरों के निकट किंतु बाहर चार जातियों से अलग रहा करतीं थी। इन चार जातियों में हादी, डोम, डोम्ब, चण्डाल तथा बधातउ की गिनती निम्नतम वर्ग के रूप में होती थी। इन्हें किसी भी जाति के रूप में नहीं गिना जाता था। अलबेरूनी लिखता है कि -- ये दूषित या हीन कार्य किया करते थे जैसे कि गांवों की सफाई आदि अन्य प्रकार की सेवाएँ करते थे। इन सब को एक वर्ग के रूप में जाना जाता था तथा अपने पेशे द्वारा पहचाने जाते थे।[72]

बारहवीं शताब्दी के अंतिम दशक व तेरहवीं शताब्दी के उत्तरी भारत में तुर्कों की विजय के परिणाम स्वरूप हुए अनेक राजनैतिक, सामाजिक व आर्थिक परिवर्तनों ने वर्ण धर्म पर आधारित समाज को भी उद्वेलित तथा परिवर्तनशील कर दिया था।[73] चार प्रमुख वर्णों के अतिरिक्त अनेक उपवर्ग पेशेवर गुट, श्रमिक, शिल्पकार, साधारण कृषक, कृषक श्रमिक इत्यादि सम्मिलित थे। इन्ही में से कुछ की सूची अलबेरूनी ने दी है। इन्हें चूंकि वर्ग व्यवस्था में कोई निर्धारित स्थान प्राप्त नहीं था अतः वर्ण शंकर का सिद्वांत प्रतिपादित

- -

§72§ अलबेरूनी इण्डिया § सचाऊ §। पृ० 101-102 एवं डा० राजबली पाण्डेय हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास प्रथम भाग पृ० 111।

§73§ बी० एन० एस यादव पूर्वोद्धृत पृ० 257 व हेरम्ब चतुर्वेदी पृ० सं० 65

कर इनको समाज से अलग-थलग घोषित कर सिर्फ समाज में सेवा प्रदान करने योग्य समझा गया था । [74]

तेरहवीं तथा चौदहवीं शताब्दी में ये धीरे-धीरे संगठित व एकीकृत रूप धारण करने लगे थे। अतः जिस कार्य अथवा पेशे से ये संबद्ध या जुड़े होते थे वही नाम इनका प्रचलित और प्रतिष्ठित होने लगा था यथा सोने का काम करने वाले " सुनार ", तेल का कार्य करने वाले " तेली " आदि-आदि इस प्रकार से परम्परागत वर्ग व्यवस्था के अतिरिक्त ये जातियाँ भी समाज में मान्यता प्राप्त हो अपने लिए एक प्रतिष्ठित स्तर स्थापित करने के लिए प्रयासरत होने लगी । [75]

समकालीन साहित्यों में परमाल रासो में तथा चंदायन में नाई से संदेश भेजने का कार्य कराया जाता था तथा भोज के अवसर पर मेहमान (आगन्तुक) को बुलाने का कार्य किया करते थे ।

---

(74) जी० एस० घूरे, कास्ट एण्ड क्लास इन इण्डिया पृ० 107 वी० एन० एस० यादव पृ० 16 तथा हेरम्ब चतुर्वेदी पृ० पृ० 65-67

(75) पूर्ववत

तउहि महरहुं नाउव चलाया । मांकर कहं अस बोलि पठावा ।[76]

पृथ्वीराज रासो में राजा परमाल देव के बाग-बगीचे की रखवाली तथा रक्षा करते हुए माली बताए गए है ।[77]इनकी स्त्रियाँ मालिने कहलाती थीं। तथा ये फूल की टोकरियाँ घर-घर पहुँचाती थी।[77(a)] सोने का पानी चढ़ाने वाले सोनी तथा सुनार जो कि कुशल कारीगर हुआ करते थे। इस प्रकार से सुनार जाति का वर्णन मिलता है कि ये अपने व्यवसाय के संबंध में घर-घर जा कर सोना काटने का कार्य किया करते थे ।।

कटटहिं ते हेम ग्रहि ग्रहि सोनार । [78]

इस प्रकार समकालीन साहित्य में हमें अहीर नाम की पेशेवर जाति का उल्लेख मिलता है। ये गाय-भैंस और बैल आदि जानवर पालते थे। तथा दूध और दही की अधिकता होने कारण वे इसका व्यापार करते थे। [79] अहीरों को ग्वाल के नाम से भी पुकारे जाते थे। उहीरों के घरों की स्त्रियाँ जिन्हें ग्वालिने कहा जाता था दूध दही बेचने जाती थीं ।

- -

(76) परमाल रासो, काशी प्रकाशन खण्ड 15 छन्द 157 एवं चंदायन सम्पादक डा माता प्रसाद गुप्त पद 254 पृ0 247 व पद 396 पृ0 390 व बीसल देव रास स0 डा0 माता प्र गुप्ता पृ0 142 दो 60

(77) पृथ्वीराज रासो , काशी प्रकाशन पृ0 2509 छन्द 79 चंदायन स0 डा0 माता प्रसाद गुप्त पद 245 पृ0 238 एवं पद 384 पृ0 380

(78) चंदायन सम्पादक डा0 माता प्रसाद गुप्ता पद 25 पृ0 23 एवं पृथ्वीराज रासउ सम्पादक डा0 माता प्रसाद गुप्त 2:3:58 मृगावती 28 दो 35

जाने कि कृष्ण वृंदावनह रास रमै निसि ग्वालिनिय । [80]

इन दूध-दही बेचती हुई स्त्रियों को महीरियों के नाम से भी पुकारा जाता था । [81]

ये अहीर राजपूतों की तरह बलवान हुआ करते थे। समकालीन साहित्य में अहीर जाति के दो हजार सैनिकों को बहुत ही पराक्रमी बताया गया है ।[82]

---

§80§ पृ0 रा0 , काशी प्रकाशन पृ0 582, छन्द 32 तथा पृथ्वीराज रासौ पृ0 187 कवित्त 30

§81§ चंदायन सम्पादक डा0 माता प्रसाद गुप्त पद 387 पृ0 382

§82§ पृ0 रा0 , काशी प्रकाशन पृ0 582 छन्द 34

इस काल के आते-आते अहीर जाति को उनके जाति नाम "जछ्व " (यादव) से सम्बोधित किया जाने लगा था ।[83] जैसा कि समकालीन साहित्य में यादव जाति का उल्लेख मिलता है जो युद्ध में भाग लिया करते थे तथा वीर होते थे ।

बोलि राज पृथिराज , वीर जद्यव जामानी । [84]

चन्द्रवरदाई का कथन है कि अहीर और गूजर दोनो जातियाँ युद्ध क्षेत्र में पराक्रमी हुआ करती थीं उनका कोई बाल बाँका नही कर सकता था ।

गुज्जर अहीर अस जाति दोई ।

तिन लीह लोप सक्के न कोई ।[85]

गूजर जाति का भी वर्णन मिलता है :-

तिहि पर गुज्जर राम,करण दस-दूव-स वट्टिय ।[86]

- -

(83) वी० एन० एस० यादव पूर्वोद्धृत पृ० 47 तथा हेरम्ब चतुर्वेदी पू० पृ० 100-105

(84) पृथ्वीराज रासो (उदयपुर प्रकाशन) पृ० 260 कवित्त 52 एवं पृ० 232, कवित्त 35 तथा पृथ्वीराज रासउ, सम्पादक डा० माताप्रसाद गुप्त पृ० 211, कवित्त 41

(85) पृ० रा० का० पू० पृ० 582 छन्द 35

(86) पूर्ववत , पृ० 582 छन्द 35 तथा पृथ्वीराज रासो (सम्पादक मोहन सिंह उदयपुर प्रकाशन) पृ० 182 (मेवाती मुगल कथा) छन्द 20 एवं पृथ्वीराज रासउ (सम्पादक डा० माता प्रसाद गुप्त) पृ० 74 ।

समकालीन हिंदी ग्रंथों में प्राय: लेखक कायस्थ जाति को पात्र के रूप में वर्णित किया गया है। ये राज-काज का लिपिक कार्य प्राय: कायस्थ किया करते थे तथा इन्हें राजपूत शासक अपने यहाँ कार्यों के संपादन के लिए ही नियुक्त करते थे।

लिखि कग्गद सब विधि विवरि, राज रीति चहुआन ।
दिव कग्गद लसु दूत कर, वर काइथ ध्रम्मान ।[87]

सभा का अधिकारी जो कायस्थों में श्रेष्ठ धर्मायन, चन्द्र वरदाई ने पृथ्वीराज रासो में बताया है ।

ध्रमाइन काइथ धवल, दिसि दच्छिन दिय ठौर ।[88]

पृथ्वीराज रासो के अन्तर्गत ही मकरंद नामक कायस्थ को युद्ध के लिए तैयार होता देखकर धीर पुंडीर उसका मजाक उड़ाता है ।

लोष कायस्थ मकरंद । चंद पुंडीर अखोई
कर लेखनि किरणान । दत सावतन तोई[89]

- -

(87) पृथ्वीराज रासौ चन्दवरदाई कृत (उ0 प्र0) (माधो भट्ट कथा) पृ0 224, दो 14।

(88) वही, (हुसैन कथा) दो 18 पृ0 248।

(89) पृ0 रा0 काशी प्रकाशन पृ0 2573 छन्द 483।

अर्थात वीरता युद्ध करना आदि उनकी विशेषता कभी भी नहीं रही - वे लिखा-पढ़ी का ही कार्य कर सकते थे। बीसलदेव का वित्तमंत्री किरपाल नामक एक कायस्थ था ।[90] परमाल रासो में चन्द्रब्रह्म के द्वारा सुजान नामक एक कायस्थ को दीवान के पद पर नियुक्त किया गया था। तथा परमाल आक्रमण के समय (युद्ध) विचार करने के लिए कायस्थ मंत्री को भी बुलाया था ।[91]

पृथ्वीराज रासो में महाराजा भीम अपने कायस्थ मंत्री के द्वारा पृथ्वीराज के कैमास नामक मंत्री को अपनी तरफ मिलाने तथा मोहम्मद गोरी को परास्त करने के लिए विचार-विमर्श करते हुए बताया गया ।[92] पृथ्वीराज रासो ने कायस्थों को सेना में भी काम करते हुए बताया गया है ।[93]

---

(90) उपरिवत पृ0 89 छन्द 41।

(91) परमाल रासो (काशी प्रकाशन) खण्ड 2 छन्द ।9।

(92) पृथ्वीराज रासो (उदयपुर प्रकाशन) भाग 2 पृ0 460 छन्द 67।

(93) पृ0 रा0 (काशी प्रकाशन पृ0 2565 छन्द 41।

परमाल रासो में जाट जाति के लिए जट्ट शब्द का प्रयोग किया गया है और इन्हें युद्धप्रिय और शौर्य से परिपूर्ण बताया गया है ।[94] तथा इनकी स्त्री को आँजणी (जाटनी) से सम्बोधित किया गया है जो कि अपने पति के साथ खेत में काम करती थी । इससे पता चलता है कि जाट जाति कृषि कार्य से सम्बद्ध थी ।

आँजणी काइ नि सिरजी करतार ।
खेत्र कमावती स्यउं भरतार ।[95]

उस काल में हमें नट और नर्तक का भी उल्लेख मिलता है। जो बांस पर अपना खेल दिखाकर मनोरंजन किया करते थे तथा इसी से प्राप्त धन से जीविका चलाते थे।

नट नाटक डंभी डमरू नहिं बुझि झिय सुरतांन [96]

पृथ्वीराज रासो और परमाल रासो में तथा समकालीन साहित्य चंदायन में भाट और चारण नामक दो जातियों का उल्लेख मिलता है। हिंदी कोशों में इन्हे एक ही जाति माना गया|चंदायन में भाटों को युद्ध के विरद (भाटों) बताया गया है। शासक वर्ग उन्हें दान व पुरूस्कार में घोड़ा व कपड़ा दिया करते थे।

---

(94) परमाल रासो (काशी प्रकाशन) खण्ड 24 छन्द 94। ।

(95) बीसलदेव रासो (सम्पादक डा0 माता प्रसाद गुप्त) पृ0 163 दो 82

(96) पृ0 रा0 (उदयपुर प्रकाशन) आखेट चूक (पृ0 290 कवित्त 18। पृ0 रासउ (स0 डा0 माता प्रसाद गुप्त) 12:5:1 तथा 12:20:2।

दान झझ के विरूद्ध बोलावहिं । भांटन्हि कापर घोर देवावीहहै ।[97]

पृथ्वीराज रासों में भाटों को एक जाति के रूप में माना गया है ।

बरदाय दुग्ग दुग्गह सुजिय । भट्ट जाति जोहं दुनौ ।[98]

चन्दवरदाई ने चारणों को बेदज्ञ ‌‌(वेद को जानने वाला) बताया है ।[99]

सामाजिक दृष्टि से भाटों को ब्राम्हणों के समकक्ष का माना जाता था। उन्हें वेद पुराण अनेक भाषाओं आचार नीति ज्योतिष आदि का जानकार माना गया था तथा ब्राम्हणों की तरह ही आदरणीय हुआ करते थे ।

करि जुहार चहुआन, भट आदर बहु किन्नौ ।

एंव

---

(97) वृंदायन सम्पादक (डा० माता प्रसाद गुप्त) पद 26 पृ० 24 एवं हिन्दी शब्द सागर पृ० 975 तथा पृ० 2556 नालन्दा विशाल शब्द सागर पृ० 372 तथा पृ० 1016

(98) पृ० रा० (सम्पादक डा० श्याम सुन्दर दास) का नागरी प्रचारिणी सभा प्रकाशन पृ० 2186 छन्द 486

(99) पृ० रा० (काशी प्रकाशन) पृ० 189 छन्द 1041 ।

दस हस्थ रत्थ दीनो असोस, सि नियो नहों मन करियरीस

इसो प्रकार :-

किय अर्ध पाद क्षत्री सुफोत्थ । उपचार विमल बानी

सुतीत्व ।[100]

इसो प्रकार बोसल देव रासों में धार नरेश भोजराज

के द्वारा अपनी कन्या राजमतो हेतु योग्य बर देख ब्राहण और भाट के

द्वारा अजमेर के शासक बीसलदेव के पास लग्न को सुपारो भेजो थो ।

बंभण भाट बोलविया राउ । लगन सोपारीय दीन्हो पठाई[101]

पृथ्वीराज चौहान ब्राहमणों की तरह भाटों को दान और पुरस्कार दिया

करते थे।[102] परमाल रासों में युद्ध के मैदान में भी भाटों को शस्त्र नहो

चलाते हुए का उल्लेख मिलता है ।[103]

- -

(100) पृथ्वीराज रासों (काशो प्रकाशन) पृ0 1571, छन्द 72 तथा पृ0 2437 छन्द 388 तथा पृ0 2417 छन्द 244 ।

(102) पृथ्वीराज रासों (काशी प्रकाशन) पृ0 266 ।

(103) परमाल रासों (काशी प्रकाशन) खण्ड 35, छन्द 28।

पृथ्वीराज रासो में माधो भट्ट को नाटक, संगीत तर्क शास्त्र और छह प्रकार की भाषाओं को जानने वाला बताया है चन्दबरदाई और दुर्गा केदार दोनो ही को 84 विधाओं का जानकार पुराण तथा तंत्र-मंत्र को जानने वाले, स्वप्न फल, वैद्यक, शकुन शास्त्र तथा 14 कलाओं में सिद्धहस्त बताये गये हैं ।[104]

भाट युद्ध के समय वीरों को वीर-गीत सुनाकर प्रोत्साहित करते थे तथा भाट युद्ध भी किया करते थे। वंश परम्पराओं के कार्य कलापों (वंशावली) का विवरण भी दिया करते थे। क्षत्रिय वंशों की कौशल व कीर्ति का गान करते थे ।

बंस छत्तीस छत्रीन छह । भाट विरुद्ध भनंत । एवं

कविन्द राज सु सांगि लई कर में क्यमास सु डार दयौ घर में। तथा

जग्गन भाट चल्लिय । सुजाहि सग्ग विल्लिय ।
चल्यौ सुभट्ट जल्हन । नही सुयुद्ध हल्लन ।[105]

पृथ्वीराज रासौ में भाटों के लिए गर्हित शब्दों का प्रयोग किया गया है। भाटों को वचाल बताते हुए भोला भीम के द्वारा उन्हें आपस में संघर्ष करते हुए बताया गया है। पृथ्वीराज रासों में ही भाटों को आडम्बर से

---

(104) पृथ्वीराज रासो (काशी प्रकाशन) पृ0604 छन्द 8 तथा परमाल रासों (काशी प्रकाशन) खण्ड 2408 छन्द 177-181

(105) उपरिवत पृ0 549 छन्द 44 तथा पृ0 2607 छन्द 707 तथा परमाल रासों (काशी प्रकाशन) खण्ड 21 छन्द 40

परिपूर्ण तथा (घमंडी) दम्भी कहा गया है साथ ही दूसरों की सम्पत्ति को हड़प जाने वाला भी कहा गया। मोहम्मद गोरी के अंतिम आक्रमण के समय प्रजाजन ने चन्दवरदाई को ही गृहनाशक कहा है। पृथ्वीराज चौहान के सामन्त वर्ग का कहना था कि भाट और चारणों व नटों की मति सही नही माननी चाहिए । इसके द्वारा भाटों चारणों और नटों की उस समय की स्थिति समाज में अविश्वनीय मानी जाती रही होगी ।

भट नट चारन ग्रु आरत्तह । इनकी मत्ति न मन्निये सत्तह |[06]

पृथ्वीराज रासो ने निम्न वर्ग के भटों को सुल्तान के द्वारा लक्ष्य भेद खेल के लिए लक्ष्य बनाया जाता रहा बताया गया है ।

दह भट हदफ करि खिल्लयों घर आयो सुरतांन |[07]

अन्य जातियों के अन्तर्गत वे लोग भी थे जो अपने पेशे से जाने जाते थे। पृथ्वीराज रासो में (वेश्या) पात्र का उल्लेख मिलता है।

- -

(106) पृ० रा० (काशी प्रकाशन) पृ० 321 , 143 पृ० तथा 1213 छन्द 106 तथा पृ० 1018 छन्द 16 तथा पृ० 1520 छन्द 63 तथा पृ० 2133 छन्द 182 तथा ।

(107) पृथ्वी राज रासउ (सम्पादक डा० माता प्रसाद गुप्त) पृ०305 ।

वेश्यावृत्ति भी जन सामान्य थी पृथ्वीराज रासों में ‡ वेश्य‡

पात्र का उल्लेख मिलता है। वेश्यावृत्ति भी जन सामान्य को

आय का स्रोत थी :- जिते धल्इ संघट्ट बेसनिरते । तिते दव्य षो अन्त

हीनेति गन्ते ।[108]

पृथ्वीराज रासों में चित्ररेखा युद्ध का कारण बताई गई है तथा युद्ध समाप्त होने पर संधि के रूप में चित्र रेखा समर्पित की जाती है । वेश्या नृत्य और संगीत ही नहीं सर्वकला निपुण होती थी। पृथ्वीराज रासों ने करनाटी नामक वेश्या को सर्व कला प्रवीण बनाने के लिए केल्हन नामक गुरु नियुक्त किया था ।[109]

- -

‡108‡ पृथ्वीराज रासउ ‡ सम्पादक डा० माताप्रसाद गुप्त ‡ 4:23:7-8 पृथ्वीराज रासों ‡ उदयपुर प्रकाशन ‡ कवित्त 3 पृ० 243

‡109‡ पूर्ववत पृ० 290, दोहा 11, एवं पृ० 289, दो० 8, पृ० रा० ‡का० प्र० ‡ पृ० 960, छन्द 5 से पृ० 966 , छन्द 56 ।

पृथ्वीराज रासों में कुम्हार तथा इन्हें कभी-कभी कुल्लाल (कुम्भकार) कहकर भी सम्बोधित किया गया है । का वर्णन मिलता है जो कि मिट्टी के वर्तन बनाने का कार्य करते थे :- का मसि घसि कुम्भारो क्यं नयणं नैव मज्जतो । कुल्लाल चितु चक्रिु भयौ चक्कु चहूँ दिसि फेरई।[110]

पृथ्वी राज रासों में कांवर उठाने वाले कहार का वर्णन भी मिलता है

कांवरिअंध कहार किितक स्वानमि मुख छुटिय ।[111]

चंदायन में हमें तेल का व्यापार करने वाले तेली, भूजा, कोयरी, कपड़े धोने का काम करने वाले धोबी तथा दास का वर्णन मिलता है ये सभी जातियाँ अपने पेशेवर नाम से जानी जातीथीं ।

तेलि भूंज और कोयरो धोबी नाऊ चेर ।[112]

शासक वर्ग के अंगरक्षक का कार्य करने वालों को समकालीन साहित्य में खवास, पासवान , पासो नाम से पुकारा जाता था ।

भीर वाहु कान मिलि छोह मुछि दिक्खि खवास ति औटकरि।[113]

चंदायन में सुगंध का व्यवसाय करने वाले गंधाई (गन्धी) जो अत्र या सुगन्धित तेल बेचता था का भी वर्णन मिलता है ।

---

(110) पृ० रा० (उदयपुर प्रकाशन) पृ० 5 एवं पृ० 162 कवित्त 54 ।

(111) पूर्ववत पृ० 125 कवित्त 56 । तथा पृ० 176 दो 7

(112) चंदायन (सम्पादक डा० माता प्रसाद गुप्त) पृ० 246-247) तथा वर्ण रत्नाकार प० 1 प्रथम कल्लोल

(113) पृ० रा० (उदयपुर प्रकाशन) पृ० 187, कवित्त 31 ,तथा पृ० 246 दोहा 10 तथा चंदायन (सम्पादक डा० माता प्रसाद गुप्त) पद 253 पृ० 246

बसहिं संघाई "अउ" बनिजारा । जाति सरावग "अउर" प {पं} वारा ।[114]

समकालीन साहित्य में गाय व भैंसों को रखने वाले पोडार {महिषपाल} का प्रयोग मिलता है। इससे पता चलता है कि ये भी एक वर्ग हुआ करता था :

राउ न्हो सबो भइंस पीडार ।[115]

इस प्रकार हमें हाथी को चलाने के लिए तथा युद्ध में नियंत्रण में रखने के लिए मिंठ महावत का उल्लेख मिलता है :

चढ़े महाउत करें अंबारी । दांत पितरिमढ़ि सूंडि सिंगारी ।[116]

समकालीन साहित्यों में दूत जिन्हें चरह के नाम से जाना जाता था तथा दुन्ति का वर्णन मिलता है। ये शासक वर्ग के लिए कार्य करते थे। गोरी द्वारा पृथ्वीराज के दरबार का हाल दूत द्वारा ज्ञात करने का वर्णन पृथ्वीराज रासो में मिलता है ।

परिठु पंगराइ दुन्ति सुतोय आलि भुक्कने ।[117]

- -

{114} चंदायन {सं0 डा0 माताप्रसाद गुप्त} पृ0 23 पद 25 एवं पृ0 374 पद 377 ।

{115} बीसलदेव रासो { सम्पादक डा0 माता प्रसाद गुप्त}पृ0136 से दो53

{116} पृथ्वीराज रासउ { सम्पादक डा0 माताप्रसाद गुप्त} पृ0 182 एवं चंदायन {स0 ड0 माताप्रसाद गुप्त} पद 117, पृ0 115 ।

{117} पृ0 रासउ { डा0 माताप्रसाद गुप्त} पृ0 33, पृ0 309

दसौंधि नामक एक जाति का वर्णन पृथ्वीराज रासों में मिलता है ।
जयचंद ने चन्दवरदाई को अपने दरबार में बुलवाने के पूर्व एक दसौंधि को चन्दवरदाई के बारे में (काव्य-गुणों) जानकारी लाने भेजा था। संभवतः ये भी एक प्रशिक्षित दूत प्रतीत होते है जो कि गुप्तचर का कार्य भी करते थे

तिन नौ सिधय सो कहयो । बोलि परठ्ठहु चंद ।[118]

चंदायन में बाजिर जो कोई बाद्य बजाकर गाकर मांगने खाने का कार्य करता था का वर्णन मिलता है ।

बाजुर एकु " कतहुं हुत आवा । गोवर फिरई बिहाऊ गावा ।[119]
चल्यौ ब्याहि संभीर धनो, मंगन भए निहाल ।[120]

इसी प्रकार हमें मंगन (याचक) का भी उल्लेख मिलता है :-

बीसलदेव रासों में चोर जुवाड़ी कलाल का उल्लेख मिलता है ।

चोर जुवारो नइ कल्लाल ।[121]

---

(118) पृ0 रा0 (का0 प्र0) पृ0 1650 छन्द 488

(119) चंदायन (सम्पादक डा0 माता प्रसाद गुप्त) पद 54 पृ0 52

(120) पृ0 रा0 (सम्पादक मोहन सिंह , उदयपुर प्रकाशन) पृ0 323,दो 72

(121) बीसलदेव रासों (सम्पादक डा0 माताप्रसाद गुप्त) पृ0143 दो 61

पृथ्वीराज रासो में दरबान (द्वार पाल) का उल्लेख मिलता है :

तह सु अग्गइ चलि गायउ निरखि दरबान ।[122]

चौदहवीं शताब्दी की एक साहित्यिक रचना " वर्ण रत्नाकार में हमें हिन्दू समाज की निम्न श्रेणी की जातियों का उल्लेख मिलता है - तेली, तांती 'बुनकर', धुनिया, धनुक , हादी, चन्दार "चाण्डाल" चमार 'मोची' इत्यादि ।[123]

इसी प्रकार समकालीन साहित्य में कोल तथा भिल्लनी का उल्लेख मात्र मिलता है । इससे पता चलता है कि ये जनजातियाँ थी ।

मनउ कदंला कंद भिल्ली उपारे [124]

इनके अलावा हमें अनेक जंगली जातियों का भी उल्लेख मिलता है। जिनमें गुहा (निषाद) मेवातियों तवँर, मेर, मीना (मीणा) मवास (मेव) मेवासन (मेवासियों) पामर बहर, भेहरा जंगलों में रहने वाली विशेष जातियों का विवरण मिलता है तथा मंगोली जाति के भी उल्लेख मिलता है ।[125]

(122) पृथ्वीराज रासउ- (स0डा0- मातप्रसाद गुप्त)- पृ0 293 - - - - - - - -

(123) ज्योतिरीश्वर लिखित वर्ण-रत्नाकार प्रथम कल्लोल पृ0 ।

(124) पृथ्वीराज रासउ (सम्पादक डा0मातप्रसाद गुप्त) पृ0 191 (पृथ्वीराज जयचंद युद्ध पूर्वार्द्ध एवं वही पृ0 189 (पृ0 जय युद्ध पूर्वार्द्ध)

(125) पृ0 रा0 (उदयपुर प्रकाशन) दिल्ली किल्ली कथा) पृ0 94 कवित्त 29 वही पृ0 275 कवित्त 11 (अखेट चूक) पूर्ववत पृ0 97 (लोहान आजाद बाहु) कवित्त 3 पूर्ववत , पृ0 151, कवित्त 32, पूर्ववत ,पृ0 148 (नाहरराय कथा) दो 25 पूर्ववत पृ0 203 (भूमि स्वप्न कथा) कवित्त 24 ,पूर्ववत पृ0 286 (चित्ररेखा) कवित्त 2, पूर्ववत पृ0 202 (भूमि स्वप्न कथा) कवित्त 23 , पूर्ववत पृ0 235 (माधो भट्ट कथा) दो -43

मुस्लिम समाज

तात्कालीन भारत में अनेक व्यवसायों के अनुसार अनेक जातियाँ -उपजातियाँ चतुर्वर्ण में समाहित हो गई थीं और इनके विविध कार्य-कलाप विशिष्ट हो गये थे। बंधुत्व व समानता पर आधारित होने के कारण इस्लाम धर्मावलम्बियों की कोई विशेष वर्ण-व्यवस्था नहीं थी परम्परागत भारतीय समाज द्वारा इन्हें मलेच्छ कह कर सम्बोधित किया गया है ।

ग्रहे मेछ भग्गे जुरे सुर छुट्टे ।[126]

समकालीन हिंदी साहित्य में मुसलमानों को हमीर नाम से भी पुकारा गया है ।

भिरे जाम दोई जुथ्य हींदू हमीरं ।[127]

इसी प्रकार चूँकि भारत वर्ष में तुर्कों का राज्य स्थापित हुआ था अत: लोग सभी मुस्लिमों को तुर्क कहकर भी पुकारा करते थे ।

रहै जानि हिंदु तुरक खेलि होरी ।[128]

तथा इसी प्रकार -

चढ़े मेच्छ हिन्दू मिली जुद्ध अन्नी ।[129]

मुसलमानों को ही समकालीन साहित्य में दानव और असुर भी कहा गया है ।

लच्छीन ग्रीव बस बोर रस ।
दह दिसि भिरि दानव मिलिय[130]

तथा-उतर आसुर सेनारचो । मज्झे हाहुलि जंगु ।[131]

---

[126] पृ0 रासउ झांसी 11:12:16

[127] पूर्ववत 11:12:17

[128] पूर्ववत 11:12:28

[129] पृ0 रा0 [सम्पादक, डा श्याम सुन्दर दास का ना0 प्र0 सभा प्र0] पृ0 1109 छन्द 75 ।

विवेच्य काल में फिरंगी, नए मुसलमान और मुसलमानों के लिए असुर दानव, निशाचर, म्लेच्छ और पिशाच आदि का सम्बोधन प्रयुक्त होने के कारण पारस्परिक धर्म-विद्वेष था। वेद-विहित मान्यताओं की अवहेलना करने वालों को प्रारम्भ से ही इन शब्दों से सम्बोधित किया जाता था। कहीं-कहीं मुसलमानों के लिए "यवन" शब्द का भी प्रयोग किया गया है। इसी प्रकार हिन्दुओं को भी मुसलमान घृणा वश "काफर" कह कर पुकारते थे।

कहा डर काकर दामहु मुज्झ।

कहा भर अवध आगीर जुज्झ।[132]

समकालीन साहित्य में हमें पठानों का भी उल्लेख प्राप्त होता है तथा पृ० रा० रा० में उनका आकृति मूलक चित्रण किया गया है, जिसमें उनके ऊँचे कंधे, छोटी गर्दन, लम्बा मुँह, लम्बी बाहें, लाल रंग के कान, मुँह और आँखें बताई गई है।

ऊँच कहर कंधान, छोट गिरदान लंब मुख।

रक्त कर्न मुख-चक्खु, कंकु अनसंक अपीन भुअ।[133]

पृथ्वी राज रासो के अनुसार मुगल दाढ़ी और मूँछ दोनों रखते थे।[134] समकालीन साहित्य में मुसलमानों की अनेक जातियों का उल्लेख हुआ है।

सरवानि सेरानि मुगल्ल कही। बहुजाति अनेक अनेक मती। तथा इसी प्रकार से-

---

[132] पृ० रा० सं० डा० श्याम सुंदर दास पूर्वोद्धृत पृ० 2029 छन्द 117

[133] पृ० रा० सं० मोहन सिंह उदयपुर प्रकाशन भाग 1 पृ० 187 छन्द 31

[134] पृ० रा० सं० डा० श्याम सुन्दर दास का० ना० प्र० सभा० प्रकाशन पृ० 2405 छन्द 146

अनेक जात जानैति कुल। हिरह मैत असि ग्राहि करद।

तुरकान बीच बल्लोच बर। चिंतपुर हासो मरद।[135]

तात्कालीन मुसलमानों में भी फौज में स्थान विशेष के आधार पर जातियों के नाम दिये जाते थे। इनमें गहव्वर, तक्षर गणखर, खुरासानो, रूमी, मुगल, हब्सी, सरवानो, ऐराकी, बदली और उजबक आदि जातियों के सैनिक शामिल थे।[136]

इसी प्रकार से मुस्लिम जातियों का उल्लेख मिलता है:

> खां खुरसान ततार, बीय तत्रार बंधारो हबसो रोमो विलचि
> इलीच षूरेस बुखारी सैद सेलानो सेष, वोर भट्टी मैदानो चोगत्ता
> चिमनोर, पोर जादा लोहानो, अन्नेक जात जानैतिकुल, बिरहनेज
> असि ग्राहि करद। तुरकम गीच बल्लोच बर चिंत पूर हासो मरद।[37]

शहाबुद्दीन गोरी के दरबार में चौंतीस मुस्लिम जातियों के नाम गिनाये गये है।

---

§135§ पूर्ववत पृ0 948 छन्द 20 तथा पृ0 1362 छन्द 99।

§136§ उपरिवत् पृ0 948 छन्द 17-20 तथा पृ0 1365, छन्द 99।

§137§ पूर्ववत् समय 51, छन्द 99

रोहमी रोहंगी रूहेल सुरमी ।

सुहन्नी त्रवनी सुहक्के करमी ।

धरेते तरते सुधारे सुमेले ।

तुरक्की ममकी मनन्न जलेले ।

हबस्सी हकम्मे रहन्ने सुहन्ने ।

पवंगे पवंगी पवन्ने सुपन्ने ।

भिवाजी विराजी संकज्जे हसतल्ले।

समन्नी सुसुन्नी सुगल्ले मसल्ले ।

सुभ सेख जादे आवेद पठाणे। विख साहि गोरी गरज्जे सुठाने ।[138]

मुसलमानों में भी तुर्क पठान आदि भी क्षत्रियों के समान वीर थे उनकी भी यह मान्यता थी कि युद्ध स्थल में प्राण त्याग करने वाले मुसलमानों को बहिश्त ‖स्वर्ग‖ में हूरे ‖ परियाँ ‖ वरण करती है।
मुसलमानों में भी स्वामिधर्म क्षत्रियों की हीभांति था और जो व्यक्ति युद्ध-क्षेत्र में स्वामी का साथ छोड़ता था, उसे दोजख अथवा नरक मिलता था और इस प्रकार के भगोड़ों का मांस कुत्ते और कौवे तक नहीं खाते थे ।

बुद्धि सुबर भिरत्त अरू वचन जिय, आनंघी गोरी गरूव । तथा इसी प्रकार से :-

- -

‖138‖ पृ० रासउ० सम्पादक डा० माताप्रसाद गुप्त, पृ० 296-297

क्षत्रिन इच्छत अच्छरो भिच्छयि इच्छत हूर ।[139]

तुर्कों की वीरता और स्वामी भक्ति का प्रतीक मीर हुसैन है जो कि मोहम्मद गोरी का चचेरा भाई था। युद्ध-क्षेत्र में पृथ्वीराज की तरफ से लड़ता हुआ मारा जाता है ।[140] मुसलमानों की निर्दयता का उल्लेख भी समकालीन साहित्य व इतिहास में मिलता है ।[141] मोहम्मद गोरी के द्वारा पृथ्वीराज चौहान की निर्ममता पूर्वक आँखें फोड़वा दी जाती है । जब कि पृथ्वीराज चौहान ने उसे कई बार कैद से आदर पूर्वक मुक्त किया था ।

तुम कढ्ढहु चहुआन । नयन दिठ बंकन छंडय ।
भ्रम परि तेन वहु आन । गहि । बंधिय राजन कढ्ढि द्रिग ।[142]

इसी प्रकार पृथ्वीराज रासो में ही मंगोल जन जाति का उल्लेख मिलता है ।[143]

---

(139) पृ0 रा0सं0 कविराव मोहन सिंह, उदयपुर प्रकाशन भाग -2 पृ0 508 छन्द 26 तथा भाग 4, पृ0 74।

(140) पूर्ववत भाग-1 पृ0 296 , छन्द 71, कीर्तिलता, द्वितीय पल्लव, छ॰ 174, पृ॰ 245

(141) पूर्ववत् भाग 1 पृ0 296 छन्द 71

(142) पृ0 रा0 सम्पादक डा0 श्याम सुन्दर दास का ना0 प्र0 सभा प्रकाशन पृ0 2373 छन्द 163।

(143) पृ0 रासउ सं0 , डा0 माताप्रसाद गुप्त , 7:10: 9

निरूपित काल में मुस्लिम समाज की रचना बहुत ही सरल थी। सुल्तान प्रजा का नेता और समाज का प्रधान होता था। वह समाज की सर्वोच्च स्थिति का उपभोग करता था। वह राज्य का सबसे महत्वपूर्ण व्यक्ति होता था तथा उसे देश का सबसे धनी-मानी माना जाता था। एक राजा और समाज के नेता की हैसियत से वह सामाजिक और सांस्कृतिक स्थिति का निर्धारण करता था।[44] अधिकांश सुल्तानों ने अपने राजस्व का मुख्य अंश नगरों राज प्रसादों राजकीय परिवार, उद्यानों, अस्त्र-शस्त्र और अपने कुलीनों पर व्यय किया। सामान्यत: ये विलासिता पूर्ण एवं आडम्बर पूर्ण जीवन व्यतीत करते थे। कुरआन में भी सुल्तानों की महत्ता का उल्लेख इस प्रकार है - " हे ईमान इस्लाम धर्म वालों । अल्लाह और रसूल " ईश्वर के दूत" का आदेश मानो साथ ही " उलिल उमरा" अर्थात सुल्तान का भी आदेश मानों ।।[44 ए]

एक अन्य स्थान पर पैगम्बर " हजरत मुहम्मद " ने कहा है " जिसने मेरा आदेश माना उसने अल्लाह का आदेश माना और जिसने इमाम "सुल्तान" का हुक्म माना उसने मेरा हुक्म माना और जिसने मेरी आज्ञा का उल्लंघन किया उसने ईश्वर की आज्ञा का उल्लंघन किया और जिसने इमाम " सुल्तान" की आज्ञा का उल्लंघन किया उसने मेरी आज्ञा का उल्लंघन किया ।[45] आगे पैगम्बर कहता है " हे लोगों यद्यपि तुम्हारा वली " सुल्तान हब्शी निग्रो, अदद "दास" और अन्दा बिना काम

---

§144§ तारीखे फखरूद्दीन मुबारक शाह ई0 डेनिसन रॉस द्वारा सम्पादित

§144ए§ तारीखे फखरूद्दीन मुबारकशाह ई0 डेनिसन रॉस द्वारा सम्पादित
आर0 ए0 एस0 1927 पृ0 12।

§145§ वही

का हो तथापि, तुम्हें उसका आदेश मानना चाहिए ।[146]

एक अन्य स्थान पर पैगम्बर का कहना है " सुल्तान द्वारा मात्र एक घंटे का न्यायवितरण ने अल्लाह की उपस्थिति में उसे (सुल्तान को) उस व्यक्ति से भी अधिक धार्मिक और सदाचारी बनाया जो व्यक्ति साठ वर्षों तक " रमजान" में उपवास करके अथवा सम्पूर्ण रात्रि नमाजें पढ़ के " अबादत " (ईश्वरोपासना) किया है ।[147]

सम्राट के ठीक पश्चात दो स्थूल सामाजिक विभाजन थे। " अहल -ए-सैफ " (तलवारधारी) और " अहल-ए- कुलम " (लेखनी धारी) लिखित रीतियों के आधार पर यह प्रमाणित होता है कि पिछला वर्ग प्रथम एक या दो पीढ़ियों तक पूर्ण रूपेण अ- तुर्की विदेशियों के दायरे तक ही सीमित था । उन्हीं में से लिपिक -सेवाओं, जैसे- कातिब, दबीर वजीर आदि के लिए लोगों की नियुक्ति होती थी ।[148] कुलीन वर्ग (उमरा या खान)की गणना - अहल-ए सैफ " की श्रेणी में होती थी। वे साधारणतया सत्तारूढ़ सुल्तान के पक्ष में होते थे, किन्तु यदा -कदा उसने अधिकारों का अपहरण कर लेते थे।

---

(146) तारीखे- फखरूद्दीन मुबारक,शाह ई डेनिसन रॉस द्वारा सम्पादित आर० ए० एस० , 1927 पृ० 13

(147) वही पृ० 14

(149) ए० बी० एम० हबीबुल्लाह, दि फाउन्डेशन ऑफ मुस्लिम रूल इन इंडिया लाहौर सितम्बर 1945 पृ० 274

और जब कोई सन्तायुक्त वंश दुर्बल और अयोग्य हो जाता तो वे इतने शक्तिशाली बन जाते कि स्वयं अपना एक शासक वंश स्थापित कर लेते थे। यद्यपि एक कुलीन के अधिकार छीन लिए जाते अथवा किसी प्रकार उसकी प्रतिष्ठा और शक्ति का अपहरण हो जाता , तथापि उसके परम्परागत महात्म्य और सामाजिक प्रतिष्ठा निश्चित रूप से उसकी सन्तान को सौंपे जाते थे। और जनता की स्वीकृति से जो कि पैतृक -सिद्धांतों का अनुसरण करती थी उसकी पूर्वावस्था की प्राप्ति समय और अवसर पर निर्भर करती थी ।[149]

कुलीन वर्ग सल्तनत का विशाल आधार था। एक कुलीन सामान्यत: सुल्तान या किसी अन्य बड़े कुलीन के दास या अनुचर के रूप में अपना जीवन आरम्भ करता था और कभी-कभी वह क्रमिक पदोन्नति से एक उच्च पद पर आसीन हो जाता तथा अमीर की प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेता था। एक कुलीन की सर्वोच्च उपाधि "खान" थी। उसके पश्चात मलिक और अन्त में अमीर की उपाधि थी। उसके सिपहसालार आदि की तरह सैनिक उपाधियाँ थीं।[150]

---

(149) के0 एम0 अशरफ , लाईफ एण्ड कंडिशन्स ऑफ दि पीपुल ऑफ हिन्दुस्तान जीवन प्रकाशन दिल्ली 1959 पृ0 10, 55 ।

(150) पी0 एन0 ओझा आस्पेक्ट्स ऑफ मैडिवल इण्डियन कल्चर पुस्तक भवन राँची, अप्रैल 1961 प्रथम संस्करण पृ0 130-131 ।

भारतीय कुलीन -वर्ग की रचना सर्वथा विजातीय थी, जैसे तुर्की, अरबी, अफगानी , पारसी , मिस्री, मुगल और भारतीय । मध्ययुगीन भारत के मुस्लिम अभिजात्य वर्ग कम से कम इस काल के प्रारम्भिक हिस्से में विशेषकर विदेशी अप्रवासियों द्वारा ही गठित था। किन्तु समय-क्रम से उन्होंने अपने को वातावरण के अनुकूल बना लिया था तथा पूर्णतया भारतीय हो गये । उन्होंने राजनैतिक और प्रशासकीय क्षेत्रों में नेता प्रदान किए। भारतीय मुसलमानों में अधिकांश संख्या उन्हीं लोगों की है, जिनके पूर्वजों ने इस्लाम -धर्म स्वीकार कर लिया था। उन्होंने अपना वैवाहिक सम्बन्ध हिन्दू-समाज की उन समकक्षी श्रेणियों से स्थापित रखा जिनसे उनका पहले से सम्बन्ध था ।[151]

इस काल के आरम्भ में भारतीय मुसलमानों को न केवल विजयी अभिजात वर्ग के शासकों में सम्मिलित होने से ही वंचित रखा जाता था, बल्कि उनके सह-धर्मियों द्वारा उपयुक्त सामाजिक और आर्थिक विशेषाधिकारों में भी इनका कोई हिस्सा नहीं था। जो भी हो चौदहवीं सदी के मध्य से उन्होंने राज्य के कार्यों में हाथ बँटाना आरम्भ किया। हालाँकि उनका सहयोग सदा आर्थिक और महत्वपूर्ण नहीं होता था ।[152] कुलीन वर्ग राज्य में सेना -नायकों प्रशासकों और कभी-कभी राजकर्ता के रूप में प्रभावयुक्त सामर्थ्य का प्रयोग करते थे।

---

(151) यूसुफ हुसेन ग्लिम्पसेस ऑफ इण्डियन कल्चर एशिया पब्लिशिंग हाउस बम्बई द्वितीय संस्करण 1959, पृ0 129

(152) पी0 एन0 ओझा, पूर्वोद्धृत , पृ0 128

शक्तिशाली राजाओं के अधीन कुलीन राज्य की सेवा भक्ति से करते थे। किन्तु जब भी सुल्तान शक्तिहीन हो गये तो कई कुलीनों ने अपना स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिया। प्रभावशाली और प्रबल कुलीनों ने हर सम्भव रीति से सुल्तान से स्पर्द्धा करने की चेष्टा की । सल्तनत काल के अन्तिम वर्षों में कुछ कुलीनों ने ऐसे भवनों का निर्माण किया जो राजप्रासादों के तुल्य होते थे।[153] कुलीन वर्ग अनेक कलाओं एवं विद्याओं के प्रसिद्ध पोषक थे तथा स्वयं भी विद्वान नम्र, शिष्ट और विनीत थे।[154]

इसके अतिरिक्त मध्ययुग के मुस्लिम समाज में " उल्मा" वर्ग विशेष प्रभावशाली था। अपने धार्मिक ज्ञान के कारण उनको बहुत प्रतिष्ठा थी। पैगम्बर (हजरत मुहम्मद) की अनेक परम्पराओं के आधार पर उनका उल्लेख पैगम्बर के उत्तराधिकारी के रूप में होता है ।[155] उल्मा में भी सर्वाधिक सम्मानित उपवर्ग " अहल-ए-कल्म " था। यह धर्मोपदेशकों, आध्यात्मवादियों और विद्वानों द्वारा निर्मित था। ये लोग "उमरा" के साथ मिलकर मुस्लिम समाज के प्रथम दो वर्गों की रचना करते थे। यद्यपि

---

(153) इब्नबतूता (दि रेहला) पृ0 141

(154) इब्नबतूता(दि रेहला) पृ0 141

(155) निजामी, सम आस्पेक्ट्स ऑफ रिलिजन एण्ड पालिटिक्स इन इण्डिया ड्यूरिंग दि थरटीन्थ सेन्चुरी, एशिया पब्लिशिंग हाउस बम्बई 1961, पृ0 150

ईसाईपादरियों के समान ये सुव्यवस्थित नहीं थे, तब भी परस्पर में भली-भांति संगठित थे और अपनी महत्ता के प्रति अत्यधिक सजग और अपने विशेषाधिकारों के प्रति बहुत उत्साही थे। वे अदालती और धर्मोपदेश-विषयक सेवाओं पर नियुक्त किये जाते थे और जहाँ कहीं भी मस्जिद होती प्रत्येक मुस्लिम बस्ती में एक " इमाम" एक " कातिब " एक मुहतसिब और एक " मुफ्ती" होते जो उस पक्ष का प्रतिनिधित्व करते जिसे राज्य की मान्यता प्राप्त थी। वे शिक्षा संस्थाओं पर निश्चित रूप से नियन्त्रण रखते थे। इस प्रकार धार्मिक चिंतन और शिक्षा को विकसित करते थे जो कि इसके महात्म्य को अधिक दृढ़ करता था ।[156] सदरूस्सदर अथवा प्रमुख सद्र का प्राधिकारी जो कि अधिकार पूर्वक इस वर्ग का सभापतित्व करता था, " मुशेख " नामक वर्ग को छोड़कर शिक्षित मुसलमानों को स्वीकार कर लेता था। इन रहस्य वादी संत -मुशेखों की स्वच्छन्दता और इनकी अन्य सांसारिक आसक्तियाँ उदार (कुलीन) ('उलमा वर्ग') को कभी पसन्द नहीं हुई ।[156(a)]

सैद्धान्तिक रूप से मुस्लिम समाज जाति-प्रथा विहीन था। लेकिन सार्वलौकिक मुस्लिम बन्धुता भारतीय वातावरण में सामाजिक भेद-भाव में अछूता नहीं बच पाया। और ये भी हिन्दुओं की भाँति अनेक प्रकार के भेद-भाव से प्रभावित हो वर्गीकृत हो गए ।

- -

156) ए0 बी0 एम0 हबीबुल्लाह, दि फाउन्डेशन ऑफ मुस्लिम रूल इन इण्डिया लाहौर, सितम्बर 1945, पृ0 274 ।

मुख्यतया कुलीनों , उच्च राज्य पदाधिकारियों और उलमाओं द्वारा निर्मित विशेषाधिकार प्राप्त उच्च श्रेणी के अतिरिक्त अन्य मुस्लिम जनता जनसाधारण के दायरे में आती थी। उनकी जीवन-चर्या लगभग बहुसंख्यक हिन्दू जनता की तरह ही थी। मुस्लिम समाज के निम्नतम वर्ग में विशेषतया शिल्पी, दूकानदार, छोटे व्यापारी कुछेक किसान और कामगार, निम्न ओहदे के सरकारी नौकर और लिपिक होते थे। इसके अलावा मुस्लिम हज्जाम, दर्जी, धोबी, मल्लाह, घसियारे, बाजेवाले, तम्बोली, माली, तेली , मदारी संगीतज्ञ और चरवाहे इत्यादि भी थे। भिखारी और निराश्रित भी इस श्रेणी में आते थे ।[157]

इसी वर्ग का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण भाग था जिसमें सूफी संत और "दरवेश " होते थे , जो कि समस्त देश में व्याप्त थे। इनका सर्वसाधारण पर पर्याप्त प्रभाव था तथा ये जनता के बहुत निकट थे। ईश्वरोपासना के समय इनकी प्रतिष्ठा अपनी उच्चतम सीमा पर होती थी। धनी-गरीब, छोटे-बड़े , स्त्री -पुरुष सभी इनके शिष्य हो गये। उनके"खानका" आश्रम"§ विद्वानों , कुलीनों और जनसाधारण के मिलन-स्थल थे । राजाओं और

- -

§157§ के0 एम0 अशरफ , लाईफ एण्ड कैंडिशन्स ऑफ दि पीपुल ऑफ हिन्दुस्तान, जे0 ए0 एस0 बी0 1935 , पृ0 193 तथा पद्मावत नागरी प्रचारिणी सभा बनारस पृ0 154 एवं 413

जनसाधारण द्वारा सामान रूप से सम्मानित इन सूफी सन्तों ने देश में एक स्वस्थ सामाजिक एवं राजनैतिक वातावरण उत्पन्न करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। साधारणतया राजाओं और कुलीनों ने उदारता से इन सन्तों को जागीरें दीं। किन्तु उनमें जो सच्चे सन्त थे उन्होंने किसी प्रकार के दानों या सेवकों को स्वीकार नहीं किया।[158]

मुसलमानों का एक वर्ग गृह-सेवकों और गुलामों द्वारा निर्मित था जिनकी एक विशाल संख्या थी। वे उच्च वर्ग के मुस्लिम समाज तथा गृहस्थी के एक महत्वपूर्ण और स्वाभाविक स्वरूप की रचना करते थे। प्रत्येक सुल्तान कुलीन और सम्पन्न व्यक्ति, चाहे वह राज्य की सेवा में हो या व्यापार में, विभिन्न राष्ट्रों के स्त्री-पुरुषों को गुलाम या सेवक के रूप में रखते थे। उन्हें गृहस्थी के कार्यों में और राजकीय "कारखानों" में नियुक्त किया जाता था। स्वामीजन इन गुलामों की देख-रेख करते थे। क्यों कि लाभदायक सेवाओं के स्रोत थे और कभी-कभी तो उनसे आर्थिक लाभ भी होता था।[159(1)]

सुल्तान कभी-कभी -विशेषकर, उनकी निष्ठा और राजभक्ति से प्रसन्न होकर उन्हें स्वतंत्र कर देते थे। उनमें से कुछ तो अपनी कुशाग्र बुद्धि के कारण राज्य सेवाओं के उच्च पद तक पहुँच गये थे। इसके अतिरिक्त भारतीय गुलामों में

---

(158) इब्नबतूता पृ0 70 निजामुद्दीन औलिया की राहतुल-कुलूब पृ0 38-40 एवं के0 एस0 लाल (ट्वाइलाइट ऑफ दि सल्तनत में उद्धृत है एशिया पब्लिशिंग हाउस बम्बई 1963 पृ0 264 तथा अफीफ कृत तारीख ए फिरोजशाही बिब इण्ड कलकत्ता 1891 पृ0 179

आसामी (जो अपने सुगठित डीलडौल के कारण विशेष मूल्यवान थे) तथा बाहर से चीन, तुर्कीस्तान और ईरान जैसे देशों से मँगाए गये स्त्री-पुरुष थे। दासियाँ दो प्रकार की होती थीं :- वे जो गृह -सेविकाओं का काम करती थीं और वे जो मनोरंजन और समागम के लिए खरीदी जाती थीं। इसी कारण इस दूसरी श्रेणी की दासियाँ राजकीय तथा कुलीन गृहों में अधिक प्रतिष्ठित और कभी-कभी तो प्रभुत्वपूर्ण स्थान रखती थीं। उनका मूल्य उनके व्यक्तिगत सौन्दर्य , सुशीलता और शारीरिक योग्यता के अनुसार होता था।[59] गुलाम साधारणतया युद्धबन्दी और गुलाम माता-पिता से उत्पन्न व्यक्ति ही होता था। उसका जीवन बन्दी बनाने वाले या उसके स्वामी की कृपा पर निर्भर होता था । उसका स्वामी उसके जीवन-मरण का अधिकारी होता था। इस प्रकार एक गुलाम उस समय कानून की दृष्टि में एक स्वतंत्र नहीं था और उसे किसी प्रकार का भी अधिकार प्राप्त नहीं था। दास संस्था ने भले ही सुल्तानों और कुलीनों के हितकर उद्देश्यों की पूर्ति की हो, परन्तु इस प्रथा ने कुछ घातक सामाजिक परिणाम उत्पन्न किए । निश्चित रूप से इसमें अवनति की छाप थी और यह हमारे सामाजिक जीवन की अव्यवस्था का लक्षण था ।[60]

---

§59§ प्रो० एन० ओझा० आस्पेक्ट्स ऑफ मेडाइवल इण्डियन कल्चर पुस्तक भवन राँची प्रथम संस्करण अप्रैल 1961 पृ० 133-134 ।

§60§ पूर्ववत् पृ० 134

अध्याय -2

स्त्रियों की सामाजिक अवस्था

किसी भी सभ्यता की सामाजिक अवस्था की जानकारी का एक विश्वसनीय स्त्रोत उस सभ्यता में स्त्रियों की स्थिति है। हम कह सकते है कि किसी देश की सभ्यता संस्कृति एवं शिक्षा का प्रतिबिम्बन स्त्रियों की सामाजिक दशा से होता है।[1] प्राचीन भारतीय स्मृतिकारों ने निर्देशित विधानो के अन्तर्गत समाज में स्त्रियों की स्थिति का अंकन जिस रूप में किया है उससे यही स्वर निकलता है कि स्त्री को पुरुष के कठोर नियंत्रण में रहते हुए घर के अंदर सारी स्वतंत्रताओं सम्मान के उपभोग का अनन्य अधिकार था। इस संदर्भ में सर्वमान्य स्मृतिकार मनु को उद्धृत किया जा सकता है :- "एक बालिका की अवस्था में, यौवनावस्था में अथवा प्रौढ़ावस्था में भी (स्त्रियों को) स्वयं अपने घर में भी कुछ भी नहीं करना चाहिए। एक स्त्री के अपने बाल्यकाल में अपने पिता, यौवनावस्था में अपने पति एवं जब उसके स्वामी (पति) का देहान्त हो जाए तो अपने पुत्र के संरक्षण में रहना चाहिए, एक स्त्री को कदापि स्वतंत्र नही रहना चाहिए। उसे कदापि अपने पिता, पति अथवा अपने पुत्रों से पृथक नहीं होना चाहिए, इन्हे त्याग कर वह (अपने एवं अपने पति-दोनों) परिवारों को अपमानित करती है।"[2]

---

1. डा० रेखा मिश्रा (अज जोशी), वीमेन इन मुगल इण्डिया, पी-1, तथा हेरन्द चतुर्वेदी, (अप्रकाशित शोधग्रंथ, इला०वि०वि०), द सोसाइटी ऑफ नार्थ इण्डिया इन द सिक्सटींथ सेंचुरी, पी० 139.
2. दी लॉव ऑव मनु (मनु के सिद्धांत) अध्याय 5, भाग 147-149 जैसा कि "दी सेक्रेड बुक्स ऑव दी ईस्ट" (सम्पादक एफ० मक्समूलर) खंड 25, आक्सफोर्ड 1886, पृ० 195 पर उद्धृत है।

एक अन्य स्थान पर मनु लिखता है, " दिन-रात स्त्रियों को अपने परिवार के पुरुषों पर आश्रित रहना चाहिए, और यदि वे स्वयं को विषयासक्त करती हों तो उन्हें केवल एक ही (पुरुष) के नियन्त्रण में होना चाहिए। बाल्यकाल में उसका पिता, यौवनावस्था में उसका पति तथा प्रौढ़ावस्था में उसके पुत्र उसकी रक्षा करते हैं, एक स्त्री कदापि स्वतंत्र रहने के योग्य नहीं (वह "पिता" निन्दनीय है जो अपनी पुत्री का विवाह उचित समय पर न कर दे, वह "पति" निन्दनीय है जो अनुकूल ऋतु में अपनी पत्नी से संसर्ग नहीं करता, और पुत्र निन्दनीय है जो अपनी माता के विधवा होने पर उसका संरक्षण नही करता। स्त्रियों को विशेषकर कुप्रवृत्तियों से रोकना चाहिए, भले ही वे (कुप्रवृत्तियाँ) नगण्य ही दीख पड़ें, क्योंकि यदि उन्हें रोका न जाए तो दोनों परिवारों के लिए वे (स्त्रियाँ) संताप का कारण सिद्ध होंगी। सभी जातियों के उच्चत्तम कर्त्तव्यों पर विचार करते हुए यह आवश्यक है कि निर्बल पतियों को भी अपनी पत्नियों पर नियन्त्रण रखने की चेष्टा करनी चाहिए। जो सावधानी से अपनी पत्नी के प्रति चौकस रहता है। वह अपनी सन्तानों की पवित्रता, सच्चरित्रता, अपने कुटुम्ब, स्वयं को एवं अपनी श्रेष्ठता प्राप्त करने के माध्यम को परिरक्षित रखता है। 3 यद्यपि मनु ने स्त्रियों को सदा ही एक पराधीन अवस्था में सौंपा है तथापि समाज में उनकी (स्त्रियों की) सम्मानित दशा की ओर इंगित करना वह नहीं भूला। वह लिखता है, "पिताओं भाईयो, पतियों तथा देवरों (जो

- -

3. दी लॉज ऑव मनु, अध्याय 9, भाग 2-7, "दी सैक्रेड बुक्स ऑव दी ईस्ट" खंड 25, पृ0 327-328 द्वारा उद्धृत है।

स्वयं अपने कल्याण की कामना करते हैं। को चाहिए कि स्त्रियों को प्रतिष्ठित एवं सुशोभित रखें। जहाँ स्त्रियों की प्रतिष्ठा होती है, वहाँ देवता प्रसन्न होते है, किन्तु जहाँ उनका सम्मान नहीं होता, किसी भी पवित्र (धार्मिक) संस्कार का प्रतिफल नहीं प्राप्त होता। जहाँ स्त्रियाँ क्लेश में रहती है, (वहाँ) सम्पूर्ण कुटुम्ब का नाश हो जाता है, किन्तु वह कुटुम्ब जहाँ वे दु:खी नहीं होती, सदा कृतार्थ होता है। वह गृह जहाँ स्त्रियों की समुचित प्रतिष्ठा नहीं होती है, जैसे कि उस (घर) पर जादू का प्रभाव हो गया हो। अत: जो पुरुष अपने कल्याण की इच्छा रखते हैं उन्हें अवकाश के दिनों तीज-त्यौहारों में आभूषणों, वस्त्रों तथा स्वादिष्ट भोजन की भेंट देकर अपनी स्त्रियों को सम्मानित करना चाहिए। उस परिवार में जहाँ, पति अपनी पत्नी से एवं पत्नी अपने पति से तृप्त (प्रसन्न) हो- निश्चित रूप से आनन्द का राज्य होता है।"[4] इसके अतिरिक्त मनु के मानव धर्म-संहिता से विदित होता है कि वह इन (स्त्रियों) की (राजकीय सेवा में, औद्योगिक तथा कृषि कार्यों में) नियुक्त पक्ष में था। वह लिखता है "उन स्त्रियों के लिए जो कि राजकीय सेवा में रत हों, उनकी पदवी और उनके कार्य के महत्वानुसार उसे (राजा को) उनके दैनिक निर्वाह (वेतन) निश्चित करना चाहिए।" [5]

---

4. दी लॉज ऑव मनु, अध्याय 3 भाग 55-60, "दी सैक्रेड बुक्स ऑव दी ईस्ट) खंड 25, पृष्ठ-85-86 से उद्धृत।

5. दी लॉज ऑव मनु, अध्याय 7, भाग 125,पृ0-236

इस प्रकार मनु के अनुसार पूर्व मुस्लिम काल में हिन्दू स्त्रियों को समाज में एक प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त था। उनकी प्रतिष्ठा सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक दोनो रूप में विधमान थी। मुस्लिम आगमन के साथ ही अवलोकित काल में इनकी सामाजिक स्थिति में एक परिवर्तन का प्रादुर्भाव हुआ। कुरआन से विदित होता है कि मुस्लिम स्त्रियों को भी समाज में एक प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त था। कुरआन में वर्णित है, "हे ईमान लाने वालो"। तुम्हारे लिए यह वैध नही कि स्त्रियों के बलपूर्वक उत्तराधिकारी बन बैठो, और न यह वैध है कि उन्हें इस कारण रोको कि जो कुछ तुमने उन्हें दिया है उसमें से कुछ भाग ले लो, हाँ यदि वे प्रत्यक्ष रूप से अश्लील कर्म करें तो अन्य बात है। और उनके साथ सद्व्यवहार से रहो-सहो, यदि वे तुम्हें अप्रिय लगें तो सम्भव है कि जो चीज तुम नापसन्द करते हो और अल्लाह उसमें बहुत कुछ कल्याण उत्पन्न कर दें। "[6] हिन्दुओं का उल्लेख करते हुए अलबेरूनी लिखता है, "सभी समस्याओं एवं संकटों में वे स्त्रियों से परामर्श लेते हैं।"[7] अत: यह स्पष्ट हो जाता है कि राजनीतिक परिवर्तनों के साथ सामाजिक आर्थिक क्षेत्रों में भी परिवर्तन अपरिहार्य है।

अत: स्त्रियों के संदर्भ में परिवर्तित सामाजिक न्याय एवं रीति-रिवाज भी परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित हो गए।[8]

---

6. दी होली कुरआन, अनुवादक मौलवी मुहम्मद अली, प्रकाश अहमदिया, अंजुमन-ए-इशात-ए-इस्लाम, लाहौर, द्वितीय संस्करण, 1920, अध्याय 4, भाग-3, उपदेश-19, पृष्ठ-205-206, "मुस्लिम आउट लुक" खंड-28, 1938 भी देखे जिसमें पृष्ठ 153-163 पर बेगम सुल्तान मीन अमीरूद्दीन का "वीमेन्स स्टेट्स इन इस्लाम" शीर्षक लेख प्रकाशित है।
7. अलबेरूनीज "इंडिया (सचाऊ) । पृ0 181
8. पी0एन0 चोपड़ा, गिमसेस् आफ सोशल लाइफ पृ0 62 तथा हेरम्ब चतुर्वेदी पूर्वोद्दत पृ0 139

अन्तत: तुर्की राज की स्थापना के साथ ही स्त्रियों की दशा में और भी गिरावट प्रारम्भ हो गई।[9] जैसा कि ऊपर अलबेरूनी के वर्णन से स्पष्ट होता है उसके काल तक स्त्रियों की दशा प्राय: सहभागनी की थी। अत: यह परिवर्तन भारत वर्ष में तुर्की राज्य की स्थापना के उपरान्त ही आया और यह मूलत: स्त्रियों को विषयासक्त की सामग्री के रूप में शासक वर्ग द्वारा मानने के कारण सर्वाधिक हुआ।[10]

कन्या जन्म :

समाज में स्त्रियां सम्मानीय मानी जाती, किन्तु एक पुत्री का जन्म परिवार में एक अशुभ घटना मानी जाती थी। किन्तु दाऊद कृत चंदायन में पुत्री जन्म को एक विशेष शुभ अवसर के रूप में भी लिया गया है एवं इस अवसर पर खुशियां मनाई जाती रही हैं। इस जन्म की घटना को सहदेव महर के घर चांद के अवतार के रूप में लिया गया।[11] इस जन्म के अवसर पर मनाये गए उत्सव में समस्त नगर को आमंत्रित किया गया।[12] अन्तत: कहा जा सकता है कि घर में पुत्र का जन्म नि:सन्देह समाज में विशेष महत्वपूर्ण था किन्तु पुत्री का जन्म भी स्वीकार्य था। एवं इसे भी महत्वपूर्ण माना जाता था। प्रचलित काल में अराजकता एवं .

- -

9. डा० रेखा मिश्रा पूर्व, पृ० 129 तथा हेरम्ब चतुर्वेदी पृ० 140

10. के०एम०एफ० अशरफ, लाइफ एण्ड कन्डीसन्स आफ पीपुल आफ हिन्दुस्तान 135-136

11. चन्दायन, माता प्रसाद गुप्त, पद 32, पृ० 30।

12. वही, पद 33, पृ० 31

अन्य विडम्बनाओं के चलते कन्या का जन्म कईआपदाओं का कारण भी होता था। चन्दायन में चन्दा के लिये राजा रूपचन्द का आक्रमण एक ऐसी घटना थी।

परदा:

"परदा" एक फारसी शब्द है। जिसका अर्थ है "आवरण" कालान्तर में पर्दा का तात्पर्य एकान्तवास से लिया जाने लगा। अर्थशास्त्र में स्त्रियों की परदा प्रथा के बारे में संकेत मिलते हैं। आज भारत में अधिकतर भागों में जिस प्रकार दृढ़ता से इस प्रथा का पालन होता है-उस समय के एक सम्पन्न एवं उच्च वर्ग में भी इतनी कठोरता से पालन नही किया जाता था। परदा उच्च वर्गीय हिन्दू और मुसलमानों में ही स्वीकार्य था फिर भी जैसे-जैसे यह प्रथा स्थापित होती चली गई यह कुलीन एवं अभिजात्यता का पर्याय बनता गया। भारत की अधिकांश कृषक स्त्रियाँ कोई भी परदा अथवा आवरण वस्त्र प्रयोग नहीं करती थी, न ही वे एकान्तता का पालन करती थी, बल्कि जब वे किसीअजनबी को सामने देखती तो अपनी साड़ी अथवा अन्य शीश-वस्त्र को अपने मुख की ओर खींच लेती थी। उनकी बाहुऐं एवं मुख प्राय: खुले ही रहते थे।[13] अमीर खुसरों अपनी विभिन्न कृतियों में इस प्रथा का उल्लेख करते हुए लिखता है "उत्तम स्त्री वह है जो यथा-रीति पर्दा का पालन करती है और मुख पर बुरका (मुखावरण) धारण करती है। स्त्रियों को अपने घर में चाहे वह इतना न्यून और

- -

13• के0 एम0 अशरफ- लाइफ एण्डकन्डीशन्स ऑव पीपुल ऑव हिन्दुस्तान तबकात-ए-नासिरी रेवर्टी का अनुवाद पृ0 638-643 तथा अमीर खुसरो देवल रानी खिज्र खां पृ0 49 एवं तारीख-ए-फिरोजशाही पृ0 506

छोटा हो तो भी परदा का पालन करना चाहिए। मुस्लिम स्त्रियों द्वारा परदा प्रथा का उल्लेख विदेशी पर्यटकों के वृतान्तों और फारसी के ऐतिहासिक वृतान्तो में बहुतायत से मिलते हैं।[14]

सुल्ताना रजिया इस सम्बन्ध में अपवाद थी, वह प्रचलित रीति-रिवाजों को तोड़कर, स्त्री परिधान छोड़कर (त्याग कर) जनता के समक्ष उपस्थित होती थी।[15]

दिल्ली के सुल्तानो ने अपनी जनता में परदा प्रथा को प्रचलित करने का प्रयत्न किया। फिरोज शाह तुगलक पहला सम्राट था जिसने औरतों को दिल्ली नगर के बाहर स्थित कब्रों पर जाने से रोक दिया। क्योंकि उसके अनुसार मुस्लिम विधि (शरीयत) में आने-जाने को वर्जित माना है। वह अपनी "फुतहात" में लिखता है, "पालकियों, बैलगाड़ियों, डोलियों घोड़ो और ऊँटों पर सवार तथा पैदल चलने वाली स्त्रियां झुण्ड बनाकर कुछ पावन अवसरों पर नगर से बाहर निकल आतीं और कब्रों (समाधियों) की मरम्मत किया करती थीं। पाप कर्म करने वाले बदमाश और लुटेरे अनैतिक एवं असामाजिक कार्य किया करते थे, जो कि सभी जानते थे। धार्मिक विधि के अनुसार स्त्रियों को घरसे बाहर

---

14. अमीर खुसरो का "हश्त-बहिश्त" सम्पादक मौलाना सैयद सुलेमान अशरफ, पृ0 118

15. चन्दायन पृ0 37-38 दो0 40 अमीर खुसरो का "देवल रानी खिज्र खां" (सम्पादक मौलाना रशीद अहमद अंसारी), पृ0 49 साथ ही "तारीख-ए-फरिश्ता, खण्ड-1, पृ0 118 तथा खण्ड 1, पृ0 422

जाना मना था। स्त्रियों को समाधियों पर जाने से दृढ़ता से रोक दिया और जो भी बाहर जाती थीं, उन्हे दण्ड दिया जाता था। मुस्लिम स्त्री जो कि पर्दे में रहती थी, उन्हें समाधियों पर जाने का साहस नहीं था।[16]

सुल्तानों के द्वारा परदा-प्रथा के प्रवर्तन (प्रचलन) के होते हुए भी मुख्य शासकों एवं उच्च श्रेणी के कुलीन घर की स्त्रियां पूर्ण आवरण और डोलियों में (जिनमें ताले लगे होते थे) में बाहर आया करती थी।[17] उच्च श्रेणी की हिन्दू स्त्रियों मे भी परदा-प्रथा का पालन दृढ़ता से होता था। ये अपनी मुस्लिम बहनों की तरह विशेष अवसरों पर अपने पूरे शरीर को ढककर तथा सुरक्षित पालकियों अथवा डोलियों में ही घर से बाहर जाया करती थीं। ये पालकी या डोली उनके आवागमन के साधन थे। इन सवारियों की "पालकी" "डोली" "चौडोल" या "हिण्डोला" कहा जाता था। सम-सामयिक साहित्यिक कृतियों में इस प्रकार की डोली या पालकी का अनेक विवरण प्राप्त होता है।

---

16. फुतूहात-ए-फिरोजशाही, सम्पादक शेख अब्दुल रसीद, प्रकाशक इतिहास विभाग, मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़।

17. पालकी (डोला) के उल्लेख के लिए देखें, "दी रेहला ऑफ इब्नबतूता" देखें, डोला के लिए अहमद यादगार का "तारीख-ए-शाही "बिब0 इण्डि0 कलकत्ता 1939 पृ 53 देखें।

18. पृथ्वी राज रासो, चन्दबरदाई, भाग-1 (साहित्य संस्थान) राजस्थान विश्वविद्यापीठ, उदयपुर, प्रथम संस्करण, वि०सं० 2011, समय 6, (नाहर राय कथा) दोहा 65, पृ0 169 पर "डोला" का उल्लेख वही समय 18, (पृथा विवाह) कवित्त 56, पृ0 396 पर "डोलिया का उल्लेख वही भाग-2 उदयपुर, प्रथम संस्करण वि0सं0 2012, समय 23, (शशिव्रता समय), दोहा 142 पृ0 659 पर "दोह" का उल्लेख एवं चंदायन पृ0 37-38 दो-40 तथा तारीख-ए-फरिश्ता खण्ड 1 पृ0 422

सम्पूर्ण शरीर को ही आवरण मुक्त रखने के साथ ही जन साधारण की महिलाओं में चेहरे को आवरण युक्त रखने का पर्याप्त चलन था जैसा कि ग्रामीण भारत में आज भी बहुतायत से देखने को मिलता है। सम्भवत: इसके पीछे यह मानसिकता रही हो कि यह एक अभिजात्य वर्गीय गुण है एवं यह महिलाओं की कुलीनता का द्योतक था। कुल मिलाकर यह आंशिक परदा था इसे "घूँघट" कहा जाता था। सम-सामयिक साहित्यिक कृतियों में घूँघट शब्द के उल्लेख मिलता है।[19]

निश्चय ही यह कहा जा सकता है कि परदा प्रथा के कारण हिन्दू और मुस्लिम दोनों जातियों की स्त्रियों के विकास में पर्याप्त अवरोध उत्पन्न हुए। यहप्रथा उनकी "हीनता" की भावना एवं मानसिक अभिव्यक्तता का प्रबल कारण सिद्ध हुई।

बाल विवाह:

विवाह एक स्त्री के जीवन की महत्त्वपूर्ण एवं चिनरंजक प्रावस्था है। समाज में विवाह का उल्लेख करते हुए अलबेरूनी लिखता है "कोई भी राष्ट्र (कौम) एक सुव्यवस्थित वैवाहिक जीवन के बिना अपना अस्तित्व कायम नही

---

19. पृथ्वीराज रासो चन्दवराई, भाग 4 (साहित्य संस्थान) राजस्थान विश्वविद्यापीठ उदयपुर, समय 58, दोहा 286, पृ0 684 भी देखे. यहां पर घूंघट का अप्रत्यक्ष रूप से उल्लेख किया गया है जो इस प्रकार है " ढँको सिरो लाज", दोहा 290, पृ0 685 भी देखें। तथा के0 एम0 अशरफ, (लाइफ एण्ड कन्डीशन्स आफ द पीपुल आफ हिन्दुस्तान) पृ0 139

रख सकता क्योंकि यह उन्नत मन के वीभत्स आवेशों के कोलाहल को रोकता है और यह उन सभी कारणों को नष्ट करता है जो कि मनुष्य के अन्तर्मन में छिपी हुई पशुता को उद्वेलित करते है, जिसका कारण सदैव विनाशकारी होता है।[20]

इस काल में विवाह के विषय में उम्र का कोई बन्धन नहीं था। किन्तु बाल-विवाह एक तरह से हिन्दू और मुसलमान दोनों समुदायों में सामान्य एवं सर्वव्यापी चलन हो चुका था। बालिकाएँ नौ या दस वर्ष की और बालक सोलह या सत्रह साल के हों उन्हें वैवाहिक बन्धन में बांध दिया जाता था।[21] फिरोज तुगलक के समय में मुस्लिम परिवारो में बाल-विवाह के चलन का उल्लेख करते हुए अफीफ लिखता है, "सुल्तान की कृपा से सादात {सैयद} काजी {न्यायकर्ता} और उमरा {कुलीन} आदि अपनी पुत्रियों का विवाह कम उम्र में ही कर दिया करते थे। निर्धन लोग जो कि इस कार्य में व्यय नहीं कर सकने की अवस्था में होते, उन्हें अपनी पुत्रियों के विवाह के लिए सुल्तान से अनुदान प्राप्त हुआ करता था।[22]

---

20. अलबेरूनी इण्डिया, भाग-2,{सचाऊ} पृ0 154।

21. अमीर खुसरो {देवलरानी खिज्र खां, पृ0 93} ने राजकुमार खिज्र खां और देवलरानी के विवाह का उल्लेख किया है जब वे क्रमश: 10 और 8 वर्ष के थे देवलरानी और खिज्र खां शीर्षक लेख "नागरीप्रचारिणी पत्रिका" खंड 2, वि0 सं0 1987, पृ0 415 पर देखें पृष्ठ 23 एवं तारीख ए फिरोजशाही पृ0 180 एवं दिल्ली सल्तनत भारतीय विद्या भवन पृ0 586 एवं चांदायन,सम्पादक डा०माता प्रसाद गुप्त, पृ0 41 दो 42

22. पृ0 180, वही, पृ0 292 जहाँ अफीफ इस प्रकार कहता है "फिरोज तुगलक के शासन काल में लोग इतने प्रसन्न और सन्तुष्ट थे कि वे अपनी पुत्रियों को "खुर्द सालगी" {बहुत कम उम्र में ही} मे ब्याह कर देते थे।

कभी-कभी एक बालक का विवाह एक वयस्क युवती से भी हो जाता था। विधापति ने अपनी पदावली में इस प्रकार के बाल विवाह का उल्लेख किया है।[23]

बीसल देव रासो की नायिका राजमति की भी विवाह आयु बारह वर्ष है।[24] एक अन्य युगीन रचना चंदायन के सन्दर्भ में जानकारी उपयोगी है चांदा के जन्म के 12वें महीने से ही दूर-दूर से राजा महर के पास नित्य वर होने के आकांक्षी होकर आते है किन्तु लौट जाते हैं।[25] वर के आकांक्षी राजाओं लौटना इस कारण होता है कि वे महर की योग्यता के अनुरूप नही है न कि कन्या के। जन्म के चौथे वर्ष जैत द्वारा महर की चार वर्षीय पुत्री के लिए विवाह प्रस्ताव भेजा जाता है।[26] अन्ततः यह विवाह तय हो जाता है एवं जैत के पुत्र बावन से चांदा का विवाह हो जाता है। बावन किसी भी प्रकार चांदा के योग्य नहीं जो दोनो के मध्य असफल विवाह का कारण बनता है।

कुल मिलाकर विवाह के सम्बन्ध में आयु सम्बन्धी स्थापित माप-दण्डनहीं थे। अभिभावकोंकी इच्छा ही विवाह का एक मात्र निर्णायक आधार हुआ करती थी। स्त्री को इस संदर्भ में विकल्पचुनने की स्वतंत्रता नहीं थी।

---

23. विधापति की पदावली, (सम्पादक श्री वसन्त कुमार माथुर), पद 258, (बाल विवाह) पृ0 460

24. बीसलदेव रासो (माता प्रसाद गुप्त) दोहा 30 पृ0 110

25. चन्दायन दाऊद, पद 34, पृ0 32

26. वही, पद 35, पृ0 33

बहु विवाह:

हिन्दुओं और मुसलमानों दोनो के बीच, खासकर उन लोगों में, जो समाज में सम्पन्न थे, एक साथ एक से अधिक जीवित पत्नियां रखने की प्रथा थी। साधारण तौर पर एक पुरूष एक ही पत्नी रखता था पर जिन लोगों के पास प्रचुर साधन थे, वे एक से अधिक शादियां करते थे। परन्तु निम्न वर्गीय समाज के हिन्दुओं और मुसलमानों, दोनों में सामान्यत: एक ही पत्नी रखने का प्रचलन था।

कुरआन में किसी भी मुसलमान को चार महिलाओं तक के साथ विवाह करने का वर्णन मिलता है।[27] पर केवल समृद्ध और सम्पन्न लोग ही बहुपत्नीत्व का जीवन, उसके सुखों और कष्टो के साथ बिता पाते थे।[28] सम्पन्न हिन्दू भी विशेष कर शासक वर्ग के और अमीरी में रहने वाले, इस सम्बन्ध में अपने मुसलमान भाईयो से पीछे न थे। अलबेरूनी ने हिन्दुओं के बीच इस प्रथा का वर्णन किया है। "कोई भी आदमी एक से चारपत्नियां तक रख सकता है।

- -

27• दी होली कुरआन, अनुवादक मौलवी मुहम्मद, अली प्रकाशक अहमदिया अंजुमन-ए-इशात-ए-इस्लाम, अध्याय 4 भाग-। उपदेश 3 पृ0 177

28• जूनागढ़ का सुल्तान तातार खां धुरी। पृ० ५१२

उसे चार से अधिक पत्नियां रखने की अनुमति नही, पर यदि उसकी पत्नियों मे से कोई मर गई तो वह अपनी पत्नियों की संख्या अनुमत सीमा तक ले जाने के लिए एक और पत्नी रख सकता है। पर उस सीमा से बाहर नहीं जा सकता।[29] एक अन्य स्थान पर अलबेरूनी लिखता है-"कुछ हिन्दुओं का विचार है कि पत्नियों की संख्या किसी आदमी की जाति पर निर्भर करती है, इसके अनुसार ब्राम्हण चार पत्नियां, क्षत्रिय तीन, वैश्य दो और शूद्र एक पत्नी रख सकता है।"[30]

हिन्दुओं में के धनिक लोगो के बीच बहुपत्नीत्व की प्रथा का विवरण समसामयिक साहित्य में मिलता है। कुतबन की रचना मृगावती में नायक कुंअर की दो पत्नियों, मृगावती और रुक्मिणी का उल्लेख मिलता है।[31] चंदायन में मौलाना दाऊद दलमई ने दास मेहर की चौरासी पत्नियों का उल्लेख मिलता है।[32] चन्दवरदाई ने अपनी रचना पृथ्वीराज रासौ में राजा पृथ्वीराज के बहुपत्नीक होने का वर्णन किया है। उनके विभिन्न विवाहों में इच्छिनी विवाह[33] पुन्दर दाहिनी विवाह[34] पृथा विवाह[35] हंसावती विवाह[36] संयोगिता विवाह[37]

---

29. अलबेरूनी इण्डिया (सचाऊ) 2, पृ0 155
30. वही
31. कुतबन कृत मृगावती पृ0 202
32. मौलाना दाऊद दलमई का चन्दायन, छन्द 13 पृ0 95-96
33. चन्दरवरदाई का पृथ्वीराज रासो, भाग-1, समय 14 पृ0 293-328
34. वही समय, 16, पृ0 347-353
35. वही समय 18, पृ0369-396
36. वही भाग 3, समय 40 पृ0 148
37. वही भाग 4, दो 668, पृ0 856

पृथ्वी राज रासो में बहु-विवाह के कारण गृह-कलह का वर्णन कई स्थानो पर मिलता है।

को जानि मात बिंझनी पीर, सौति को साल सालै शरीर।[38]

इसी प्रकार पृथ्वी राज चौहान की पटरानी इच्छिनी में भी सौतिया-डाह को सबसे ज्यादा कष्टदायक बताया गया है। इसके अनुसार यदि कोई माता-पिता का वध कर देता है या फिर किसी भी प्रकार का बैरी हो तो भी उससे मित्रता करना संभव हो सकता है किन्तु सौतेलेपन का दुख हमेशा ही कष्ट पहुँचाता रहता है और अन्तर्ज्वाला ग्रीष्मकालीन लू की भांति जलाती रहती है।

पित्र घात सो मन मिलै। और बैर मिट जाइ।
सौति बैर अन्तर जलनि। दिन प्रति ग्रीषम लाइ।[39]

इतना ही नही, चन्दवरदाई ने नारियों को सभी कुछ सहन करने वाला चित्रित करता है। वह धन, सम्पत्ति, स्वर्ण, वस्त्र, मोती आदि दूसरों को दे सकती है, लेकिन अपने पति प्रेम का बंटवारा उनसे बर्दाश्त नही हो सकता।

- -

38· पृ0 रा0 का0 पृ0 पृ0 74, छन्द 375

39· उपरिवत्, पृ0 2963, छन्द 17

धन ग्रह बंधन मुति ठग हेम पटंवर तार।

पुनि त्रिय पिय बन्धन सुरति। लगै अधिक पगधार।[40]

पृथ्वीराज रासो में सपत्नियों का मन मुटाव चरम सीमा पर चित्रित किया गया है। जिसमें इच्छिनी और संयोगिता की ईर्ष्या चरम सीमा पर दिखाई गई है, रानी इच्छिनी ईर्ष्या के कारण मूर्छित हो जाती है। इच्छिनी तथा अन्य रानियों का पृथ्वीराज चौहान से एक वर्ष तक न मिलने के कारण महल छोडकर जाने लगती है तभी पृथ्वीराज से मिलने का अवसर मिल पाता है।[41]

इसी प्रकार चंदायन में चांदा व मैना में विवाद होता बताया गया है। लोरिक के द्वारा एक से अधिक विवाह का वर्णन मिलता है जो मैना के दुख तथा ईर्ष्या का कारण था।[42]

महाराजा बीसलदेव की रानियों में पारस्परिक सपत्नी-द्वेष के कारण से कौटुम्बिक कलह तथा संघर्ष का सामना करते हुए चित्रित किया गया है।[43]

- -

40. उपरिवत् पृ0 1964, छन्द 2।

41. उपरिवत् पृ0 1985 छन्द 188

42. चंदायन (सम्पादक डा॰ माता प्रसाद गुप्त) पृ0 243, 244 पद 252

43. पृ0 रा0 (का0पृ0), पृ0 83 छन्द 41। तथा पृ0 87, छन्द 49।

बहुपत्नी प्रथा के उद्धरण पृथ्वीराज रासो और परमाल रासो में मिलते है। जिनमें पृथ्वीराज चौहान की दस रानियाँ, मुहम्मद गोरी की पांच सौ दस बेगमें, परमाल की एक सौ साठ रानियाँ ब्रह्मा की पचास, रानियाँ और महाराज बीसलदेव की अनेक रानियों का उल्लेख मिलता है।

पंच सत्त दस हरम। साह कामी तप भारी।[44]

इसी प्रकार

तब सकल भइ एकत्र नारि। पुरुषासन तिन बंध्यो विचार।[45]

अथवा

येक सत साठ रानी सहित राजा परमाल चलते भये।[46]

अथवा

पचीस दुप नारि ब्याही तुम्हारी, सब सुन्दरी गाह चाहत न्यारी।[47]

---

44. पृ०रा०, [का०प्र०] पृ० 725, छन्द 314।

35. पूर्ववत् पृ० 74, छन्द 37।

46. परमाल रासो, का० प्र० पृ० 53।

47. उपरिवत् खण्ड 26 छन्द 3।

हिन्दुओं में प्रचलित विवाह का वर्णन करते हुए अलबेरूनी लिखता है:
हिन्दुओ के धर्म के अनुसार प्रचलित सजातीय विवाह एक सम्बन्धी की अपेक्षा एक अपरिचित से विवाह करना ज्यादा अच्छा समझा जाता है। लेकिन वर-वधू आपस में सहमत हों तो उनका विवाह हो जाया करता है। परन्तु पाँचवी पीढ़ी तक उन्हें अपने वंश से बहिष्कृत कर दिया जाता है। इस स्थिति में वर्जन हटा लिया जाता है। किन्तु इस विवाह को किसी के पसंद से नही किया जाता।[48]

हिन्दुओ की विवाह विधि का वर्णन करते हुए अलबेरूनी लिखता है, "प्रत्येक राष्ट्र की एक विशेष विवाह की पद्धति होती है। विशेषकर उन (राष्ट्रों) की जो इस बात का दावा करते हैं कि उनका धर्म और उनकी विधि विधानों की उत्पत्ति ईश्वर से हुई है। हिन्दू छोटी आयु में ही विवाह करते हैं। जिसमें उनके माता-पिता अपने पुत्रों का विवाह निश्चित करते - विवाह के समय ब्राह्मण धार्मिक, संस्कार पूर्ण करते है तथा ब्राह्मण और अन्य लोग दक्षिणा ग्रहण करते है। विवाह उल्लास के साथ मनाया जाता है। दोनो पक्षो के बीच दहेज निश्चित नही होता। केवल पुरूष ही अपनी रूचि के अनुसार अपनी पत्नी को भेंट दिया करते थे तथा अपनी पत्नी को विवाहोपहार देता है जिस पर उस (पति) का कोई अधिकार नही होता। किन्तु यदि पत्नी की इच्छा है तो वह (उपहार) अपने पति को वापस दे सकती है।[49]

- -

48. अलबेरूनी इण्डिया, भाग-2 (सचाउ), पृ0 155

49. अलबेरूनी इण्डिया, 2 (सचाउ, पृ0 154

वर और कन्या को अपने विवाह के सम्बन्ध में अथवा अपने माता-पिता के निर्णय में हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं था। बल्कि माता-पिता का निर्णय पुत्र-पुत्रियों के लिए अवश्य पालनीय था। तत्कालीन समाज में स्वयंवर आदि के द्वारा भी विवाह संस्कार हुआ करता था।[50]

पृथ्वीराज रासो से ही ज्ञात होता है कि तत्कालीन राजा अपनी पुत्रियों के विवाह के लिए स्वयंवर प्रथा करवाते थे और कन्या जयमाल लेकर सुसज्जित पाण्डाल में विभिन्न राजाओं के बीच में जाती थी और जिस किसी राजा का राजकवि द्वारा गुणगान सुनकर, जयमाल पहनाती थी, कन्या का विवाह उसी के साथकर दिया जाता था।[51]

कन्याओं के अपहरण की विशेष प्रथा प्रचलित थी, इस प्रथा में प्रेम संदेश, पूर्व अनुराग अथवा किसी शुक, हंस, नट, भाट, आदि के द्वारा गुणगान करने पर तथा उनका (जिसका गुणगान होता था) चित्र मात्र देखने से उत्पन्न होता था। इस प्रकार का प्रेम पृथ्वीराज में क्रमशः शशिव्रता, पद्मावती तथा

- -

50. पृ० रा० भाग-2, (उ॰प्र॰) समय 30 (करहेरा युद्ध) देहा2, पृ 89, वही भाग 3, समय 40 (हंसावती विवाह) दोहा 58, पृ0 175 पर राजकुमारी हंसावती का स्वयंम्बर समय 46, दोहा 1 पृ0 253 भी (यहाँ उसका उल्लेख सांभर के रूप में किया गया है), वही समय 54, दोहा 40, पृ0 459 (यहाँ इसका उल्लेख स्वयम्बर के रूप में है), वही समय 47, कवित्त 6 पृ0 264 पर राजकुमारी संयोगिता के रूप में है), वही समय 47, कवित्त 6 पृ0 264 पर राजकुमारी संयोगिता का स्वयंवर तथा डा॰ राजबली पाण्डेय हिंदी साहित्य का बृहद् इतिहास भाग-1 पृ0 120, (ना0प्र0 सभा, प्रकाशन)

51. पृ0 रा0 (का0प्र0) पृ0 1566, छन्द 13 तथा पृ0 1566, छन्द 12-14

संयोगिता में दिखाई पड़ता है।[52]

तत्कालीन समाज में यह ज्ञात होता है कि कन्यायें अपने पिता के द्वारा चुने गए वर को अपने उपयुक्त न मानकर अपने अभीष्ट (मनचाहे) वरों को अपहरण के लिए संदेश भेजती थी।

जो षित्री कुल सुद्ध। वरनि वर रष्षह प्रानह। [53]

तत्कालीन समाज में कन्यायें अपने मन चाहे वर को न पाने पर आत्मघात के लिए तत्पर रहती थीं। [54] और अपने अभीष्ट राजा या राजकुमार के पास उस स्थान की सूचना देती थी। जहाँ पर से वे राजकुमार व राजा उनका अपहरण कर सके:

ज्यों रुकमनि कन्हर करी। ज्यो वरि संभरि कांत।
शिव मंडपदच्छिन दिसा। पूजि समय स प्रांत। [55]

पृथ्वीराज रासो में इस प्रकार के अपहरण का वर्णन कई स्थानों पर मिलता है, पद्मतावती, शशिव्रता और संयोगिता का हुआ था। इस प्रकार के विवाह को

- -

52. उपरिवत् पृ0 761-763-786

53. उपरिवत् पृ0 635, छन्द 34

54. पृ0रा0 (का0 प्र0) पृ0 635, छन्द 33 तथा पृ0 772 छन्द 79

55. उपरिवत् पृ0 735 छन्द 65।

को राक्षस अथवा गान्धर्व विवाह का नाम दिया जा सकता है।[56] यदि कोई राजा या राजकुमार किसी कारणवश या फिर युद्ध में लगे होने के कारण निश्चित तिथि और समय पर विवाह हेतु नहीं पहुँच पाते थे, तब वह विवाह हेतु अपनी तलवार भेजतें थे। कभी-कभी इसे कन्या पक्ष की ओर से अपमानजनक माना जाता था। ऐसा उदाहरण पृथ्वीराज रासो में इन्द्रावती के विवाह के अवसर मिलता है।[57]

वैवाहिक अवसरों पर तत्कालीन समाज में अनेक मांगलिक कार्य सम्पन्न किये जाने के विवरण मिलते हैं। पृथ्वीराज रासो में सर्वप्रथम सगाई का कार्य किया जाता था। नाहरराय पृथ्वीराज चौहान को आठ वर्ष की अवस्था में ही माला पहना कर सगाई का कार्यक्रम सम्पन्न कर गये थे।[58]

समकालीन साहित्यों में कई स्थलों पर टीका भेजने की प्रथा प्रचलित थी। इस प्रथा को ही लगन भेजना भी कहा जाता था।[59]

- -

56. पूर्ववत् पृ0 1753, छन्द 1202 - 1205 तथा पृ0 638 छन्द 46-48 तथा पृ0 7-34, छन्द 1058 तथा पृ0 1945, छन्द 2458 आदि।

57. उपरिवत् पृ0 998, छन्द 21 तथा 25 तथा पृ0 1013, छन्द 115

58. पृ0रा0 (का0प्र0) पृ0 335, छन्द 25-25 तथा इब्नबतूता का रेहला पृ0 78-79, देवलरानी खिज्र खाँ, पृ0 44

59. पृ0 रा0 (उदयपुर प्रकाशन) भाग-1, पृ0 360 छन्द 19 तथा प0 रासो (का0प्र0) खण्ड 24 छन्द 82-84

लगन में कुल के पुरोहित के हाथों नारियल तथा वस्त्र, हाथी घोड़े, आभूषण, मुद्रायें और मिठायों को वरपक्ष के पास भेजने की प्रथा थी। पृथ्वीराज रासो में इच्छिनी, इन्द्रावती, पृथा कुंवरि तथा परमाल रासो में बेला की लगुन इसी तरह से भेजी गयी थी ।[60]

इसी प्रकार से परमाल रासो में लाखन के लगुन में भी हाथ, घोड़े और स्वर्ण मुद्रायें आती है ।[61]परमाल रासो में ही लाखन की टीकाचढ़ाने के समय असीम धन लुटाने का विवरण मिलता है । इसी प्रकार से राजकुमार ब्रह्मा की लगन चढ़ाई के अवसर पर राजकुमार कोपान खिलाया जाता है, हाथ में नारियल दिया जाता है और टीका करने को सामग्री चौक पर रखी जाती है ।[62]

परमाल रासो में ही यह उल्लेख मिलता है कि पृथ्वीराज चौहान के द्वारा लगुन में एक लाख स्वर्ण मुद्रायें भेजी गयी थी, तथा महाराज चन्देल के द्वारा उसमें दो लाख और स्वर्ण मुद्राओं को मिलाकर प्रजा में बाँट दिया गया था 63 हाथों मे कंगन बाँधने की प्रथा का उल्लेख समकालीन साहित्य में मिलता है .[64]
" कन्यादान की प्रथा का विवरण भी इच्छिनी विवाह के समय पर मिलता है, जिसमे इच्छिनी की माँ और पिता दोनों ही आपस में गठबन्धन

60- पृ0 रा0 ﴾ उ0 प्र0 ﴿ भाग -1 पृ0 293, छन्द 3 तथा प0 रा0 ﴾ काशी प्रकाशन ﴿ खण्ड 13, छन्द 14।

61- प0 रा0 ﴾का0 प्र0 ﴿ खण्ड 24, छन्द 87

62- पूर्ववत खण्ड 24 खण्ड 87 तथा खण्ड 13, छन्द 31-33

63- उपरिवत 13 , छन्द 38-39तथा 40

64- पृ0 रा0 ﴾ का0 प्र0 ﴿ पृ0 556 छन्द 93

करते हुए कन्यादान करते हैं :-

अच्छू पति पट ग्रंठि त्रिय। विनय जोरि कर कीन।
इह कन्या नृप सोम सुत। दासमन पन दी। [65]

<u>हरम:</u>

'हरम' शब्द तुर्की भाषा का है जो कि अरबी के 'हारुमा' शब्द से उत्पन्न हुआ था। जिसका अर्थ होता है कि प्रतिबन्धित, अनुमत या अवैध पर साथ ही साथ, पूरी तरह सुरक्षित और अलंघ्य। [66]

उस समय हरम का अर्थ महिलाओं के उस समूह को या उन महिलाओं से, जो परदे में रखी जाती थीं।

हरम में शासक की पत्नियों और उपपत्नियों के अतिरिक्त अन्य स्त्रियाँ भी रहती थीं। हरम में उन लोगों (शासक) की माताएं बहनें और अन्य सम्बन्धी महिलाएं रहती थीं। उस समय शाही हरम में कौन-कौन सी स्त्रियाँ रहती थी, इसके बारे में कोई निश्चित धारणा अभी तक नही बनाई जा सकी है। ऐसा लगता है कि उस समय महलों की आन्तरिक व्यवस्था (प्रशासन) ठीक तरह सुव्यवस्थित नही था कि आगे चलकर, मुगल काल में सम्राट

---

65. पृ० रा० का०(पृ०) पृ० 555, छन्द 86
66. प्रिन्सेज जाविदान हानुम का हरेम लाईफ, पृ० 11

अकबर के शासन मे थी।[67] शाही हरम का भीतरी तौर पर देख-रेख का काम "हकीमा" की प्रबन्धिका (गवर्नेस) करती थी। जो किसी उच्च घर से या सरदार परिवार की होती थी और बाहर से उसका पर्यवेक्षण "ख्वाजा सराय" (मुख्य हिजड़ा) करता था। जिसका पद बहुत ही प्रतिष्ठित एवं जिम्मेदारी का माना जाता था।[68]

इस काल में परदा प्रथा का दृढ़ता से पालन किया जाता रहा है, घर के नौकरों में कुछ निष्ठावान हिजड़े और नौकरानियां तथा सौ के लगभग अन्य नौकर और नौकरानियां हुआ करती थी।[69]

हरम में कुछ स्त्रियाँ ऐसी भी थी जिन्हे देखना मना नही था, उन्हे "महराम" कहा जाता था, उनकी समस्या भी गम्भीर थी। सुल्तान मुहम्मद बिन तुगलक इस कार्य के लिए सचेत था वह जब भी हरम में आता था तो इस बात का बराबर ध्यान रखता था कि वह कहीं उन औरतो (गैर-महराम) को न देख ले जिन्हें कि देखना मना था। [70]

---

67. इस्लामिक कल्चर, खण्ड 34, जनवरी 1960 पृ0 3

68. "ख्वाजा सराय" का उल्लेख अमीर खुसरो का "देवल रानी खिज्र खाँ" पृ0 101; चन्दवरदाई का पृथ्वीराज रासो" भाग-3 समय 42, कवित्त 2 पृ0 194 पर सुल्तान शहाबुद्दीन गोरी के हरम का उल्लेख

69. इस्लामिक कल्चर, खण्ड 34, पृ0 3।

70. बर्नी पृ0 506, सुल्तान मुहम्मद तुगलक के हरम के उल्लेख के लिए अफीफ पृ0 100

मालवा के सुल्तान गयासउददीन खिलजी के द्वारा रखे जाने वाले हरम का उल्लेख मिलता है। उसके हरम में दासों की सुन्दर और रूपवती लड़कियां थीं और साथ ही जमीदारों और हिन्दू राजाओं की बेटियां थी। गयासउद्दीन के हरम में रहने वाली प्रत्येक लड़की को किसी विशेष पेशे या कला का प्रशिक्षण दिया जाता था। तथा इसके अलावा उसने अपने "हरम के क्षेत्र में एक अलग बाजारखोल दिया था जिसमें स्त्रियाँ अपना सामान खरीद सकें। जो कुछ सामान बाहर बाजार में मिलता था, वही सब हरम के अन्दरवाले बाजार में भी उपलब्ध रहता था। वह एक छोटे से बाजार का रूप था वहां पर वे ही लोग आ सकते थे जो हरम के अन्दर रहते थे। मालवा के सुल्तान गयासउद्दीन के हरममें सोलह हजार दास युवतियां थीं। हर दास युवती को चांदी के "टँके" और दो मन अनाज प्रतिदिन दिया जाता था। हरम के प्रधान के पद पर रानी खुर्शीद थीं जिसका राजनीति में भी बहुत अधिक प्रभाव था।[71]

हिन्दू राजा मुगलों के भारत आगमन के पहले से भी एक प्रकार का हरम रखते थे। हर्ष के समय महिलाओंके रहने के स्थान को वासर, अंत:पुर या रनिवास कहा जाता था। यह भी संभव है कि इन स्थानो (कमरों) में हिजड़े भी अन्य पहरेदारों के अलावा रखे जाते थे[72]

---

71. एम हिदायत हुसैन द्वारा सम्पादित "मासीरी रहीमी" खंड । पृ0 145-146। मालवा के सुल्तान गियासुद्दीन के हरम में दास-लड़कियों की शिक्षा का उल्लेख इस रचना के अध्याय में 4 स्त्री में शिक्षा संबंधी प्रसंग में मिलता है। अब्दुल्लाह कृत तारीख-ए-दाऊदी, पृ0 37

72. नरपति नाल्ह का बीसलदेव रासो, छंद 7 पृ0 63 पर अन्त:पुर का उल्लेख तथा भाल्हन का कादम्बरी (पूर्व भाग), सम्पादक के0 एच0 गुर्वे, सर्ग 12 दो 64, पृ0 74।; इस्लामिक कल्चर, 34 जनवरी 1960 पृ0 1

दहेज:

अवलोकित काल में सजातीय विवाह का महत्व बहुत अधिक बढ़ गया था। सामान्यत: दहेज प्रथा का प्रचलन था। तथा इस प्रथा को कुलीन एवं सम्पन्न परिवारों में ही आश्रय प्राप्त था। सामान्य जनता में इस प्रथा का प्रचलन नही था। दहेज सम्बन्धित पक्षों के आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति के अनुसार निर्धारित होता था। दहेज शब्द का अर्थ सामान्यत: मूल अर्थ में प्रयोग किया जाता है, जैसे वह स्वरूप जो कि विवाह सम्पन्न होने के समय पर या उसके पहले दिया जाता था तथा दूसरा रूप वह जो विवाह संस्कार सम्पन्न होने के बाद भेंट अथवा दान के रूप में दिया जाता था। पहले प्रकार के स्वरूप को "श्री फल" "पान" अथवा "तिलक" के नाम से जाना जाता था दूसरे प्रकार के स्वरूप को सामान्यत: "जौतुक" अथवा "दहेज" कहा जाता था।

दहेज के इन दोनों स्वरूपों का वर्णन अवलोकित काल के समकालीन साहित्यों एवं फारसी के ऐतिहासिक (वृतान्तों) घटनाक्रम में मिलता है। चन्दवरदाई, इन्द्रावती और प्रसिद्ध चौहान वंश के राजा पृथ्वीराज के विवाह के पूर्व "श्रीफल" का उल्लेख मिलता है।[73]

इस प्रथा को राजस्थान, उत्तर प्रदेश एवं बिहार के कुछ क्षेत्रों में इसे "दाईज" अथवा दहेज के नाम से जाना जाता था। ऐसा ज्ञात होता है कि

- -

73. चन्दरवरदाई का "पृथ्वीराज रासो", भाग-2, (युद्ध), दोहा 55, पृ0 898

यह उपहार दोनों पक्षों की सामाजिक स्थिति के अनुरूप ही दिया जाता रहा है तथा इन उपहारों में विशेषतौर से स्थान विशेष बहुमूल्य जवाहरात तथा धातुयें द्रव्य आभूषण, स्थावर सम्पत्ति घोड़े, हाथी, रथ, अनुचर, गाय भैंस, सेवक; सेविकाएं वस्त्र तथा (जीवन) दैनिक आवश्यकताओं और विलासिता की अन्य सामग्रियाँ सम्मिलित होती थी। इस प्रकार का उल्लेख हमें समकालीन साहित्यिक कृतियों में मिलता है। [74]

बारात की वापसी के समय वन्दीजनों आदि को विभिन्न प्रकार की वस्तुयें भेंट की जाती थीं। [75]

अपने हिन्दू भाईयोकी ही तरह सम्पन्न तथा उच्च वर्ग के मुस्लिम भी इस प्रचलनसे अछूतेनही रह सके। मुसलमानो में इस प्रथा को "जहेज" के नाम से जाना जाता था। [76]

- -

74. चन्द्रवरदाई "पृथ्वीराज रासो" भाग-2 समय 31। (इन्द्रावती-विवाह) दोहा 38, पृ0 912 से विवाह के उपहार (दहेज) का वर्णन है तथा दो0 46 पृ0 935, नरपति नाल्ह का "बीसलदेव रासो" छन्द 20, पृ0 74 तथा बीसलदेव रासो) सम्पादक डा॰ माताप्रसाद गुप्त), पृ0 101-104, छन्द 19-22। तथा चन्दायन (सम्पादक डा॰ माता प्रसाद गुप्त) छन्द 42, पृ0 40 परमाल रासो (का0पृ0 खण्ड)15 छन्द 189

75. पृ0 रा0 (का0पृ0) पृ0 561, छन्द 128 तथा छन्द 16 तथा 1027 छन्द 70

76. उद्धृत डा॰ किशोर प्रसाद साहू मध्यकालीन उत्तर भारतीय सामाजिक जीवन के कुछ पक्ष पृ0 218

हजरत मुहम्मद (स0) ने भी इसे अनाथों के प्रति अभिभावकों का कर्तव्य बताया। उनके अनुसार प्रत्येक महिला को जिसका विवाह किया जाए। दहेज देना आवश्यक है, चाहे वह स्वतंत्र महिला हो या फिर युद्ध बन्दी में अनाथ महिला। कुरआन के प्रसंग है कि स्त्री अपना वैवाहिक जीवन कुछ सम्पत्ति की स्वामिनी के रूप में आरम्भ करती है। विवाह उसके सामाजिक स्तर से उच्च करने का साधन है और विवाह अनेकों रूप से उसे उसके पति की समानता में ले आता है।[77]

पत्नी के रूप में उनकी भूमिका:

तत्कालीन समाज में पत्नी को समकालीन साहित्यों में पारिवारिक जीवन की धुरी माना गया है :-

निपृ ब्याह राह च्यं तो सुचिन, घर तरूणी तरूणी निधर।[78]

तत्कालीन परिवारों से यह स्पष्ट होता है कि परिवार के अन्तर्गत सर्वाधिक प्रेम का स्थान पत्नी का ही होता है, वह पति के प्राण-त्याग देने पर सर्वस्व समर्पित करती है तथा वह पति की सहगामिनी होती है :-

---

77. दी होली कुरआन, अनुवादक मौलवी मुहम्मद अली, अहमदिया अंजुमन-ए-इशात-ए-इस्लाम, अध्याय 4 भाग-1, उपदेश 4 पृ0 200

78. पृ0 रा0 (उदयपुर प्रकाशन), भाग 4, पृ0 767, छन्द 483

पूरन सकल विलास राय। सरस पुत्र फल दान।
अन्त होई सहगामिनी। नेह नारि को मानि।[79]

शासकवर्ग अपना राज्याभिषेक के समय अपनी पत्नी या पटरानी के साथ गांठ जोड़कर किया करते थे, समकालीन साहित्य में पृथ्वीराज चौहान इंच्छिनी के साथ गांठ जोड़कर राज्याभिषेक करते हैं।[80] इसी प्रकार भोमेश्वर भी अपनी तोमर वंशी पत्नी के साथ दान आदि का कार्य करते थे।[81]

कुछ साहित्यों में पत्नी धर्म के उद्गार को व्यक्त किया गया है, जिसमें पत्नी के द्वारा पति को परमेश्वर माना गया है। वह पुरुष की जीवन-संगिनी होती है। दुख-सुख की सहचारिणी होती है, पति कैसा भी हो, किन्तु यदि वह उसकी सेवा करती है तो उसे इस लोक में यश और परलोक में स्वर्ग पाती है। ऐसा माना जाता था।[82]

परमाल रासो में ऊदल की पत्नी के द्वारा उन क्षत्राणियों को धिक्कारा जाता है जो युद्ध क्षेत्र से विमुख होकर घर आ गये थे;

- -

79. पृ० रा० (काशी प्रकाशन, पृ० 2012, छन्द 176

80. पृ० रा० (उदयपुर प्रकाशन (भाग-3, पृ० 517 छन्द 29

81. उपरिवत्, भाग-3, पृ० 562 छन्द 49

82. पृ० रा० (का० प्र०) खण्ड 4, छन्द 144, तथा खण्ड 4 छन्द 146-149.

प्रिय भागे तित अछरै, सौंपे सकल शरीर।

वह रजपुत्तनि कुक्करी, सुमुतन कही गहीर।[83]

तत्कालीन समाज में पति को माँ को सास की संज्ञा से पुत्रवधुएँ पुकारती थीं। उनका स्थान अत्यन्त उच्च था। सासों की आज्ञा का पालन करना पुत्र वधुओं को शिरोधार्य थो। संयोगिता के द्वारा पृथ्वीराज के नेत्र-विहीन होने की बात पर पश्चाताप् किया जाता है कि कहीं किसी भी प्रकार उसके द्वारा सास की अवज्ञा तो नही हो गई।

के॰-योति विप्र परहरयो। करयौ नन बैन तासु को[84]

सती :

सती प्रथा एक धार्मिक कृत्य माना जाता था। जो पति के शव के साथ या उसके बिना भी किया जाता था। पति के शव के साथ इस कर्म को "सह-मरण" या "सह-गमन" अर्थात् पति के साथ ही मर जाना या उसके साथ इस संसार से चले जाना कहा जाता था तथा दूसरे प्रकार के धार्मिक कृत्यों में अर्थात पति के बिना सती होने को "अनु-मरण" या "अनुगमन" अर्थात पति

- -

83· पृ॰रा॰, (का॰पृ॰ खण्ड 22, छन्द 2।

84· पृ॰रा॰ (सम्पादक काशी प्रकाशन), पृ॰ 2015, छन्द 202

पर बैठी होती है उसके पीछे-पीछे लोग चलते रहते थे। जिनमें मुसलमान और गैर मुसलमान दोनों रहते है और उसके आगे ढोल और बिगुल बजते रहते थे और ब्राह्मण जो हिन्दुओं में महान् माना जाता था उनके साथ रहते थे। जब वे सुल्तान के क्षेत्र में ऐसा करते है तब विधवा को जलाने के लिए सुल्तान की अनुमति ले लेते हैं। सुल्तान अनुमति दे देता है तब वे उसे ‌‌(विधवा) को जला डालते हैं।[87] ऐसा प्रतीत होता है कि विधवाओं के जल मरने की प्रथा प्राचीन समय में प्रचलित थी।

इब्नबतूता आगे कहता है--(विधवा के द्वारा स्वयं को जला देना हिन्दुओं में प्रशंसनीय कार्य समझा जाता, पर उसके लिए यह बाध्यकारी नही है। जब कोई विधवा अपने को जला डालती है तो उसके सम्बन्धियों की प्रतिष्ठा बढ़ जाती है तथा अपने स्वर्गीय पति के प्रति निष्ठा का सम्मान बहुत अधिक किया जाता है। यदि वह अपने को जला नही डालती तो उसे अपने सम्बन्धियों में घृणा की दृष्टि से देखा जाता है तथा वह मोटे, खुरदुरे कपड़े पहनती है।[88]

दिल्ली के सुल्तानों की तरफ से यह कड़ा नियम लागू किया गया था कि विधवा को जलाने के लिए सुल्तान की आज्ञा लेना आवश्यक है। ऐसा नियम इसलिए बना था कि इस प्रथा को कार्य रूप देने के लिए किसी को

- -

87• दी रेहला ऑफ इब्नबतूता, पृ0 2।

88• वही,पृ0 22

के बाद मरना या उसके पीछे-पीछे इस लोक से जाना कहा जाता था। फिर भी "सह मरण" की प्रथा लोकप्रिय थी।
समसामयिक साहित्यों में सती प्रथा के उल्लेख प्राप्त होते है। उस समय सभी स्त्रियाँ सजी हुई होती थी जो सती होती थी।[85]
सती प्रथा का उल्लेख परमाल की पत्नी के सम्बन्ध में प्राप्त होता है। राजा परमाल की माँ सोमवती का अपने 5 वर्षीय पुत्र को छोड़कर सती हो जाने का उल्लेख प्राप्त होता है।[86]

विदेशी यात्रियों ने अपने वृतान्तों में सती प्रथा का उल्लेख अनिवार्य रूप से किया है। इस सम्बन्ध में ब्राह्मण पुरोहितों के द्वारा दबाव डाले जाने की चर्चा भी इन्होने की है। (मोरेटानिया) एक यात्री इब्नबतूता ने इस प्रथा औरइसके साथ होने वाली रीतियो का वर्णन करते हुए लिखता है "भारत में गैर मुसलमान हिन्दुओं में से कोई महिला जो कि अत्यन्त सुसज्जित करके घोड़े

- -

85. चन्द्रबरदाई के पृ0 रा0 (उदयपुर) भाग-4 समय 61, दोहा 297-398, पृ0 1155-1157 में हमें शहाबुद्दीन गोरी से युद्ध में वीर गति प्राप्त करने वाले अपने पति (पृ0राज0) के बारे में समाचार सुन उनकी संयोगिता और बहन पृथा कुमारी जलकर मर गई। दो0 400 पृ0 1157 वीर धुनिक योद्धाओं की पत्नियाँ भी सती हो गई। मृगावती पृ0 202, तथा पृ0 355,66 दो0 422 तथा हे·च·पृ· 165 डब्ल्यू क्रुक पृ0 153·

86. पृ0 रा0 (का0पृ0) पृ0 1147, छन्द 122 तथा प0 रा0, का0पृ0 खण्ड76 छन्द 42

बाध्य या सामाजिक दबाव न रहे। पर यदि किसी विधवा को जला देने
लिए आवश्यक अनुमति दे दी जाती थी।[89] अपनी हिन्दू बहनों के विरुद्ध बहुतही स्पष्ट कारण न रहने पर तथा ऐसा करने के
सम्पर्क में आने के कारण तत्कालीन भारत में मुसलमानों में भी आंशिक रूप
में सती प्रथा जैसा ही काम कर डालती थी, अर्थात् अपने मृत पति के साथ
कब्र में जीवित, प्रवेश कर जाती थीं। समकालीन साहित्य में चित्ररेखा नामक
वेश्या मीर हुसेन के साथ कब्र में दफन हो गई थी।

पर्यो हुसेन सु पात्र सुनी, चितिया चित्त इमान।
सब्यो घोर हुसेन साथ, कर्यो प्रवेश अप्पन।[90]

जौहर:

सती प्रथा की ही तरह एक और भयानक पर इससे अधिक आहत, प्रथा थी जिसे 'जौहर' के नाम से जाना जाता है। "जौहर" शब्द जातु गृह से आया है। जातु गृह शब्द महाभारत की कथा में लाह तथा अन्य ज्वलनशील पदार्थों से बने हुए घर जो कि पाण्डवों को उस घर में ही उन्हें जला डालने के लिए बनाया गया था[91]।

- -

89. के॰एम॰ अशरफ, लाईफ ऐण्डकन्डीशन्स ऑफ दि पीपुल आफ हिन्दुस्तान पृ0 157, दि रेहला ऑफ इब्नबतूता, पृ0 2।

90. चन्द खरदाई पृ0 रा0, भाग-1 (उदयपुर) समय 11 (हुसेन कथा) दोहा 7, पृ0 266

91. विद्यापति कृत, पुरुष परीक्षा, पृ॰ 13, तारीख-ए-फिरोजशाही, पृ॰ 462 खांड 1, पृ0 310-11 महाभारत कथा । अध्याय तथा
तारीख-ए-मुजफ्फर शाही, पृ॰ 35 एवं अमीर खुसरो कृत, खजायन-उलफुतु, पृ॰ 24 तथा इब्नबतूता, पृ॰ 58-59;

यह प्रथा, मुख्यत: वीर राजपूतों के घरानों में ही प्रचलित नही थी, यद्यपि अन्य घरानों में भी इस प्रथा के लागू होने के संकेत मिलते हैं।[92]

जब कोई राजपूत योद्धा या सरदार युद्ध में लड़ते हुए निराश हो जाते थे, तो वे अपनी पराजय निश्चित जानकर सामान्यत: अपनी महिलाओं और बच्चों को मौत के घाट उतार देते थे फिर किसी भूमि के अन्दर के कमरे में बन्दकर उसमें आग लगा देते थे और इसके बाद हाथ में तलवार लिए हुए, वे अपनी निश्चित पर वीरतापूर्वक मृत्यु को वरण करने के लिए आगे बढ़ते थे।[93]

रणथम्भौर के चौहान योद्धा ने जब अपने को, अपनी सेना से कहीं अधिक बड़ी सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी की क्रुद्ध सेना को अपने समक्ष पाया, तथा काफी लम्बे समय तक लड़ाई करने के बाद, उसने अपने यहाँ जौहर प्रथा को कार्य रूप दिया था।[94] समकाल में ही इस बात का विवरण मिलता है कि

---

92. टाड पृ0 363 और 381 में राजपूतों के जौहर का विवरण; वही पुस्तक 2 ऋ1920ऋ, पृ0 744-46, तथा सुजानराय का खुलासान-उत-तवारीख, सम्पादक जफर हसन। पृ० 25

93. के0एम0 अशरफ का लाईफ एण्डकन्डीशन्स ऑफ दि पीपुल ऑफ हिन्दुस्तान पृ0 159

94. अमीर खुसरो का खजायन-उल-फतह, सम्पादक मौलाना सैयद मोईनुल हक, पृ0 57-58

कम्पिला के राय [राजा] ने वहाँ जौहर रचाया था जबकि उसके किले को सुल्तान मुहम्मद तुगलक ने इसलिए घेर रखा था कि उसने बहा-उद्दीन गुश्तास्प नामक एक राज्य विद्रोही को अपने यहाँ पनाह [शरण] दे रखी थी। इब्नबतूता इस घटना का उल्लेख करते हुए लिखता है "जब बहाउद्दीन भागकर राय के यहाँ आया तो सुल्तान की फौज उसका पीछा करती हुई आयी तथा राय के राज्य को चारों तरफ से घेर लिया। राय पर इस बात का दबाव पड़ा तथा उसके यहाँ खाने-पीने की सभी रसद किले के अन्दर समाप्त हो गई। शत्रु के हाथों में न पड़ जाय इस डर से, उसने बहाउद्दीन से कहा"इन परिस्थितियों में तथा घटनाओं के बदलने के कारण मैंने अपने परिवार और अनुगामियों के साथ नष्ट हो जाने का निर्णय लिया है। अच्छा होगा कि तुम किसी अन्य सुल्तान [राजा] की शरण में चले जाओ।" और उसने बहाउद्दीन को एक हिन्दू राजा का नाम दिया। राय ने उससे कहा "वह तुम्हारी रक्षा करेगा, तुम्हें उसके साथ रहना चाहिए। तब उसने किसी दूत के साथ बहाउद्दीन को उस राजा के पास भेज दिया।[95] इब्नबतूता आगे लिखता है—"एक बड़ी आग जलाये जाने की आज्ञा दी। तब आग की लहरें उठने लगीं। जिसमें उसने अपनी सभी सम्पत्ति स्वाहा कर दी तथा अपनी पत्नियों तथा पुत्रियों से अग्नि में नष्ट हो जाने को कहा।[96]

---

95. दी रेहला ऑफ इब्नबतूता, पृ0 95 हेरम्ब चतुर्वेदी पृ0 166, रिजवी, तुगलक, कालीन भारत, भाग-1, पृ0 216

96. दी रेहला ऑव पृ0 96, वायजेज डी0 इब्नबतूता 3 पृ0 318-319

इसमें संदेह नही कि जोहर राजपूत नारीत्व को प्रतिष्ठा का प्रतीक था ।

काम-काजी स्त्रियां:

उस समय पेशेवर स्त्रियों के रूप में ग्वालिनें , मालिने नाउनें वेश्याएँ, नर्तकिया तथा वार-वनिताओं का उल्लेख मिलता है ।

अहीर जाति की स्त्रिया जिन्हे ग्वालिन कहा जाता था समकालीन कुछ साहित्यो में इन स्त्रियों को महरियों के नाम से भी पुकारा गया है । ये स्त्रियाँ दूध-दही बेचने का कार्य करती थी।[97] जाट की स्त्रियों को जाटनी अथवा आंजणी कहा जाता था आंजणी स्त्री अपने पति के साथ खेतों में कार्य किया करती थी

आंजणी काइ नि सिरजीय करतार ।[98]

माली की स्त्रिया मालिनें कहलाती थी। संभवत: ये फूलों को टोकरियों में भरकर-कर महल में पहुंचाने का कार्य करती होंगी।[99] ये स्त्रियाँ द्वारा गूंथा कर बेचती है ।[99 ए]

समकालीन साहित्य में धाय का वर्णन कई स्थलों पर आया है । इनका कार्य था कि उच्च वर्गीय परिवारों के नवजात शिशुओं को पाल कर बड़ा करती व उनकी देखभाल करती थी।[100] तथा नाई की स्त्री हारों में कुलीन स्त्रियोंके तेल मर्दन, महावार लगाने , सिर गूंथने आदि का कार्य करती ।[100 ए]

98· बीसलदेव रास § सम्पादक डा० मा० प्रा० गु० § पृ० 163
दो० 82

99· चंदायन, §सम्पादक§डा० माता प्रसाद गुप्त§ पृ० 238, पद 245 चं० 28/1·5

100· पृ० रा० § उदयपुर, प्रकाशन§ भाग-3 पृ० 540 छन्द 3 तथा पृ० रा०, §का०पृ०§
पृ० 71, छन्द 347

100 ए · चंदायन 37/6 § दाउद कृत §

समकालीन साहित्य में हमें वेश्याओं, नर्तकियों, वार-वनिताओं का उल्लेख मिलता है। समय-समय पर जैसे कि सार्वजनिक भोजों, त्यौहारों, शादी-विवाह आदि में मनोरंजन के लिए वेश्याओं और नर्तकियों को बुलाया जाता था। वेश्याओं के नगरों से अलग रहने के लिए मुहल्ले बने हुए थे। इनको सामान्यतः रंगी, गणिका, पातुर, विश्वबेड़िनी, नर्तकी या वेश्या आदि नामों से पुकारा जाता था। वेश रमणियाँ सर्वांग सुन्दरी तथा बत्तीस लक्षण युक्त रहती थी।[101] वेश्याओं की चर्चा करते हुए अलबेरूनी लिखता है - "हम लोग वेश्यावृत्ति को हेय दृष्टि से नहीं देखते, उन्हें उसके लिए सामाजिक अनुमति मिली हुई है-वेश्या को दण्डदेने के मामले में हिन्दू क्रूर नहीं है। इस सम्बन्ध में राजा दोषी होते थे न कि राष्ट्र का। यदि ऐसा न होता तो ब्राम्हण या पुरोहित नाच-गान और क्रीड़ा करने वाली स्त्रियों को मन्दिरों में मूर्ति-पूजा करने न घुसने देते। राजाओं ने उन्हें नगर आकर्षण के रूप में रखा था ताकि प्रजाजन उनसे आनन्द ले सकें इसका कोई और नहीं बल्कि आर्थिक कारण है। इस आदि कालीन व्यवसाय से, करों तथा दण्ड के रूप में जो आय होती है उससे सेना पर होने वाले व्यय की पूर्ति की जाती है।[102]

- -

101. पृ० रा०, ﴾का० प्र०﴿, पृ० 960, छन्द 5 एवं ज्योतिरीश्वर का वर्णरत्नाकर, चतुर्थ, कल्लोल ﴾अथ वेश्यावर्णन﴿ पृ० 26-27 चौपाई 553, पृ० 75

102. अलबेरूनीज इण्डिया ﴾सचाऊ﴿, 2 पृ० 157

समकालीन साहित्य में चित्ररेखा और करनाटी वेश्याओं का उल्लेख मिलता है। चित्ररेखा जिसका यौवन और सौन्दर्य कामदेव की पत्नी रति की याद दिलाता था। वे संगीत और गीतों में पूरी पारंगत थीं। दोनों ही अपने-अपने स्वामियों, मुहम्मद गोरी और पृथ्वीराज चौहान के रनिवासों की शोभा है :-

महिलासु मुक्कि सब बस्सि भय, महिला महिल सुमत्ति बसि।[103]

विद्यापति ने "कीर्तिलता" में जौनपुर की रूपवती युवतियों को जो वारवनिताओं के रूप में काम करती थीं, विस्तृत रूप से वर्णन किया है। वहां की वेश्याएं अपनी जीविका अवैध तरीकों से चलाती थीं और लोग अपनी काम पिपासा की तृप्ति के लिए उन पर निर्भर रहते थे।[104] ये लुभावनी औरतें बाजार में एकत्र होकर अन्य युवतियों को पेशे में लाने का विभिन्न प्रकार से प्रलोभन देती थीं।[105] विद्यापति ने उनकी लज्जास्पद गति विधियों का वर्णन इस प्रकार किया है :- "उनकी लज्जा अस्वाभाविक थी और रंग रूप कृत्रित होता था। उन्हें केवल धन से ही लगाव था तथा दूसरों को भुलाने के लिए ही विनम्रता का प्रदर्शन करती थीं। साथ ही साथ वे अपना धन बढ़ाने के लिए अत्यन्त उत्सुक रहती थीं। पति से वंचित होते हुए भी वे अपने मांग

104• विद्यापति रचित कीर्तिलता (सम्पादक वी• एस• अग्रवाल)

द्वितीय पल्लव, छन्द 16 दोहा 113, 118 पृ0 78-79

103• पृथ्वीराज रासो, भाग1 (प्रकाशक साहित्य संस्थान, उदयपुर (समय 11 (हुसैन कथा (कवित्त 3, पृ0 243 तथा । पृ0 रा0 (उ0 प्र0 (भाग । 29। छन्द 13।

105 वही, द्वितीय पल्लव, छन्द 24 दोहा 138 पृ0 85

में सिन्दूर भरती थीं जो, वास्तव में, उनकी बदनामी का प्रतीक था। [106] सुलतान इब्राहीम शाह के संरक्षण में जौनपुर की वेश्याएँ आनन्द और समृद्धि का जीवन बिताती थीं।

सिरी इब्राहीम शाह गुने नहि चिन्ता नाहिं शाक। [107]

समकालीन साहित्य में वेश्याओं के प्रशिक्षण का उल्लेख मिलता है। करनाटी नामक वेश्या को सर्वकला प्रवीण बनाने के लिए पृथ्वीराज ने "केल्हन" नामक गुरू को नियुक्त किया था। [108]

विशाल नृत्य गृहों का उल्लेख समकालीन साहित्य में मिलता है, जिसमें महाराज जयचन्द द्वारा चन्द को नाटक, नाच-गानादि के लिए निमन्त्रण दिया जाता है। [109]

शासक वर्ग §राजा§ अपने दरबार में ही पातुर का नृत्य देखते थे। राज्याभिषेक के समय भी नृत्यगान का कार्यक्रम होता था। [110] पृथ्वीराज चौहान मुहम्मद गोरी के यहाँ बन्दी होने पर उसे वहाँ भी पातुरों की कमी खटकती है।

---

106. वही, द्वितीय पल्लव, छन्द 25, दोहा 132-133, पृ0 82-83

107. कीर्तिलता, §झांसी§ द्वितीय पल्लव, छंद 25, दोहा 153, पृ0 91

108. पृ0रा0 §का0प्र0§, पृ0 969, छन्द 5 एवं पृ0 966, छन्द 56

109. पृ0रा0, §का0प्र0§, पृ0 1700, छन्द 733 तथा पृ0 1704, छन्द 870

110. पृ0रा0, §का0प्र0§, पृ0 1564, छन्द 1-2, एवं पृ0 567, छन्द 61

नहीं पातुर चातुर नृत्यकारी। नहीं लाज संगीत आलापकारी[111]
साधारण जनता भी वेश्याओं के नृत्य द्वारा मनोरंजन करती थी।[112]

इस प्रकार इस काल में, वेश्यावृत्ति बड़े पैमाने पर प्रचलित थी। सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के शासन काल में दिल्ली में निरन्तर बढ़ती हुई वेश्याओं की संख्या सरकारी क्षेत्रों में चिन्ता का विषय बन गई थी। कुछ वेश्याओं को विवाह सूत्र में बांध दिया गया ताकि इस पेशे में भीड़ घट जाए।[113]

समीक्षाधीन अवधि में, महिलाओं की सामाजिक स्थिति वर्तमान की स्थिति से, जिसमें सामाजिक शक्तियों के दबाव के कारण परिवर्तन हुए हैं, बहुत ज्यादा भिन्न नहीं थी। इसमें संदेह नहीं है कि कुलीन वर्गों और धनवान लोगों के घरों की महिलाओं की स्थिति भी उन वर्गों की आज की महिलाओं की जैसी ही थी। उनके कार्य-कलापों और उच्च सांस्कृतिक एवं साहित्यिक उपलब्धियां पर्याप्त थी। उनकी तुलना आज भी उच्च वर्गों की महिलाओं से की जा सकती है। दूसरी तरफ उस समय के महिला समुदाय के बहुत बड़े भाग की, विशेषकर उनकी जो ग्रामीण क्षेत्रों में यहां वहां रहती

---

111. उपरिवत् पृ० 2375 छन्द 1642

112. उपरिवत् पृ० 1640 छन्द 427-30

113. के०एम० अशरफ, लाइफ एण्ड कन्डीशन्स ऑव दी पीपुल आव हिन्दुस्तान

थी, इसकी स्थिति संतोषजनक नहीं कही जा सकती थी। उनमें अधिकांशत: अनपढ़ थी और अज्ञान तथा अविश्वास की बुराइयों में बुरी तरह जकड़ी हुई थीं।

अध्याय :x- 4

रोति-रिवाज (संस्कार) व अंध विश्वास

भारत वर्ष में मानव जीवन एक चक्र के समान समझा जाता रहा है और वैदिक काल या उससे पूर्व हो आत्मवादी एवं भौतिक -वादी विविध धारणाओं के बीच ही देश और काल के अनुसार हो कुछ संस्कारों की सृष्टि हुई थी। संस्कार शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में किया गया है संस्कृत साहित्य में इसका प्रयोग संस्करण परिष्करण, प्रशिक्षण, संस्कृति , शोभा सौजन्य स्वरूप स्वभाव, धार्मिक , विधि धारणा, आभूषण छाप विधान आदि अर्थों में किया गया है ।[1]

वेद ब्राह्मण ग्रन्थ आरण्यक उपनिषद ग्रह्यसूत्र धर्म सूत्र स्मृतियों, महाकाव्यों पुराणों आदि में षोडश संस्कारों इनको पद्धतियों प्रयोगों प्रयोजनों विधायक अंगों आदि के सम्बन्ध में विचार-विमर्श हुए है ।[2]

किसी भी हिन्दू के संस्कार वस्तुत: उसके जन्म से पूर्व हो प्रारम्भ हो जाते है ।[3]

यह संस्कार परिवारिक उत्सव के रूप में विधि अवसरों पर मनाये जाते थे। इनको संख्या भी घटती -बढ़ती रही है । आश्वलायन ग्रह्यसूत्र में ग्यारह को गणना है,

---

(1) डा० राजबली पाण्डेय, हिन्दू संस्कार पृ० 18

(2) पूर्ववत पृ० 18 (विषय सूची)

(3) राजबली पाण्डे हिन्दू संस्काराज तथा जी० पी० मजूमदार एम एस्पेक्टस

बोधायन ग्रहण सूत्र तथा पारासर ग्रह्म सूत्र में यह संख्या तेरह है। याज्ञ वल्क्य स्मृति में बारह गौतम स्मृति में चालीस संस्कारों के नामों का उल्लेख किया गया है लेकिन इन चालीस संस्कारों में जाति कर्म, नामकरण, विवाह तथा अन्त्येष्ठि संस्कार ये चार संस्कार ही अधिक प्रचलित थे ।[4]

हिन्दू विधि वेत्ताओं द्वारा निर्धारित सोलह प्रमुख अनुष्ठानों में से सिर्फ छह महत्वपूर्ण का ही पालन प्राय: अधिकांश हिन्दू व्यवहार में करते पाये जाते है ये छह है – जातक कर्म § जन्म अनुष्ठान § नामकरण चूडाकरण § मुण्डन§ उपनयन § जनेऊ § विवाह तथा मरणोपरान्त के कर्म ।[5]

प्राय: इतिहासकार तथा विदेशी यात्रियों ने विवाह आदि को छोड़कर अन्य अनुष्ठान कर्मो के विषय में विस्तृत वर्णन नहीं किया है । सम्भवत: विवाह आदि पर ही इतना भव्य आयोजन होता था तथा यह मूलत: तड़क-भड़क वाला आयोजन होता था अत: उसका वर्णन स्वाभाविक

---

§4§ डा0 वासुदेव उपाध्याय दि सोसियो रिलिजस कण्डीशन आफ नार्थ इण्डिया पृ0 141

§5§ एबे दुबोई , हिन्दू मैनर्स कस्टमस एण्ड सेरेमनील पृ0 155-172 तथा राजबली पाण्डे, पूर्वोद्धृत पृ0 105-115 , 146-157 तथा जी0 पी0 मजूमदार पूर्वोद्धृत पृ0 367-408 ।

व प्रत्याशित था किन्तु सम्भवत: जन्म के पूर्व से लेकर बालक के प्रारम्भिक अनुष्ठान प्राय: रनिवास में सम्पन्न हो जाया करते थे अत: दरबारी इतिहासकारों, समकालीन रचनाकारों तथा विदेशी यात्रियों के लिए वहाँ उपस्थिति सम्भव नहीं थी। इसलिए इन विषयों पर प्राय: मौन है ।

शिशु जन्म

तत्कालीन समाज में पुत्र का जन्म पिता की तपस्या का परिणाम माना जाता था। समकालीन साहित्य में पृथ्वीराज का जन्म महाराज सोमेश्वर की अखण्ड तापश्चर्या की परिणति माना गया है ।[6]

परमाल रासो के अन्तर्गत पुत्र प्राप्ति हेतु हेमवती तीर्थो की यात्रा करती है और देवताओं का अनुष्ठान करती है ।[7]

इस काल में उसी घर को श्लाघ्य समझा गया है जिस घर में कम से कम एक पुत्र हो ।[8] अनंगपाल के द्वारा पुत्र के अभाव में सम्पूर्ण संसार व्यर्थ कहा है। जिस परिवार में पुत्र न हो वह परिवार नष्ट हो जाता है । उसमें किसी भी प्रकार के धार्मिक कार्य न हो पाने के कारण पितृ-तर्पण नहीं हो पाता। पुत्र वही सच्चा माना जाता था जो पितृ-ऋण चुकाता है ।[9]

---

§6§ पृ0 रा0 §सम्पादक मोहन सिंह ,उदयपुर प्रकाशन§ पृ023 छन्द 51 §आदिकथा तथा पृ0 रा0 §का0 प्र0 § पृ0 145 छन्द 696 ।

§7§ प0 रा0 §का0 प्र0 § खण्ड 1 छन्द 123

§8§ पृ0 रा0 §का0 प्र0 § पृ0 2195, छन्द 529

शिशु पृथ्वीराज के जन्म पर पिता सोमेश्वर ने प्रसन्न होकर इस उपलक्ष्य में उत्सव मनाया तथा इस मांगलिक सूचना को सुनकर विशेष कीमती हाथी, घोड़े वस्त्रादि बधाई में दिये।[10]

इसी प्रकार से दौहित्र (पुत्री के पुत्र) के जन्म होने के उत्सव में अनंगपाल ने बहुत सा दान दिया तथा उत्सव में आए समस्त लोगों को मेहमान बनाकर दस-दस दिन तक रखा।[11]

समकालीन साहित्य में हमें इस बात के संकेत प्राप्त होते हैं कि पुत्र जन्म पर अधिक उल्लास व अनेक आयोजन सम्पन्न किये जाते थे।[12]

पृथ्वीराज के जन्म पर उनकी माता की बहिन ने थालियों में जरीन वस्त्रादि द्विज (पंडित) के द्वारा दिल्ली भेजा (जहाँ शिशु पृथ्वीराज का जन्म हुआ था। द्विज ने वह समान राज्याश्रितों गरीबों और द्विजों को क्रमशः समर्पित किया।[13]

इसी प्रकार से पृथ्वीराज के पुत्र रत्न होने पर राजगृह में सोने का थाल बजाया गया तथा उत्सव मनाया गया।[14]

---

(10) पृ० रा० (सम्पादक-मोहन सिंह, उदयपुर प्रकाशन) पृ० 22 दो 46 (आदि कथा)

(11) पूर्ववत पृ० 21 छन्द 45

(12) मृगावती, पृ० 9-11 दो 13-15 व हेरम्ब चतुर्वेदी पृ० 2[illegible]2

(13) पृ० रा० (उदयपुर प्रकाशन) पृ० 21 छन्द 45

पुत्र जन्म के साथ-साथ इस काल में पुत्री के जन्म में भी आनन्द व उत्साह का आयोजन किया जाता था। समकालीन साहित्य चांदायन में हमें महर की कन्या चांदा के जन्म पर बधावे बजे तथा छतिसों जातियाँ आमन्त्रित की गई थी ।[15]

अतः चाहे एक ही आध उदाहरण हों किंतु पुत्रीजन्मोत्सव के भी आयोजन का उदाहरण हमें प्राप्त होता है । पुत्र जन्म पर बधाई देने की प्रथा थी । पृथ्वीराज के जन्म पर नगर की महिलायें सोने के थालों में रेशमी वस्त्र चावल आदि द्रव्य लेकर बधाई देने आती है ।

सब सहर नारि अंगार कीन । अप अप्प झुंडमिति चली नवीन थीप कनक थार भरि द्रव्य दूब। पटकूल जरफ जर कसी उब अछिछत उन्नप रोचन सुरंग । मृदुकमल हास लोइन कुरंग ।[16] इसी प्रकार से पुत्रोत्पति का समाचार देने वाले दास -दासियों को घोड़े , हाथी वस्त्र आदि दिये जाते है । सुनि सोमेस बधाई दिया। है मै चोर गुराब ।[17] इसी के पश्चात ब्राहाणों को निमन्त्रित करके जातक कर्म पूर्ण संस्कार किए जाते थे तथा उन्हें अनेक प्रकार के दान आदि दिए जाते थे।[18]

- -

§14§ पूर्ववत पृ0 353 छन्द 15 तथा प0 594 छन्द 102 §धन कथा §

§15§ चांदायन §सम्पादक -डा0 माताप्रसाद गुप्त§ पृ0 29-30 छन्द 32

§16§ पृ0 रा0 § का0 प्र0 § पृ0 138 छन्द 69।

§17§ पूर्ववत पृ0 138 , छन्द 69।

§18§ राजबली पाण्डे पूर्वोद्धत पृ0 123 व हेरम्ब चतुर्वेदी पृ0 262-263

इस कर्म का पूर्ण आयोजन रनिवास में ही सीमित रहता था। अनेक मंगल गीत गाये जाते थे आरती उतारी जाती थी तथा बच्चे की न्यौछावर उतारी जाती थी ।[19] तथा इसी दिन शिशुओं की जन्म पत्रिका भी ब्राहम्ण द्वारा तैयार की जाती थी ।[20]

जन्म मुहूर्त विचारने का प्रचलन और जन्म समय देख कर भविष्यकाल के सम्बन्ध में जानकारी करने की पद्धति विशेष रूप से थी। पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर ने ज्योतिषियों को बुलवाकर उनसे पृथ्वीराज की उम्र विवाह, युद्ध आदि के सम्बन्ध में पूछते है और उन्हें घोड़े हाथी आदि अमित धनदान करके विदा करते है ।[21] दिल्ली नरेश व पृथ्वीराज के नाना ने पृथ्वीराज के जन्म पर व्यास को बुलवाकर जन्म लग्न पर विचार कराया था ।

अनंगपाल पुहवे नरेस , व्यास जग जोत बुलाइय ,
लगन लिखिअनु जासु, नाम चिहु चक्क चलाइय ।[22]

---

§19§ मृगावती पृ0 11 दो 15 तथा हेरम्ब चतुर्वेदी पृ0 265 ।

§20§ हेरम्ब चतुर्वेदी , पृ0 264

§21§ पृ0 रा0 §का0 प्र0 § पृ0 148 छन्द 712

§22§ पृ0 रा0 § सम्पादक मोहन सिंह, उदयपुर प्रकाशन§ आदि काव्य § छन्द 44 तथा पृ0 रा0 § का0 प्र0 § पृ0 187 छन्द 689 ।

समकालीन साहित्य में हमें पुत्र के ही जन्म पर नही अपितु पुत्री के जन्म पर भी जन्म मुहूर्त विचारने का प्रचलन था। चांदायन में हमें महर की कन्या चांदा के जन्म पर घड़ी नक्षत्र विचरवाने का उल्लेख मिलता है[23] तथा चांदा के भविष्य की गणना पंडितों के द्वारा ज्योतिष ग्रंथ निकाल कर राशि गिन कर की जाती है ।[24]

जातक कर्म तथा अन्य संस्कार:-

पृथ्वीराज का जातक कर्म होने के पूर्व पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर उसका मुख देखता है। चन्दवरदाई ने इसे नांदी श्राद्ध कहा है और इस अवसर पर ब्राह्मणों के द्वारा वेद विदित जातक कर्म की क्रिया की जाती है । साथ ही नृत्य और गान आदि कार्य होते है ।

पधराई राइमुख दरस कीन । द्रिग, ब्रम्म पुब्ब फल मान लीन ।[25]

इसी प्रकार से :- कीर जात ब्रम्म गति ग्रन्थ सोधि
वेदोक्त विप्प वर बुद्धि बोधि
मंगल उच्चार कीर नृत्य गान
उछछीर अलाप सुर भवन जानि ।[26]

---

[23] चांदायन, सम्पादक [डा० माता प्रसाद गुप्त] पृ० 29-30 छन्द 32 एवं

[24] पूर्ववत पृ० 31 छन्द 33

[25] पृ० रा० [का० प्र०] पृ० 146 छन्द 699

नामकरण:-

नामकरण संस्कार भी रनिवास में ज्योतिषियों के माध्यम से किया जाता था। पृथ्वीराज का नामकरण संस्कार महाराज सोमेश्वर के द्वारा ज्योतिषियों के माध्यम से किया जाता है।[31]

चूड़ा कर्म (मुण्डन)

चूड़ा कर्म (मुण्डन) संस्कार के विषय में अलबेरूनी लिखता है यह तृतीय वर्ष या तीन वर्ष की आयु पर प्रायः सम्पन्न होता था।[32] जब कि हमें अनेक उदाहरण मिलते है जब यह एक से तीन वर्ष की आयु के मध्य सम्पन्न हो जाता था।[33]

प्रायः इसी दिन/कर्ण भेदन या कनछेदन भी सम्भवतः कर लिया जाता था।[34]

31- पृ० रा० (का० प्र०) पृ० 147 छन्द 705 तथा 710। तथा पृ० 149 छ712

(32) अलबेरूनी (सचाऊ) 2 पृ० 157

(33) हेरम्ब चतुर्वेदी पृ० 272

(34) डा० पी० एन० चोपड़ा सोसायटी एण्ड कल्चर ड्यूरिंग द मुगले एज पृ० 170-171 तथा राजबली पाण्डेय पूर्वोद्धृत पृ० 162 तथा हेरम्ब चतुर्वेदी पृ० 273

उपनयन:- यज्ञोपवीत/उपनयन अथवा जनेऊ उच्च वर्णो का विशेषाधिकार था तथा आठ वर्ष को आयु के पूर्व यह प्राय: सम्पन्न हो जाता था ।[35]

इसके तीन तार [तागे] हिन्दू धार्मिक वांगमय के ब्रहमा विष्णु, महेश को त्रिमूर्ति का प्रतिनिधित्व करते थे तथा इसका श्वेत रंग शुद्धता का प्रतीक था।[36] अलबेरूनी के अनुसार ---

ब्राहमणों में आठ वर्ष को आयु में यज्ञोपवीत [उपनयन] किया जाता था अर्थात एक यज्ञोपवीत [जनेऊ] नौ एकहरी डोरियों से बनता था। यह डोरी बाँए कन्धे से होते हुए दाहिने नितम्ब तक झूलती थीं। ब्राहमण यज्ञोपवीत को अपने से पृथक नहीं कर सकता था ।[37] अलबेरूनी क्षत्रियों के उपनयन संस्कार के बारे में लिखता है - वह तीन इकहरे सूत का तथा रूई का एक इकहरी डोरी का "यज्ञोपवीत " धारण करता है । बारह वर्ष को आयु में उसका [क्षत्रिय] यह संस्कार सम्पन्न होता है ।[38]

---

[35] राजबली पाण्डे, पूर्वोद्धृत पृ० 49 तथा 199-204 व मजूमदार ,पूर्वोद्धृत पृ० 345-347 ।

[36] दुबोई , पूर्वोद्धृत , खण्ड1 पृ० 163 , मजूमदार , पूर्वोद्धृत पृ० 346-47 एवं राजबली पाण्डे , पूर्वोद्धृत पृ० 226, हेरम्ब चतुर्वेदी 274-276

[37] अलबेरूनी इण्डिया 2 [सचाऊ] पृ० 130 ।

[38] पूर्ववत पृ० 136

आलोच्य काल में समकालोन साहित्य से पता चलता है कि यज्ञोपवोत पहनने को प्रथा कुछ विशेष अवसरों पर भो क्षत्रियों में थो। इच्छनो विवाह के समय इच्छनो के पिता एक जनेऊ भेंट करते है :=

जर कंमर जनुउ, हथ्थ संकर नाग नंडित
धर्व जनेउ धारए , कहो सुबंस कारए ।[39]

समकालोन साहित्य में हमें राजकुमारो राजमतो का विवाह -बोसल देव से होने के समय पिता विवाह को रस्में पूर्ण करवाने आते है तथा उनके गले में जनेउ था । [40]

इसी प्रकार से :-

परवर प्रीत पंच पालन पार्थवानता।[41]

वैश्यों के सम्बन्ध में अलबेरूनी उल्लेख इस प्रकार करता है "वैश्य केवल इकहरा यज्ञोपवोत धारण करता है जो कि दो डोरियों का बना होता है।[42]

----

§39§ पृ0 रा0 §सम्पादक मोहन सिंह ,उदयपुर प्रकाशन§ पृ0 30। कवित्त 17 §इच्छिनी विवाह§ तथा पृ0 रा0 § सम्पादक डा0 श्यामसुन्दर दास काशो प्रकाशन§ इंछिनो विवाह प्रसंग

§40§ बोसल देव रासो § सम्पादक डा0 माताप्रसाद गुप्ता§ पृ0 104 छन्द22 तथा पृ0 179 व छन्द 97

§41§ पृ0 रा0§सं0 मोहनसिंह,उदयपुर प्रकाशन§ पृ0 30,छन्द 67 §आदि समय§

§42§ अल्बेरूनो इण्डिया 2, §सचाऊ § पृ0 136

विवाह:-

वैवाहिक अवसरों पर आलोच्यकालीन समाज में अनेक प्रकार के मांगलिक कार्य सम्पन्न किये जाते थे। ये कार्य विविध आचार्यपूर, सम्पन्न किये जाते थे।[43]

विवाह के लिए उपयुक्त वर खोजने के लिए पुरोहित को भेजा जाता था। द्विज के द्वारा मणि मोती से मंडित करके तथा श्री फल देकर विवाह का प्रस्ताव किया जाता था।

नालि केर फल परीठ दुज, चौक पूरि मनि मुत्ति।
दई सु किन्या वचन वर, अति अनंद करि जुत्ति।[44]

कभी-कभी वर पक्ष की तरफ से भी ब्राहमण तथा नाई को सुपारी लेकर लग्न§ सगाई§ के लिए कन्या के घर भेजा जाता था :-

---

§43§ डा० राजबली पाण्डे हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास भाग-1 अध्याय 5 पृ० 132

§44§ पृ० रा० §सं० कविराज मोहन सिंह, उदयपुर प्रकाशन§ पृ० 360-361 §पद्मावती समय§ छन्द 19-21 तथा पृ० 372 छन्द 9 § प्रथा विवाह§ तथा बीसलदेव रासो सं० डा० माता प्रसाद गुप्त, पृ० 91-92 छन्द 8-9 ।

चउथे बरिरि धरिसि जउ पाऊ । जइत बोलावा बांभन नाऊ
दीन्हि सुपारी मोतिन्ह हारू । कहिहु महर सों मोर जुहारू ।
अउ अस कहेहु मोर तुं भाई । राजा नइ कइ करहु समाई ।[45]

वैवाहिक रस्मों में सर्वप्रथम सगाई का कार्यक्रम किया जाता था ।
पृथ्वीराज रासो में नाहरराय पृथ्वीराज चौहान को आठ वर्ष को अवस्था
में ही माला पहनाते हुये सगाई का कार्यक्रम सम्पन्न करते हैं।[46]

इसी प्रकार समकालीन साहित्यों में कई स्थलों पर टीका भेजने
को प्रथा का उल्लेख मिलता है। इस प्रथा को ही लगन भेजनाभी कहते थे।[47]
इसमें अपने कुल के पुरोहित के द्वारा नारियल तथा वस्त्र ,हाथी, घोड़े
आभूषण ,मुद्रायें और मिठाइयों को वर पक्ष के पास भेजने को प्रथा थी।
पृथ्वीराज रासो के अन्तर्गत इच्छिनी, पद्मावती पृथा कुंवरि तथा परमाल
रासो में राजमती को लगुन इसी प्रकार से भेजी गयी थी।[48]

---

(45) चांदायन (सं० डा० माताप्रसाद गुप्त) पृ० 33 छन्द 35
(46) पृ० रा० (का० प्र०) पृ० 335, छन्द 25-26

(47) पृ० रा० (उ० प्र०) भाग । पृ० 293 छन्द 3 व पृ० 360 (पद्मावती
समय) छन्द 19, तथा पृ० 372 व 377 छन्द 9 व 17 (पृथा विवाह) एवं
बीसल देव रासो (सं० डा० माताप्रसाद गुप्त) पृ० 91-92 छन्द 8-9 ।
तथा प० रा० (का० प्र०) खण्ड 13 छन्द 141
(48) पृ० रा० रासो (उदयपुर प्रकाशन) भाग-1 पृ० 360 छन्द 19 तथा प० रा
(का० प्र०) खण्ड 24 , छन्द 82-84

इसी प्रकार परमाल रासो में लाखन को लगुन अथवा लगन प त्रिका भी हाथी घोड़ों और स्वर्ण मुद्राओं सहित आती है ।[49]

लगन के समय धन लुटाने की प्रथा का विवरण समकालीन साहित्य में मिलता है। लाखन का टीका ﴾लग्न﴿ चढ़ते समय असीम धन लुटा दिया जाता है ।[50] इसी प्रकार जब राजकुमार ब्रहमा की लगन चढ़ाई जाती है तब उसे पान खिलाया जाता है । हाथ में नारियल दिया जाता है और टीका की सामग्री चौक पर रखी जाती है ।[51] परमाल रासो से ही यह विवरण मिलता है कि पृथ्वीराज चौहान द्वारा लगुन में एक लाख स्वर्ण मुद्रायें भेजी गई थी और महाराज चन्देल उसमें दो लाख और स्वर्णमुद्राओं को मिलाकर प्रजाजनों को बाँट दते है। इससे यह ज्ञात होता है कि लगन के समय दान देने की प्रथा थी ।[52] विवाह के समय हाथों में कंगन बाँधने की प्रथा का उल्लेख समकालीन साहित्य में मिलता है ।[53]

﴾49﴿ प० रा० ﴾ का० प्र० ﴾ खण्ड 24 छन्द 87
﴾50﴿ पृ० रा० ﴾ का० प्र० ﴾ खण्ड 24, छन्द 87 ।

﴾51﴿ पूर्ववत खण्ड 13 छन्द 31-33

﴾52﴿ उपरिवत् खण्ड 13, छन्द 38-39 तथा 40

﴾53﴿ पृ० रा० ﴾का०प्र०﴿ पृ० 556 छन्द 93 एवं पृ० रासउ ﴾सं० डा० माता प्रसाद गुप्त 6:15:21 तथा बीसलदेव रासो﴾संमाताप्रसाद गुप्त﴿ पृ० 97-98 छन्द 15

विवाह की तैयारी के रूप में सर्वप्रथम कन्याओं के उबटन लगाने का उल्लेख इच्छिनी और शशिव्रता के श्रृंगार वर्णनों में मिलता है।[54] चन्दरदाई के द्वारा पृथ्वीराज चौहान की संयोगिता के साथ विवाह के अवसर पर मुकुट पहनने का उल्लेख मिलता है तथा प्रत्येक वर द्वारा उस काल में सिर पर मौरी बांधे जाने का भी उल्लेख प्राप्त होता है ।[55]

समकालीन साहित्य कृतियों में हमें बारात की अगवानी की प्रथा का उल्लेख मिलता है ।

सुनि अवाज चहुआन, करिय अग्योनि सलख बर ।[56]

इसी प्रकार से ----

आगे है चावड़ लिखव , रैन कुंवर ।[57]

---

§54§ पृ० रा० §का० प्र०§ पृ० 556 , छन्द 93

§55§ पूर्ववत पृ० 572, छन्द 36 तथा बीसलदेव रासो पूर्वोद्धृत पृ० 97 छन्द 15 ।

§56§ पृ० रा० §उदयपुर प्रकाशन§ पृ० 299-300§इच्छिनी विवाह§ छन्द 15 तथा पृ० रा० § का० प्र०§ पृ० 546 , छन्द 22

§57§ पृ० रा० § का० प्र० § खण्ड 15, छन्द 237

इसी प्रकार से विवाह के अवसर पर तोरण बंधने कलश सजने तथा कलश पूजन अथवा बन्दना की प्रथा का उल्लेख मिलता है।

तोरण कर वर वंदतह मुत्तिय अच्छित डारि।[58]

इसी प्रकार विवाह में कलश बंधवाये जाने का विवरण मिलता है:

दो जान मान चहुआन दल प्रथम कलस सें भरि धनिय।[59]

तत्कालीन भारत वर्ष में बारातों के आगमन पर " जनवासा को व्यवस्था होती थी, जहाँ बारात ठहरती थी एवं वहाँ को समुचित व्यवस्था हेतु "शमियाना" लगाया जाता था।[60]

समकालीन साहित्यिक कृतियों के अनुसार बारातें बड़ी होती थी, उदाहरणार्थ ब्रह्मा को बारात में एक लाख बराती आने का उल्लेख प्राप्त होता है। इसी प्रकार लाखन को बरात में तीन लाख बराती का विवरण दिया गया है।[61]

---

§58§ पृ०रा०§उदयपुर प्रकाशन§पृ०302 §इच्छिनीविवाह§छन्द 18 बीसल्देव रासो §सं० डा० माताप्रसाद गुप्त§ पृ० 99-100 छन्द 17 एवं पृ० रा०§का० प्र०§पृ० 547 छन्द 25 तथा पृ० 1087 छन्द 196

§59§ पृ०रा०§उदयपुर प्रकाशन§ पृ० 350-351, छन्द 10-11

§60§ पृ०रा०§का०प्र०§पृ० 547 छन्द 25 तथा पृ० 1087 छन्द 196 एवं चांदायन § सम्पादक डा० माता प्रसाद गुप्त§ पृ० 39 छन्द 41

§61§ पृ० रा० §का० प्र० § खण्ड 13, छन्द 105-106 तथा खण्ड 24, छन्द 89।

रावल समर विक्रम को बारात में आठ हजार साधारण बाराती दो हजार कोविद एक हजार -मागध तथा पाँच सौ वैदिक पंडित शामिल हुए थे।[62]

बीसलदेव की बारात में इस प्रकार से बाराती थे :

पूजियउ गणपति चालो छइ जान ।
लहइ चउरासिया दूणउ जो मान
सात सहज नेजा धणो ।
पालखो बइठा सहस पंचास ।
हस्तीय सिणगारया छइ सातसइ ।
पालोय परदल को नहीं छेह ।
कटक वइयउ धजा फरहरो ।
जाणि करि बीसल परतिख्य देव ।[63]

इच्छिनी के लिए आयी हुई बारात पांच दिन रोकी गयी थी और बरातियों के साथ ही शहर के समस्त नागरिकों व्यक्तियों को भोजन दिया गया था। इच्छिनी के पिता ने बारात के लिए सात खण्ड के प्रसाद में साज-सज्जापूर्ण जनवासा दिया।

---

(62) पूर्ववत पृ0 654, छन्द 93

(63) बीसल देव रासो (सं॰ माता प्रसाद गुप्त) पृ0 95-96 ,छन्द 13

पंच दिवस च्यारौ बरन। भुंजै अंन अपार
छरस अन्न छह रीति न सुख। अच्छू वै आचार[64]

विवाह के अवसर पर कन्या के घर बारात के आगमन के पश्चात सर्व प्रथम द्वार चार किया जाता था जिसमें ज्योतिषियों द्वारा मुहूर्त-विचार किया जाता था और हाथी, घोड़े, वस्त्रादि, धन आदि कन्या के पिता द्वारा प्रदान किए जाते थे।[65]

परमाल रासो में ब्रह्मा को बारात के आगमन पर चौक पूर कर मुद्रायें मालाऐं एवं अस्त्र-शस्त्र दिये गये थे।[66] इस अवसर पर खुशी को अभिव्यक्ति के रूप में स्त्रियों द्वारा गीत गाये जाते थे पर स्त्रियाँ गीत गाया करती थी तथा भाटों के द्वारा भी प्रशस्ति गान किया गया जाता था। विवाह के समय मंडप बनाया जाता था राज परिवारों एवं समृद्ध परिवारों में मंडप चंदन की लकड़ी का बनता था।

चंदन काठ कउ माडहउ।[67]

---

(64) पृ0 रा0 (का0 प्र0) पृ0 560, छन्द 120 तथा चांदायन पूर्वोद्धृत, पृ0 39 पद 4।

(65) पूर्ववत् पृ0 547 छन्द 24

(66) प0 रा0 (का0 प्र0) खण्ड 15 छन्द 143

(67) बीसलदेव रासो पूर्वोद्धृत, पृ0 101, छन्द 19

कभी-कभी हरे बांसों के मंडप बनाए जाते थे इसका उल्लेख पद्मावती के विवाह अवसर पर मिलता है।

हर बांसह मंडप बनाय, करो भावरि मन गंठिय।[68]

वर के मंडप में आने पर उसको नजर राई नोन द्वारा उतारी जाती थी अर्थात ऐसी व्यवस्था होती थी, कि अंधविश्वासों के चलते दूसरों की बुरी नजर न लग जाए।

देखि सोभ प्रथिराज त्रिय बारत राई नोन।[69]

इसी प्रकार समकालीन साहित्यों में विवाह के अवसर पर मंगल गान व परिहास गान गाए जाने का भी उल्लेख मिलता है।[70] भांवरों के समय वर और वधु को पटा पर बैठाया जाता था।[71]

गणेश पूजन, कलश पूजा, गांठ जोड़ना, पाणि-ग्रहण अथवा हथलेवा के कार्य सम्पन्न किये जाते थे तथा पट ग्रंथि बांधी जाती थी।

---

§68§ पृ० रा० § उदयपुर प्रकाशन§ पृ० 367-368 §पद्मावती समय§ छन्द 37, पृ० रा० का० प्र० पृ० 640 छन्द 69

§69§ पूर्ववत पृ० 313 § इच्छिनी विवाह § छन्द 47

§70§ पूर्ववत पृ० 315 § इच्छिनी विवाह § छन्द 51

§71§ पृ० रा० § का० प्र० § पृ० 555 , छन्द 82

पटों पिट्टि पट गांठ गुहि , पूजे प्रथम गनेस ।

द्रुत कुलवारि विचारि करि, ब्याहो बाम नरेस।[72]

पृथ्वीराज रासों के वैवाहिक स्थलों से यह विवरण प्राप्त होता है कि भावरों के समय विभिन्न देवी-देवताओं, की कुल गुरूओं की पूजा की जाती थी और तभी कन्या बायीं ओर आकर बैठती थी ।

द्रव कुल वारि विचार कर। ब्याहो बाँम नरेस ।

ग्रहन पूजि ग्रह देव पुजि । पूजि अगिन दुंज देव ।

साषोचार उचार धुनि । प्रसन भए नृप देव ।

चन्दसूर वहाँ सखि दिय । बन्हे बसन बुध गह ।

प्रोहित पुर उपदेश करि । बाँम अंग तब आई ।[73]

- -

(72) पृ० रा० (उदयपुर प्रकाशन) पृ० 315 (इच्छिनी विवाह) , छन्द 52 पृ० 348 (पुडीर दाहिनी विवाह) छन्द 5, पृ० 367-369 (पदमावती समय) छन्द 38 तथा बीसलदेव रासो पूर्वोद्धृत पृ० 100 , छन्द 18 एवं पृ० रा० (का०प्र०) पृ०555 छन्द छन्द 82 तथा पृ० 2080 छन्द 200 तथा पृ० 135, छन्द 683 तथा पृ० 365 छन्द 178 तथा पृ० 1341 छन्द 27 ।

(73) पृ० रा० (का० प्र०) पृ० 555 छन्द 82-84 पृ० रा० (उ० प्र०) पृ० 316 (इच्छिनी विवाह) छन्द 54

परमाल रासो मे सिद्धराम के द्वारा ब्रह्मा को भांवरे पढ़ने को समय चंदेल को प्रशस्ति का पाठ किया जाता है ।[74] " कन्यादान" को प्रथा का उल्लेख इच्छिनो विवाह के अवसर पर मिलता है। जिसमें इच्छिनो को मां और पिता दोनो हो आपस में ग्रन्थि-बन्धन करते हुए कन्यादान करते है ।

अब्ब पीत पट गंठि त्रिय । विनय जोरि कर कीन ।

इह कन्या नृप सोम सुत । दासपन पन दोन ।[75]

इस प्रकार कन्या दान के समय उसकन्या के माता-पिता द्वारा गठ-बंधन कर रस्म पूर्ण को जातो थी -

समकालोन साहित्यिक कृतियों में अनेक स्थलों पर दहेज के लिए प्रस्तुत दास - दासियों, पण्डित , हाथो, घोड़े, रथ, होरे आभूषण एवं वस्त्र आदि का विवरण प्राप्त होता है ।[76] अर्थात दहेज को प्रथा उस समय स्थापित हो चुको थो सभो लोग अपनो पुत्रियों के विवाह के अवसर पर

---

§74§ प० रा० § का० प्र० § खण्ड 15 , छन्द 165 ।

§75§ पृ० रा० § का० प्र० § पृ० 555 , छन्द 86 ।

§76§ पूर्ववत पृ० 661 , छन्द 156 तथा प० रा० § का० प्र० § खण्ड 15, छन्द 189 चांदायन पूर्वोद्धृत पृ० 40 पद 42 बोसल देव रासो पूर्वोद्धृत पृ० 101 -104 छन्द 19-22

बारात वापसी के समय बन्दीजनों आदि को विभिन्न वस्तुयें भेंट की जाती थीं ।[77] बेटी की विदाई की समय कन्या को माँ के द्वारा पति धर्म की शिक्षा देने का उल्लेख पृथ्वीराज रासो में मिलता है ।

मात पुत्रि परठिय सुमति । विविध अनेक विन यान ।
पतिव्रत सेवा ग्रंथ धरम । इहै तन्त मन्ति ठान ।
पति सुप्पै + सुप्पै जनम । पति बचै बेचाई ।
इहै सीख हम मन धरो । ज्यों सुहाग समवाइ ।[78] वधू को लेकर

बारात वापस घर पहुँचने पर मंगल गान द्वारा स्वागत होता था तथा गृह प्रवेश कराया जाता था ।

बंदि लियौ बरनी सुबर, त्रिया हेत लजिगांन ।
मानो वेसंध - सुन्दरी चलत समप्पत दांन ।[79]

---

(77) पृ0 रा0 (का0 प्र0) पृ0 561, छन्द 128 तथा पृ0 575 छन्द 16 तथा पृ0 1027 छन्द 70।

(78) पूर्ववत पृ0 1026, छन्द 68-69 ।

(79) पृ0 रा0 (उ0 प्र0) पृ0 324-325 (इंच्छिनी विवाह) छन्द 77-79

वैवाहिक कार्य-कलापों से सम्बन्धित अनेकानेक आचार-विचार तत्कालीन साहित्य में संग्रहित है। जिनमें बारात की वापसी पर वर और वधू का साज-सज्जा सहित आदर सत्कार करना कुल देवताओं की पूजा अर्चना करना, बंधुओं को गृहस्थी की शिक्षा देना आदि प्रथायें गण्यमान है ।[80]

विवाह के उपरान्त एक साल बाद गौना किया जाता था। पृथ्वीराज रासो में शिशु पृथ्वीराज के जन्म के बाद उनकी माता का गौना करवा कर लाने का वर्णन हमें प्राप्त होता है ।

करि औना उछाह किय चलिय राज अजमेर ।
सहस बजि है सुभर बर सन्त सखि मीन मेर ।[81]

तत्कालीन समाज में स्वयंवर आदि के माध्यम से विवाह संस्कार होने का भी उल्लेख मिलता है।[82] वस्तुतः यह विवाह का एक सरलीकृत रूप था, जिससे आसानी व कम अवधि में यह कार्य सम्पन्न हो सकता था । पृथ्वीराज रासो से

---

(80) पृ0 रा0 (का0 प्र0) पृ0 1266, छन्द 57 तथा पृ0 1266 छन्द 59 तथा 62-63 तथा पृ0 1225 छन्द 62 तथा पृ0 1267 छन्द 64-65-67 -68 तथा पृ0 1268 छन्द 76 से पृ0 1269 छन्द 79 पृ0 556 , छन्द 98 पृ0 557 छन्द 100 तथा पृ0 558 छन्द 102 तथा परमाल रासो (का0 प्र0) खण्ड 15 , छन्द 180 ।

(81) पृ0 रा0 (उ0 प्र0) पृ0 23 (आदि कथा) छन्द 48 ।

(82) डा0 राजबली पाण्डे, हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास भाग 1 पृ0 120

ज्ञात होता है कि तात्कालीन राजा अपनी पुत्रियों के विवाहार्थ स्वयंवर प्रथा का आयोजन करते थे। और कन्या जयमाल लेकर सुसज्जित पाण्डाल में विभिन्न राजाओं के बीच जाती थी जिस राजा का गुणगान राजकवि द्वारा होता रहता था कन्या का विवाह उसी के साथ कर दिया जाता था । जिसे वह जयमाल पहनाती थी ।

समकालीन हिन्दी साहित्य में हमें उदाहरण मिलते हैं जिनसे प्रकट होता है कि हमारे अध्ययन काल में विवाह के एक अन्य ढंग का भी पता चलता है कन्याओं के अपहरण की विशेष प्रथा प्रचलित थी , इस प्रथा में पूर्व अनुराग प्रेम-सन्देश अथवा शुक , हंस, नट भाट आदि के द्वारा गुणगान करने पर या चित्रमात्र देखकर उत्पन्न होता था। इस प्रकार का प्रेमांकुर शशिव्रता पदमावती तथा संयोगिता में दिखाई पड़ता है ।[84]

पृथ्वीराज रासो में इस प्रकार का अपहरण पद्मावती शशिव्रता संयोगिता का हुआ था। इस प्रकार के विवाह को गान्धर्व विवाह कहा जाता था ।[85]

- -

§83§ पृ० रा० § का० प्र० § पृ० 1566, छन्द 12-14-

§84§ पृ० रा० § का० प्र ० § पृ० 761-763-786 ।

§85§ पूर्ववत पृ० 1754 , छन्द 1202-1205 तथा पृ० 638 छन्द 46-48 तथा पृ० 17-34 छन्द 1058 तथा पृ० 1985 छन्द 2458 ।

मृत्यु से सम्बन्धित :-

मृत्यु परान्त कर्म को अंत्येष्टि कहा जाता है तथा तेरहवीं चौदवीं शताब्दियों के साहित्यिक वर्णनों में विशेषतया हिन्दुओं में इसका बहुत अधिक महत्व था क्यों कि वे ईहो लोग से अधिक उह लोक के विषय में चिंतित रहते थे।[86] हिन्दू धर्म के अनुसार वैदिक नियमों के आधार पर प्रत्येक व्यक्ति का दाह संस्कार किया जाता था ।[87] मृत्यु को सूचना समस्त रिश्तेदारों व मित्रों को प्रेषित कर दी जातो थो जो तत्काल उपस्थित होकर अंतिम संस्कार में सम्मिलित होते थे।[88] पार्थिव शरोर को प्राय: बांस द्वारा निर्मित टिक्टो पर दाह संस्कार हेतु ले जाया जाता था ।[89]टिक्टो का का स्वरूप व सजावट व्यक्ति के सामाजिक स्तर व सम्पन्नता पर निर्भर करता था । चिता भो साधारण लकड़ो व चंदन की लकड़ो को व्यक्ति के सामाजिक स्तर के अनुरूप बनवाई जातो थो ।[90]

---

§86§ राजबलो पाण्डे, पृ0 पृ0 407 , हेरम्ब चतुर्वेदो पूर्वोद्धृत पृ0 317

§87§ राजबलो पाण्डेय पृ0 पृ0 443, हेरम्ब चतुर्वेदो पृ0 317

§88§ मृगावतो पृ0 364 छन्द 421 तथा हेरम्ब चतुर्वेदो पृ0 319 कबीर संतबानो संग्रह पृ0 7

§89§ वहो

§90§ मृगावतो पृ0 366 छन्द 423, हेरम्ब चतुर्वेदो पृ0 पृ0 320-321

पिण्ड आदि संस्कारों के पश्चात चिता को या मृत व्यक्ति को मुखाग्नि दी जाती थी।[91] इसके पश्चात चिता ठंडी हो जाने के बाद चार से दस दिन के मध्य अस्थियों को एकत्रित किया जाता था। इसे संचयन कहते थे।[92] तत्पश्चात ग्यारहवीं में शुद्धि तथा तेरहवी में त्रयोदश: अथवा तेरही के कर्म सम्पन्न होते थे।[93] इसी प्रकार मृत्यु के पश्चात प्रतिवर्ष उसी तिथि पर तथा इस कर्म हेतु निमित्व विशेष अवसर जिसे पितृ पक्ष कहते थे उसके दौरान श्राद्ध का आयोजन होता था।[94] अबुल-फजल श्राद्ध का वर्णन करते समय उसे मृत व्यक्ति के नाम से दिया गया दान कहता है तथा उसके अनुसार यह मृत्यु की वार्षिकी पर आयोजित किया जाता था।[95]

समकालीन साहित्यिक कृतियों में अन्त्येष्टि सम्बन्धी विविध विवरण प्राप्त होते हैं। सती नारी और शौर्य पूर्ण पुरूष के पर्यवसानं पर मंगल कार्य करना अभीष्ट बताया गया है।[96]

परमाल रासो में ब्रह्म रन्ध्र के द्वारा प्राणत्याग (मृत्यु) होने पर हरिपुर (स्वर्ग) की प्राप्ति का विश्वास व्यक्त किया गया है

---

(91) कबीर ग्रंथावली पृ0 223 छन्द 2 हेरम्ब चतुर्वेदी पृ0 पृ0 321 ।

(92) अल्बेरूनी (सचाऊ) 2, पा0 169 तथा हेरम्ब चतुर्वेदी पृ पृ0 324 ।

(94) हेरम्ब चतुर्वेदी पृ0 पृ0 325

(93) सचाऊ 2, प0 169 तथा हेरम्ब चतुर्वेदी पृ0 पृ0 0 324-325

(95) आइने अकबरी, तृतीय भाग पृ0307-308, पी0एन0चोपड़ा पृ0 199तथा 217
तथा हेरम्ब चतुर्वेदी पृ0 325

(96) प0 रा0 खण्ड 2 छन्द 69 तथा पृ0 रा0 उ0 प्र0 भाग 3 छन्द 88

रातिनन स्यौ हरिवर गयव, ब्रह्मरन्ध्र तजि प्राप्त ।[97]

इसो प्रकार से यदि कोई वीर रण क्षेत्र में प्राणोत्सर्ग करता था तब उसके मृत्यु (मरण) पर शोक व्यक्त करना श्लाघ्य नहीं माना जाता था । पृथ्वीराज रासो के अन्तर्गत पृथ्वीराज चौहान के पिता की युद्ध भूमि में मृत्यु होने पर उन्हे शोक मानने से विरत किया जाता है :

करत दुख चहुआन बरजि प्रम्मार स्यंध तह ।
आदि ध्रम्म छत्रीनि , करेंण। संताप समर ग्रह ।[98]

इसो प्रकार से युद्ध के दौरान जिन सामन्तों के शरीर का अन्त हो गया होता उनके शरीर को जला कर दाग दिया जाता था अथवा उनका दाह कर्म कर दिया जाता था ।

भए सुभट जे अंत तन , दाघ दिद्ध तन ताई ।[99]

इसी प्रकार से युद्ध में भी मारे गये वीर पुरुषों का भी अंतिम संस्कार विधि पूर्वक किया जाता था ।

---

(97) प० रा० (का० प्र०) खण्ड 2 , छन्द 69 ।

(98) पृ० रा० (उ० प्र०) भाग 3 , छन्द 89 ।

(99) पृ० रा० (उ० प्र०) भाग । पृ० ।9। छन्द 39

पिता की मृत्यु के पश्चात महाराज पृथ्वीराज को बारह दिन तक भूमिशयन करते हुए दिखाया गया है ।[100] वह एक बार भोजन ग्रहण करते थे तथा सांसारिक भोग विलास की वस्तुओं से निर्लिप्त रहते थे।[101]

इसी प्रकार से महाराज सोमेश्वर की मृत्यु के उपरान्त षोडश दान किया गया था ।

सुन्यौ राज प्रिथराज । भूमि सिज्जा अवधारिय ।
तात काज तिन । दान षोडस विस्तारियौ ।[102]

समकालीन साहित्यिकरचनाओं में सती प्रथा का भी उल्लेख मिलता है। कैमास की मृत्यु पर कैमास की पत्नी सती होने का विवरण मिलता है ।[103] रावन समर विक्रम की मृत्यु हो जाने पाने पर पृथा कुमारी और पृथ्वीराज के साथ उसकी दसों रानियाँ अपने पति के साथ सती हो गई ।[104] इसी प्रकार युद्ध में मारे गये वीरों की क्षत्राणियाँ अपने-अपने पतियों के साथ सती हो गई थीं ।[105]

---

(100) पृ० रा० (क० प्र०) पृ० 1149, छन्द 123

(101) पूर्ववत

(102) पृ० रा० (का० प्र०) पृ० 1147 छन्द 122 ।

(103) पृ० रा० (उ० प्र०) भाग 3 पृ० 491 छन्द 651

(104) पृ० रा० (उ० प्र०) भाग 4 पृ० 1156-1157 , छन्द 398-399

(105) पूर्ववत पृ० 1157 छन्द 4001

परमाल रासो मे भी महाराज परमाल की मां सोमवती का अपने पाँच वर्षीय पुत्र को छोड़कर सती हो जाने का उल्लेख मिलता है ।[106]

तात्कालीन भारतीय समाज में मुसलमानों में भी आंशिक रूप से सती प्रथा के उल्लेख मिलते है ।[107] समकालीन साहित्य में चित्रलेखा नामक वेश्या का मीर हुसैन के साथ कब्र में दफन हो जाने का विवरण मिलता है । [108] अर्थात मृत पति के कब्र में जीवित ही प्रवेश कर जाती है ।

इब्नबतूता के अनुसार- एक निचली जगह में आग जला दी जाती थी और उसमें कुंजुद तेल अर्थात शीशम के पेड़ का तेल डाल दिया जाता था ताकि आग की लपटें और भयानक रूप से भड़क उठे। सती हो रही स्त्री उस चिता में कूद जाती है तथा पास खड़े व्यक्तियों के द्वारा उस पर लकड़ी तथा बल्ले रख दिये जाते जिससे वह सती स्त्री हिल-डुल न सके।[109]

---

(106) प0 रा0 (का0 प्र0) खण्ड 9 छन्द 42

(107) डा0 सत्यकेतु विद्यालंकार भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास पृ0 434

(108) पृ0 रा0 (उ0 प्र0) भाग -1 , पृ0 269 छन्द 71

(109) इब्नबतूता रेहला , पृ0 22-23 , बायजेज डी इब्नबतूता भाग -3 पृ0 136-141

बोसल देव को मृत्यु पर उसको पटरानो के सतो होने का भो विवरण प्राप्त होता है ।

राजन मरन उप्पनौ , सब्ब जग सोच उपन्नो
पट रागिनि पावार , निक.सी तबहो सत किन्नो।[110]

समकालोन साहित्यिक कृतियों में सतो होने को कार्य विधि का भो उल्लेख मिलता है । [111]

अंधविश्वास :-

विवेच्च-कालोन समाज में अनेक प्रकार के शकुन और अपशकुन आदि का विश्वास किया जाता था , जिसमें यह मान्यता थो कि उत्तम श्रेणो (कोटि)के शकुन सफलता के सूचक माने जाते थे। [112] और अधम कोटि के शकुन पराभाव को द्योतक होते थे।[113] किसो भो प्रकार के अपशकुन होने पर कुछ देर रूक जाने का विवरण मिलता है ।

---

§110§ चंदवरदायो और उनका काव्य विपिन बिहारो त्रिवेदो पृ0 166

§111§ पृ0 रा0 § का0 प्र0 § पृ0 171 , छन्द 1623 तथा प0 रा0 खण्ड 37 छन्द 69

§112§ पृ0 रा0 §का0 प्र0§ पृ0 1601 छन्द 1601

§113§ पृ0 रा0 §उ0 प्र0 § भाग 4 पृ0 610 छन्द 109

चल्यौ राज पृथिराज, उभय ईखन तथ्य विलंबे।[114]

इसी प्रकार अपशकुन सूचक पशु-पक्षी के सामने आ जाने पर उसका वध कर दिया जाता था।[115]

पृथ्वीराज चौहान के कन्नौज गमन के अवसर पर उल्लू (पक्षी) बार-बार बोलने लगा। पृथ्वीराज के द्वारा उस पक्षी को मार दिया गया।[116]

इस प्रकार की अशुभ (भयप्रद) घटना पर शकुन विद्या जानने वालो के द्वारा विचार किया जाता था तथा उसका फल प्रश्नकर्ता को बताया जाता था।[117] इस समय यह प्रचलित था, कि उत्तम कोटि का शकुन होने पर गांठ बाधनी चाहिए।[118] यदि महिलाओं का बाया अंग फड़कता था तो इसे उत्तम माना जाता था :

हेमराज की सुता कहे, सगुन भये अधिकाय।
बायां दृग फरक्त अति, आइ गये निशिराय।[119]

---

(114) पृ० रा० (उ० प्र०) भाग 4 पृ० 610, छन्द 105

(115) पूर्ववत पृ० 609 छन्द 103, पृ० 594 छन्द 69

(116) पूर्ववत पृ० 594-595 छन्द 69-70

(117) पूर्ववत पृ० 596, छन्द 71

(118) प० रा० (का० प्र०) खण्ड 4 छन्द 93

(119) पृ० रा० (का० प्र०) खण्ड 1, छन्द 129

समकालीन साहित्यिक कृतियों के अन्तर्गत कतिपय मानव जीवन से सम्बन्धित कार्य-कलाप भी अशुभ समझे जाते थे, जिनमें दो रासभ, कुलाल बिना जटायें बांधे हुये योगी, बिना तिलक ब्राह्मण रोती हुई विधवा स्त्री का दर्शन आदि सम्मिलित था

रासभ उभय कुलाल करि, सिर बंधनी-स भीर ।
नाम दिया संमुह मिलिय, अवसि होइ प्रभु रारि ।
अतिलक बंभन स्याम असु, जोगी हीन विभुक्त ।
समुह राज परखिये, गमन वरज्जै नित्त । [120]

इसी प्रकार से बोझा लिया कुम्हार बायें तरफ जाए तथा श्याम वर्ण बिना तिलक के ब्राह्मण तथा विभूति हीन योगी यदि सामने मिल जाते थे तो अमंगल कारक माना जाता था। इस प्रकार के अपशकुन होने पर गमन करना सर्वथा वर्जित था।

इसी प्रकार प्रकृति के विभिन्न दृश्य शकुन अथवा अपशकुन के द्योतक माने जाते थे। समकालीन साहित्यिक कृतियां आदि में स्वच्छ आसमान , सूर्योदय , शीतल वायु का बहना आदि उत्तम फलदायक माने जाते थे। [121]

- -

§120§ पृ0 रा0 § उ0 प्र0 § भाग 4 पृ0 606, छन्द 96-97

§121§ पृ0 रा0 § का0 प्र0 § पृ0 722 , छन्द 296

और यदि उल्कापात हो सूरज मन्द हो , पेड़ की शाखा टूटे, अंकुश गिरे, जंगल में आग लग जाय अथवा दीवाल धस जाए तो अमंगलकारी या अनिष्टकारी समझा जाता था।[122] पशु-पक्षी भी शकुन और अपशकुन के प्रतीक थे। श्याम चिड़िया अत्यन्त शुभ समझी जाती थी।[123] इसी प्रकार तीतर, नाहर , सारस,चील, खर, चातक, उल्लू, तोता, बन्दर, बकरा, बन्दर, नेवला, दहाड़ता शेर , मृग समूह शृगाली आदि शुभकारी समझे जाते थे।[124] परमाल रासो के अन्तर्गत मोर, वाराह सांड़, बकुल चकवा आदि उत्तम परिणाम के प्रतीक माने गये है ।[125]

इस काल में स्वप्न फल जानने का उल्लेख भी समकालीन साहित्य में मिलता है। पृथ्वीराज चौहान के द्वारा बचपन में स्वप्न देखना कि एक योगिनी ने उनके ललाट पर स्वयं अपने हाथों से दिल्ली के राज्य का तिलक किया है का फल जानने के लिए उनकी माता द्वारा ज्योतिषी को बुलवाया गया था ।[126]

---

§122§ पृ0 रा0 §का0 प्र0 § खण्ड 19, छन्द 79-83

§123§ पृ0 रा0 §का0 प्र0 § पृ0 257 तथा बीसलदेव पृ0

§124§ पूर्ववत पृ0 1602 , छन्द 167-168 बीसलदेव, पृ0 149 छन्द 66

§125§ प0 रा0 § का0 प्र0 § खण्ड 4 , छन्द 96-99

§126§ पृ0 रा0 § उ0 प्र0 § प्रथम भाग , पृ0 81-84 , छन्द 2-11

इसी प्रकार से भूमि देवी के द्वारा पृथ्वीराज को स्वप्न में घनेव जंगल में अगणित धन होने का संदेश दिया था ।[127]

पृथ्वीराज रासो में पृथ्वीराज के जंगल में शिकार पर जाते समय राह में एक शकुन देखा उसे देखकर पृथ्वीराज व उसके साथी चकित हो गये। उन्होंने देखा कि एक सर्प जिसके फन पर मणि थी वह दीमक युक्त बिल से बाहर एक दो हाथ ऊँचा उठकर बैठा था। उस पर काली चिड़िया नृत्य कर रही थी। इस शकुन का विचार ज्योतिषी के द्वारा करवाया जाता है।[128]

अनिष्टकारी स्वप्न होने पर उसका समाधान किया जाता था । इस प्रकार के समाधान के रूप में हमें एक सहस्त्र घड़े खीर से भरवा कर सूर्य और चन्द्रमा को अर्घ्य दिया जाने और दसों दिशाओंको एक महिष को बलि दी जाने तथा बहुत सा दान दिये जाने का उल्लेख मिलता है।[129] चलते समय यदि राह में किसी स्त्री के सर पर जल का घड़ा दिखाई देता है तो शुभ माना जाता था[130] साहित्य में इसी प्रकार अंधविश्वास पर आधारित शकुन-अपशकुन के वर्णन व उनके फल इसी प्रकार चन्दबरदाई द्वारा शुभ शकुनों का वर्णन पृथ्वीराज

---

(127) पृ0 रा0 (उ0 प्र0) पृ0 209 , छन्द 39 भाग -1

(128) पूर्ववत , पृ0 202-255, छन्द 22-29

(129) पूर्ववत , भाग 4 , पृ0 968 छन्द 53

(130) पूर्ववत , पृ0 959 , छन्द 34

को बताया गया तथा उन शकुनों का फल भी बताया गया ।[131] उदाहरण के लिए निम्न का अध्ययन दिलचस्प होगा
इसी प्रकार से हमे समकालीन साहित्य में जालन्धर रानी स्वप्नावस्था में राजा पृथ्वीराज के समक्ष आई और राजा से कांगुर दुर्ग को विजय करने को कहा।[132] इसी प्रकार जब उड़ीसा की यात्रा करते है तो उन्हें शुभ शकुन होते है बाए हाथ की ओर श्यामा पक्षी तथा श्रृंगालो का जिसे शुभ मानते थे।[133] इसी प्रकार इसी तरफ (बाएं) सिंह व श्रृंगाल की उपस्थिति सारस का बोलना आदि शुभ संकेत माने जाते थे।[134]

समकालीन साहित्य में बीसलदेव के अजमेर आगमन पर राजमती के अंग फड़कते है- जो कि शुभ-शकुन जान पड़ते है।

---

(131) पूर्वक्त , पृ० 607-608, छन्द 98-102

(132) पृ० रा० (का० प्र०) पृ० 257

(133) पृ० रा० (का० प्र०) पृ० 257

(134) बीसलदेव रासो पूर्वोद्धृत पृ० 148. छन्द 66

उणरा अहर फड़कइ ल्हलहइ वांह
कइ लेष मोकलइ कइ मिलइ नाह
अंग फड़ुकइ तन लवइ । [135]

इसी प्रकार पृथ्वीराज में हमें स्त्रियाँ बर पृथ्वीराज की शोभा को देखकर राई-नोन उतारती है, क्यों कि ऐसी मान्यता थी कि बुरी नजर से ऐसे ही रक्षा संभव हो सकती है ।

देखि सोभ प्रथिराज त्रिय, बारत राइ नोन । [136]

इसी प्रकार वर को कहीं कु दृष्टि न लग जाए। इसीलिए उसकी नजर प्रायः उतारी जाती थी। इसी प्रकार चंदायन में रूपचंद के चलते समय अशुभ शकुन हुए, सूखे वृक्ष पर कौवे चिल्ला रहे थे, भस्म चढ़ाये एक योगी चला आ रहा था, श्रृंगाली पूर्व दिशा में मुंह किए रो रही थी। [137]

---

(135) वही, पृ० 197-198 , छन्द 114

(136) पृ० रा० (उ० प्र०) भाग 1 ६ पृ० 313 छन्द 47

(137) मुल्ला दाऊद कृत चंदायन, 101 /1-3 तथा 101 /5-7-,130 14-5 एवं

वस्त्राभूषण व श्रृंगार - प्रसाधन

(क) वस्त्राभूषण

(ख) श्रृंगार- प्रसाधन ।

8क8 वस्त्राभूषण

वस्त्र:-

वस्त्र का प्रयोग मानव का सभ्य बनने की ओर एक महत्वपूर्ण चरण कहा जा सकता है । इस दिशा में भारत वर्ष का योग गौरव -मय रहा है। यहाँ पर सब प्रकार के शीत उष्ण और शीतोष्ण प्रदेश होने के कारण भिन्न-भिन्न स्थानों में अत्यन्त प्राचीन काल से भिन्न-भिन्न प्रकार के वस्त्रों का प्रयोग किया जाता रहा है ।[1]

ये वस्त्र छाल रेशों, कपास, कीट-कोष तथा ऊन जैसे तत्वों से बनाए 8 निर्मित 8 किये जाते थे। उच्च वर्ग ने इन्हें क्रमशः क्षौम कर्पास , कौशेय , और रांकव नामों से पुकारा है ।[2]

---

818 गौरी शंकर हीरा चन्द्र ओझा, मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, पृ0 42

828 आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद पृ0 90-91

भारत में विभिन्न प्रकार के वस्त्र न केवल तैयार होते थे बल्कि विदेशों में भी भेजे जाते थे। अवलोकित काल में सर्वत्र वस्त्रोत्पादन का कार्य किया जाता था। बंगाल और गुजरात को वस्त्र इस क्षेत्र में विशेष ख्याति प्राप्त थे।3

अवलोकित -काल में वेश-भूषा के प्रयोग में सादगी की अपेक्षा बनाव- श्रृंगार का ही अधिक महत्व था। इस संदर्भ में भी भेद अत्याज्य था जैसे सुल्तान एवं हिन्दू और मुस्लिम जाति के कुलीन वर्ग सुनिर्मित , बहुमूल्य औरभांति-भांति की पोशाके पहनने के आदी थे। जब कि गरीब - वर्ग अपने सामाजिक एवं आर्थिक स्तर के अनुसार वेशभूषा की अनिवार्यता को न्यूनतम स्थिति में रखने को बाध्य थे।

<u>सुल्तान तथा सम्पन्न लोगों की पोशाक</u>:-दिल्ली के सुल्तान आकर्षक एवं सुशोभित पोशाक धारण करते थे। सुल्तान के वैयक्तिक जीवन की

- -

§3§ चंदायन, § डा0 परमेश्वरी लाल§ पृ0 130, चंदायन § दाऊद कृत§ 94/5 तथा डा0 मोती चन्द्र कास्टयम एण्ड टेक्सटाइल इन सल्तनत पीरियड पृ0 54 ।

पोशाक कुलीनों से अधिक अलग नहीं दिखाई देती थी। यदि कोई अन्तर था तो वस्त्र में प्रयोग में लाए गए पदार्थ की कोटि तथा उनके पोशाक परिवर्तन करने की प्रक्रिया और व्यवस्था में था।[4] राजकीय पोशाक को " खिलात - ए- पादशाही कहा जाता था।[5]

- -

(4) के० एम० अशरफ लाईफ एण्ड कण्डीशन्स आफ दि पीपुल आफ हिन्दुस्तान पृ० 175

(5) फिरोज शाह तुगलक, जब गद्दी पर बैठा तो सर्व प्रथम शोक -वस्त्र जामा - ए मातम में प्रगट हुआ और उस पर वह राजकीय पोशाक खिलात ए - पादशाही पहना (देखिए तारीख -ए फिरोजशाही अफीफ, मौल्वी वलायत हुसैनी द्वारा सम्पादित पृ० 47

सुल्तानों तथा कुलीनों की पोशाकों में सामान्यत: कुलाह[6] (सिर का एक परिधान) एवं पयराहन [7] कुरता का समावेश होता था ।

---

(6) टी० एफ० एस० ए० मोल्वी वलायत हुसैन द्वारा सम्पादित पृ० 288 , तथा मियाँ तहा द्वारा निर्मित सिकन्दर लोदी के " कुलाह- ए- आज (हाथी के दाँत का बना हुआ कुलाह) के लिए अब्दुल्लाह लिखित " तारीख- ए - दाउदी , फारसी पाण्डु लिपि सं० 100, कैटलॉग सं० 548, ओ० पी० एस फॉलियो 58 (ए) और 58 (बी) तथा देखिए " तारीख - ए- फरीश्ता भाग 1 बम्बई 1932, पृ० 110 , कुलाह दोज " (निर्मित) के लिए अमीर खुसरो कृत " शीरो -वा-खुसरो पृ० 24 तथा नरपति नाल्ह का बीसलदेव रासो छन्द 11, पृ० 66 ।

(7) सुल्तान फिरोज शाह तुगलक के " पयराहन " के लिए देखिए अफीफ पृ० 146

दिल्ली के सुल्तान एक प्रकार का कसा हुआ घाघरा काबा"[8] पहना करते थे जो कि ऋतु के अनुसार महीन मलमल अथवा ऊन का बना हुआ होता था ।

कभी-कभी वे एक प्रकार का लम्बा लबादा बागा[9] भी धारण करते थे। शीत काल में वे एक बड़ा कोट पहनते थे जिसे दगला[10] कहा जाता था जो कि एक ढीले चोगे की तरह होता था और जो बंधी हुई रूई अथवा अन्य प्रकार के वस्त्रों से परिपूर्ण होता था । मलमल अथवा किसी अन्य प्रकार के कपड़े की जाँघिया का भी प्रयोग किया जाता था ।[11]

---

(8) सुल्तान तथा अमीर - उमरावों द्वारा प्रयुक्त " काबा " के उल्लेख के लिए देखें पृ0 273 तथा तारीख- ए- फिरोज शाही (बर्नी)

(9) पृथ्वीराज रासो, भाग -2 (उ0 प्र0) पृ0 672, दोहा 172

(10) दगला के लिए देखिए तारीख-ए-फिरोजशाही बर्नी पृ0 273

(11) इस्लामिक कल्चर आई0 सी0 भाग 31 हैदराबाद जुलाई, 1957 पृ0 256 ।

सुल्तानों और कुलीनों को एक पृथक वैयक्तिक पोशाक पसन्द थी जिसे " जामा-ए-खाना "[12] कहा जाता था। सुल्तान रात्रि में एक भिन्न शयन-वस्त्र का प्रयोग करते थे जिसे " जामा-ए ख्वाब" कहते थे।[13]

इसके अतिरिक्त वे मोजा [14] तथा सुनिर्मित कूते अथवा " कफ्श " [15] पहनते थे, जिन्हें कुशल उपानत्कार या कफशदोज बनाया करते थे।[16]

---

(12) जामा-ए-खाना के लिए देखिए तारीख -ए-फिरोज (अफीफ) पृ० 101

(13) जामा-ए-ख्वाब (शयन वस्त्र) के लिए देखिए, अहमद यादगार रचित तारीख-ए-शाही एम० हिदायत हुसैन द्वारा सम्पादित पृ० 49

(14) तारीख-ए-फरीश्ता भाग -1, बम्बई 1832 पृ० 133, मोजा-ए-लाल अथवा लाल मोजा के लिए देखिए तारीख-ए- फिरोज शाही अफीफ पृ० 269

(15) तारीख-ए-फिरोज शाही अफीफ पृ० 104 अमीर खुसरो रचित देवल रानी खिज्र खाँ मौलवी रशीद अहमद अन्सारी पृ० 300 ,

(16) अमीर खुसरो की शेरो-वा-खुसरो मौलवी हाजी अली अहमद खाँ द्वारा सम्पादित पृ० 24

इसके अतिरिक्त सुल्तानों, खानों, मलिकों तथा अन्य सैनिक अधिकारियों का सामान्य वस्त्र महीन तार का चोगा और ख्वारिज्म का इस्लामी काबा थे जो शरीर के मध्य (कमर) में बकसुये से बँधे होते थे। वे छोटी पगड़ी जैसी बाँधते जो कि पाँच या छः हाथ " दिरा" [17] से अधिक लम्बी नहीं होती थी। उनमें कुछ सुनहरे धागे से कसीदाकारी की हुई आस्तीन वाले कपड़े पहनते थे तथा कुछ के कपड़ों पर दोनों कन्धों के बीच में कसीदाकारी की हुई होती थी। [19] वे अपने केश की लटों की चोटियाँ उसी प्रकार बनाते थे जिस प्रकार से मिस्र और सीरिया में तुर्की शासन के आरम्भ में वहाँ के लोग अपना केश विन्यास करते थे। अन्तर केवल इतना था कि भारतीय अपनी लटों में रेशमी झब्बे लगाते थे।।

- -

(17) ऐन अरब एकाउन्ट ऑफ इण्डिया इन दि फोरटीन्थ सेन्चुरी ओटो स्पाइस द्वारा अनूदित पृ0 69

(19) वही पृ0 69-70

उनकी कमर सोने और चांदी की पेटी से कसी रहती थी, अपनी तलवार को कमर से लटकाकर नहीं रखते थे। परन्तु जब वे यात्रा[19] पर जाते तो उनकी कमर में तलवार लटकती रहती थी ।

सुल्तान की वेशभूषा के वर्णन में इब्नबतूता लिखता है उसके वस्त्र में रेशम और महीन बुने हुए कपड़ों का समावेश होता है । अपनी कमर में वह एक वस्त्र-रक्षक बाँधता है तथा एक अन्य वस्त्र अपने में लपेटता है।वह पगड़ी बांधता है। जब वह घुड़सवारी करता है तो अँगरखा धारण करता है जिस पर दो वेष्ट "दुपट्टे " रखता है । [20]

- -

§19§ वही पृ0 70

§20§ दि रेहला ऑफ इब्नबतूता " महदी हुसैन " पृ0 191

मुस्लिम कुलीनवर्ग भी अपनी पोशाकों पर व्यय में सुल्तानों से पीछे नहीं रहते थे। वे रेशमी कपड़े अधिक चाव से पहनते थे जब कि इस्लाम में ऐसा करना निषेध है।[21]

अमीर खुसरो कई बार उन महीन और सुन्दर जरीदार रेशमी लबादों का उल्लेख करता है, जिनका प्रयोग हमारे इस युग के मुस्लिम कुलीन वर्ग किया करते थे।[22] वे ऐसे लबादे जिन पर चित्र बने होते थे और जो रेशम के तारों तथा सोने की जरी से अलंकृत होते थे, जामा-ए-सुसविव्वर तथा कुलाह शौक से पहनते थे।[23]

---

(21) मुसलमानों के रेशमी वस्त्र पहनने पर दो पृथक विचारों के लिए देखिए जेड डब्ल्यू भाग 1 सर ई० डेनिसन रोस द्वारा सम्पादित लन्दन 1910 पृ० 354

(22) अमीर खुसरो का हश्त बिहिश्त सं० मौलाना सैयद सुलेमान अशरफ पृ० 126 पुन: पोशिश-ए- अबरेशम (रेशमी लबादे) के लिए देखिए अमीर खुसरो कृत इ-जाज-ए खुसरवी भाग 4 पृ० 274, पुन: हाजेबी एक उत्तम प्रकार का महीन रेशमी कपड़ा के लिए देखिए, उसी लेखक का कुल्लियात-ए-खुसरवी भाग 1 अलीगढ़ 1917 पृ० 155

(23) फीरोज शाह तुगलक अपने फुतूहात में कहता है पूर्व काल के प्राय: सभी कुलीन लोगों के लबादे अविधिवत् रेशमी और स्वर्ण तारों से अलंकृत होते थे। भगवान ने मेरा मार्ग प्रदर्शन किया और मैंने ऐसे सामान्य वस्त्र बनाए जिनके नमूने धार्मिक विधि से अनुमोदित हैं। फुतूहात-ए-फिरोजशाही पृ० 11 तथा कुलाह के लिए पृ० 459-459

ग्रीष्म ऋतु में कभी-कभी सुगन्ध तथा ताजगी के लिए वे "§ कुलीन वर्ग§ खस का कुलाह भी प्रयोग में लाया करते थे ।[24]

आरम्भ में उत्तर पश्चिम के हिन्दुओं को मुस्लिम वेष भूषा से अत्यन्त घृणा थी। सिन्ध के पश्चिम में एक हिन्दू राजा के पराक्रमों का वर्णन करते हुए अलबेरूनी हिन्दू तथा मुस्लिम पोशाक का अन्तर बताता है। वैरयातन पूर्ण हिन्दू जनता का विश्वासघात के दण्ड के रूप में मुस्लिम पोशाक धारण करने को विवश किया। अत्यन्त घृणित दण्ड माना जाता था । [25]

---

§24§ खस के कुलाह के लिए देखिए अमीर खुसरो रचित देवल रानी खिज्रखाँ मौलाना रशीद अहमद अंसारी § सम्पादित § पृ0 300 ।

§25§ अलबेरूनी अपने भाव इस प्रकार व्यक्त करता है- मैंने जब इसके विषय में सुना तो उस विनीत हिन्दू राजा के प्रति बड़ा कृतज्ञ हुआ जिसने हम लोगों का न तो भारतीय करण करने पर जोर दिया न ही हिन्दू वस्त्र तथा रीति-रिवाज ही ग्रहण करने को मजबूर किया- अलबेरूनीज इण्डिया , सचाऊ §1 पृ0 20-21 ।

और भी देखिए जी0 एस0 घुरे का इण्डियन कस्ट्यूम पृ0 118

धीरे-धीरे सम्पन्न हिन्दू वर्ग ज्यों-ज्यों मुस्लिम कुलीन वर्ग के संसर्ग में आने लगे त्यों-त्यों उन्होंने उनकी पोशाकों का अनुकरण करना आरम्भ कर दिया। फिर तो एक हिन्दू को (यदि वह अपना जातीय चिन्ह तिलक[26] एवं कुछ विशेष आभूषण आदि धारण न करता) मुस्लिम कुलीन वर्ग से (पृथक) अलग करना कठिन हो गया था।

सम्पन्न मुस्लिम वर्ग की भाँति हिन्दू कुलीन वर्ग भी काबा[27] पहना करते थे यद्यपि इसमें कुछ भिन्नता होती थी। सम्पन्न हिन्दू वर्ग की सामान्य पोशाक बागा[28] पहने जाने का वर्णन मिलता है।

---

(26) तिलक के लिए देखिए विद्यापति रचित कीर्तिलता साहित्य सदन द्वितीय पल्लव छन्द 18 पृ0 76 तिलक के लिए नरपति नाल्ह का बीसलदेव रासो पृ0 137 पुन: चन्दन के तिलक के लिए देखिए वही ग्रन्थ, छन्द 102 पृ0 143 तिलक लिए चंदायन (डा0 परमेश्वरी लाल) 420/2

(27) काब के लिए देखिए नरपति नाल्ह रचित बीसलदेव रासो हिन्दी परिषद विश्वविद्यालय प्रयाग, छन्द पृ0 66

(28) बागा के लिए देखए चन्दवरदाई कृत पृथ्वीराज रासो, खण्ड2 उ0 पृ0 दोहा 172 पृ0 672

मध्यकालीन हिन्दू समाज में धोती पुरुषों का सामान्य पहनावा था। यह प्राय: पाँच गज लम्बी होती थी। विवाह अवसर पर पहने जाने वाले वस्त्रों के उल्लेख में पूजा के समय धोती पहनने का विवरण समकालीन साहित्य में मिलता है। [29]

हिन्दू वर्ग की सामान्य पोशाक में चादर, उत्तरी अथवा ओढ़ारन [30] आदि का स्थान था।

अंगरखा [31] मध्यकालीन इतिहासकारों द्वारा वर्णित कबा जैसा ही धार्य वस्त्र होता था जो विविध तत्वों से बनाया जाता था। प्राय: यह घुटनों तक अथवा इससे भी अधिक लम्बा होता था। इसको पहन कर डोरों से बाँधा जाता था। हिन्दू इसे बाईं ओर गाँठ देकर बाँधते थे तथा मुस्लिम दाईं ओर नाम से ही पता चलता है कि यह वस्त्र अंगों की रक्षा करता था। युद्ध में तार तार का अंगरखा विशेष उपयोगी रहता था।

---

(29) धोती का उल्लेख अनेकों समकालीन साहित्यिक स्रोतों में मिलता है :- चन्दायन दाउद कृत 420/4 तथा मु0 रा0,उ0 प्र0,समय 19 , छन्द 26 तथा वही समय 61 , 200,डा0 प्राणनाथ चोपड़ा का सम आसपेक्ट्स आफ सोसायटी एण्ड कल्चर, पृ 0 2

(30) अलबेरूनी इसे " सिदर" के नाम से उल्लेख करता है। देखिए अलबेरूनीज इण्डिया (सचाऊ) 1, पृ0 180

(31) चंदायन 121/2 तथा डा0 प्राण नाथ चोपड़ा का सम आस्पेक्ट्स आफ सोसायटी एण्ड कल्चर पृ0 6,

अलबेरूनी हिन्दुओं द्वारा प्रयोग में किये जाने वाले पाजामें के विषय में कहता है कि इस पजामें में इतना अधिक अस्तर लगा होता था कि जिससे कि चादरें और जीन बनाया जा सकता था। तथा ये इतने बड़े होते थे कि पहनने वालों के पैर भी नहीं दीख पड़ते थे। जिस डोरे से यह बँधा होता था वह पीछे की ओर होता था । [32]

सम्पन्न हिन्दू-वर्ग कश्मीर के बने कुछ उत्कृष्ट प्रकार के ऊनी वस्त्र पहना करते थे जो कि विभिन्न आकर्षक रंगों के होते थे ।[33]

---

(32) अलबेरूनी के वर्णन के अनुसार- यह एक विशाल पजामा की भाँति शरीर के निचले भाग में पहनने का वस्त्र रहा होगा। विद्वान यात्री ने इस बात को स्वीकार कर लिया था, विस्तीर्ण धोती, जो कि " काछ" शैली से पहनी जाती थी पजामा कहकर वर्णन करने के लिए प्रेरित कर दिया, अलबेरूनीज इण्डिया (सचाऊ) पृ0 120 और देखिए जी0 एस0 घूरे का इण्डियन कास्ट्यूम पृ0 119

(33) दि रेहला ऑफ इब्नबतूता, महदी हुसैन (अनुवाद) पृ0 151

पुरूषों के सिर पर धारण किया जाने वाले इस निबन्धनीय परिधान का प्रयोग भारत वर्ष में चिरपरिचित था। मध्यकालीन भारत में नंगे सिर वाले व्यक्ति का कोई सम्मान नहीं था। लोग घर से निकलते समय, अनिवार्य रूप से टोपी या पगड़ी धारण करते थे।[34] गर्मी और सर्दी के बचाव के लिए भी इनका प्रयोग आवश्यक समझा जाता था।

पगड़ी का प्रचलन, हिन्दू और मुसलमान दोनों में समान रूप से था। अन्तर केवल इतना था कि मुसलमानों की पगड़ियाँ सफेद रंग की होती थी और गोलाई में बांधी जाती थी, जबकि हिन्दू रंगदार सीधी ऊंची और नोकदार पगड़ी बाधते थे।[35] युद्ध के लिए जाते समय भी सिर पर पगड़ी बांधी जाती थी।[36]

---

§34§ डा० प्राण नाथ चोपड़ा, अल्बेरूनी इण्डिया § सचाऊ § । पृ० 180, डा० प्राण नाथ चोपड़ा सम आस्पेक्ट्स आफ सोसायटी एण्ड कल्चर पृ० 48 ~~वही × पृ० × 48~~

§35§ डा० प्राणनाथ चोपड़ा वही पृ० 48

§36§ चंदायन दाउद कृत 121 /2

सम्मकालीन साहित्य में कफनी और पगड़ी[37]

के प्रचलन का उल्लेख मिलता है :

पाग विराजित सीस पर, जरकस जोति निहाय

मानो मेर के सिखर पर, रहचों अहप्पति आय ।[38]

पगड़ियों में दीनार के झिलमिलाने का विवरण भी प्राप्त होता है ।[39] पुरूष वर्ग के परिधान अवसरानुकूल पृथक-पृथक हुआ करते थे। युद्धकाल में कवच [40], शिरस्त्राण ,[41] बख्तर, [42] आदि का प्रयोग किया जाता था ।

---

§37§ पृ0 रा0 § उ0 प्र0 § समय 61 छन्द 65 तथा प0 रा§ का0 प्र0 § खण्ड छंद 143 आदि

§38§ पृ0 रा0 § का0 प्र0 § पृ0 156 छन्द 75 ।

§39§ प0 रा0 § का0 प्र0 § खण्ड 5 छन्द 1431 ।

§40§ पृ0 रा0,(उ0 प्र0)समय 7 , छन्द 32

§41§ पूर्ववत , समय 6 ,छन्द 62 तथा समय 23, छन्द 219

§42§ पूर्ववत समय 7 ,छन्द 32 तथा समय 61 , छन्द 320

पाँव मे पहनने हेतु उत्तम प्रकार के जूते [43] भी प्रयोग में लाए जाते थे।
अतः कुछ सामाजिक इतिहासकार यद्यपि, इस बात से इंकार करते है, फिर भी, इस काल के साहित्य में हमें अनेक उदाहरण व साक्ष्य प्राप्त होते है, जिनके आधार पर हम कह सकते है कि मध्यकाल में जूते व चप्पल आदि का प्रचलन था।[43 (ए)]

जनसाधारण की वेशभूषा:-

जनसाधारण की वेशभूषा कुलीनों से भिन्न थी। वे न्यूनतम वस्त्र धारण करते थे। ग्रीष्म ऋतु में वे एक धोती मात्र से ही सन्तुष्ट रहते थे अथवा अधिकतम तापमान में वे एक सूती लंगोटा [44] ही पहनते थे।

---

(43) जूते का उल्लेख जिसे सामान्यतया पादुका अथवा पानही कहा जाता था समकालीन साहित्य कृतियों में मिलता है यथा-नरपति नाल्ह के बीसलदेव छन्द 97, पृ0 139 में साबरी पानही (जंगली पहाड़ी हिरन के चमड़े से बना जूता का उल्लेख है। और भी पैज्जल(जूता) के लिए विद्यापति की कीर्तिलता साहित्य सदन, चिरगाँव (झांसी) द्वारा प्रकाशित, प्रथम संस्करण 1962, द्वितीय पल्लव छन्द 27 दोहा 169, पृ0 96
(43)(ए) हेरम्ब चतुर्वेदी, पूर्व पृ0 194-196

(44) पृ0 रा0 (उ0 प्र0) समय 21 दोहा 7 पृ0 498 तथा समय 15 छन्द 9,

एक साधारण मुस्लिम के सामान्य पहनावें में पायजामा §इजार§[45] अथवा " लुंगी एक मामूली कमीज और उसके घुटे हुए सिर पर टोपी होती थी।

अमीर खुसरो ने अलाउद्दीन खिलजी के सैनिकों द्वारा पहने जाने वाले वस्त्रों का विवरण इस प्रकार करता है - नरमीना अथवा § कोमल रेशमी कपड़ा§ पशमीना अथवा § ऊनी कपड़ा§ चरमीना, अथवा चमड़े का वस्त्र अहमीना अथवा § लौह लबादा§ तथा रूईना अथवा § कांस्य लबादा§[46] एक फकीर अपनी नाभि को अंगौछा अथवा फुता [47] से ढ़कता था।

- -

§45§ तारीख-ए-फिरोजशाही § बर्नी पृ0 117 अमीर खुसरो का इजाज -ए-खुसरवी, खण्ड 5 पृ0 109.

§46§ अमीर खुसरो कृत खजायनुल फतह , सैयद मोईनुल हक द्वारा सम्पादित पृ0 135

§47§ अब्दुल्ला कृत तारीख - ए- दाऊदी पृ0 51 ।

मुस्लिम सूफियों के वस्त्र में इन पहनावों का समावेश होता था, यथा- जुब्बा[48] (घुटने तक का लाबादा) जामा[49] (कमीज) और दस्तार (पगड़ी) या साधारण प्रकार का कुलाह [50] कुछ समय के पश्चात खिरका[51] अथवा गुदड़ी (काले रंग की रजाई से बना हुआ एक पहनावा जिसे कंथा भी कहते है ।[52] उनके बीच अत्यन्त लोक प्रिय हो गया था। ऊनी कपड़े का सूफ [53] भी मुस्लिम सूफियों में खूब प्रचलित था ।

---

(48) तारीख-ए-फिरोजशाही (अफीफ) पृ0 78-79

(49) अमीर खुसरो कृत अफजल-उल-फवैद पृ0 94

(50) अमीर खुसरो रचित इजाज-ए-खुसरवी, खण्ड 4 पृ0 33 ।

(51) अमीर खुसरो कृत अफजल-उल-फवैद पृ0 92 इजाज-ए-खुसरवी ,भाग 4 पृ0 33 पदावन (डा0 माताप्रसाद गुप्त) पद 164पृ0 160

(53) पश्मीनापोश (अर्थात ऊनी परिधानों वाले सूफी संत) के लिए देखिए अमीर खुसरो का मतला उल अनवार,लखनऊ 1884,पृ0 96 पुन: सूफियों द्वारा प्रयुक्त सूफ (ऊनी वस्त्र के लिए देखिए उसी लेखक की कृति अफजल-उल-फवैद रिजवी प्रेस दिल्ली पृ0 45

अमीर खुसरो सूफियों के बीच प्रचलित चार प्रकार के कोणों वाली टोपियों (ताकिया) का उल्लेख करता है, यथा- एकतुर्की दो तुर्की , सेतुर्की और चहारतुर्की ।[54] कभी-कभी विशेषकर, शीतकाल में सूफीसंत चमड़े के वस्त्र का भी उपयोग करते थे।[55] वे योगी यथा रीति छाला (मृगचर्म) पर बैठ कर आसन लगाते थे। पैरों में पादत्रो (खड़ाऊ) तथा शरीर व मुख में विभूति (राख या खाक) मलते थे।[56]

स्त्रियों की वेष-भूषा (परिधान)

आजकल की भाँति मध्यकाल में भी बढ़िया और सुन्दर वस्त्र स्त्रियों को लालायित करते थे। हर स्त्री अपनी स्थिति सामर्थ्य और अवसर

---

(54) खुसरो कृत अफजल-उल-फवैद पृ० 5

(55) अमीर खुसरो रचित " इजाज-ए-खुसरवी भाग 4, पृ० 29।

(56) चंदायन सं० डा० माता प्रसाद गुप्ता पूर्वो० पद 164 पृ० 160 बीसलदेव रासो (सं० (डा० माता प्रसाद गुप्ता) पद 97, पृ० 179-180

के अनुकूल परिधान धारण करती थीं। देव पूजा के समय स्त्रियाँ बढ़िया कपड़े पहन कर बड़ी सज-धज के साथ जाती थीं । [57]

साड़ी :-

अवलोकित काल की स्त्रियाँ लगभग समान प्रकार के वस्त्र धारण करती थीं। सारी या साड़ी स्त्रियों में प्रचलित परिधान है जिसका पूर्व रूप अधोंशुक नामक का नीचे की ओर पहना जाने वाला निबन्धनीय वस्त्र था। [58] जातकों में साड़ी के लिए सट्ट, साटक संज्ञा आई है । [59]

- -

(57) चंदायन , पूर्व, पद 245-246, पृ0 238-239, चं0 दाउद कृत 251 /2-3

(58) आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी : प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद पृ0 92

(59) डा0 मोतीचन्द्र प्राचीन भारती वेशभूषा पृ0 125

समकालीन साहित्य में सुरंग पटोरी का उल्लेख मिलता है। [60]पटोरी रेशमी साड़ी का नाम है। सामान्यतया इसे पटोर वस्त्र से निर्मित साड़ी माना जा सकता है। अन्यत्र क्षीरोदक साड़ी का भी उल्लेख हमें मिलता है। [61] विभिन्न रंगों की साड़ियाँ पहनी जाती थीं। जैसे लाल, श्वेत, नीली, पीली, एवं काली। [62] हिन्दू स्त्रियों को लाल रंग के प्रति विशेष मोह रहा है। आज भी इसे सौभाग्य का रंग मान कर विवाह आदि अवसरों पर लाल रंग के वस्त्रों का प्रयोग अधिक होता रहता है।

- -

(60) चंदायन दाउद कृत 91/3

(61) पूर्ववत् ——— 163/1

(62) पृ० रा० भाग [उ० प्र०] समय 14 (इच्छिनी विवाह) दोहा 93 पृ० 317 दोहा 38 पृ० 19, नीले वस्त्र पृ० रा०, उ० प्र०, समय 58 छन्द 176 नलिन चोलम (नीली साड़ी) के लिए देखिए जयदेव कृत गीत गोविन्द (विजयचन्द्र मजुमदार द्वारा सम्पादित) पृ० 99

समकालीन साहित्य में सुरंग , सेंदुरिया और भुंगिया साड़ियों मे यही लाल रंग झलकता दिखाई देता है। इसका का प्रयोग हम अन्त्र वस्त्रों में भी पाते है ।[63] मलमल या रेशम की उत्तम प्रकार की साड़ियाँ सम्पन्न वर्ग की स्त्रियों में अत्यधिक लोकप्रिय थीं । [64]

प्राचीन काल से ही वक्ष पर धारण करने वाले विभिन्न परिधानों में अंगिया अथवा कंचुकी का विवरण मिलता है । अंगिया को कंचुकी [65] या ।

- -

(63) चंदायन दाउद कृत,कडवक , 91/3 , 90/1 , 448/1

(64) विद्यापति की पदावली,डा0 मोती चन्द्र कृत " प्राचीन वेश-भूषा भारतीय भण्डार , प्रयाग पृ0 193

(65) नरपति नाल्ह कृत,बीसलदेव रासो,छन्द 72,पृ0 118,वही अन्य छन्द 123,पृ0 162,पीत कंचुकी (पीली कंचुकी) के लिए देखिए पृ0 रा0, भाग। उ0 प्र0,समय 14दो 93, पृ 327

चोली[66] भी कहा जाता था। यह ‍ विभिन्न रंग एवं डिजाइन की होती थी। इसके सामान्यत: दो नमूने होते थे। एक तो वक्ष:स्थल मात्र को ढकती थी तथा दूसरी कमर तक लम्बी होती थी। दूसरी प्रकार की अँगिया ‍ जो कमर तक लम्बी होती थी ‍ अमीर-गरीब दोनों वर्गों में प्रचलित थी ।

कुँदिया चोली और हटांगी प्राचीन काल से ही वक्ष पर धारण किए जाने वाले परिधान हैं । कुँदिया और कसनिया चोली ‍ पताग़ो ‍[67] के ऐसे रूप जान पड़ते हैं जो आगे या पीछे से खुले होते थे तथा उन्हें किसी डोरे की सहायता से बांधा जाता था । कुँदियाँ का डोरा कदाचित फुँदने लगा हो और इसमें आगे की ओर गांठ दी जाती हो। कसनिया के पीछे की ओर से कसे जाने की संभावना है। समकालीन साहित्य में कुँदिया के वर्णन से भी ऐसा ही अर्थ निकलता है ।[68] चोली एक प्राचीन वस्त्र है ।[69] जो साड़ी के साथ पहना जाता था । अंगिया का प्रयोग अन्तर्वस्त्र के रूप में होता था । इसका दूसरा नाम हटांगी भी है ।[70]

‍66‍ चुली के निमित्त देखिए ज्योतिरीश्वर कृत वर्णरत्नाकर कलकत्ता 1940 द्वितीय कल्लोल पृ0 4 चंदायन, पद 260, पृ0 253,

‍67‍ चंदायन ‍ डा0 माता प्रसाद गुप्त‍ पद 267, पृ0 254,

‍68‍ चंदायन दाऊदकृत 94/1

‍69‍ प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद, पृ0 91

‍70‍ चंदायन दाऊद कृत, 267/2,

फुँदिया और चोली आदि वस्त्र प्राय: साड़ी के रंग से मेल खाने वाले होते थे। यदि साड़ी लेहरिया है तो उसकी फुँदिया भी लाल रंग की होती थी।

इस काल में पटोरापटोर लहँगे के सम्बोधन से प्रतीत होता है। समकालीन साहित्य में पटोरा पहन कर चलती स्त्रियों की तुलना लहराते हुए समुद्र से की है।[71] लहँगा की तरह घाघरा [72] भी अत्यन्त लोकप्रिय था। घाघरा मुस्लिम स्त्रियों में अधिक लोकप्रिय था। उच्च वर्गीय हिन्दू स्त्रियाँ जब भी घर से बाहर जाती तो चुनरी [73] (ओढ़नी) या दुपट्टा या अंचर [74] (कपड़े का एक बड़ा सा टुकड़ा जिससे सिर और शरीर का ऊपरी भाग ढका जाता था) का प्रयोग करती थी।

---

(71) चंदायन 251/2

(72) पृ० रा० खण्ड 1 (उ० प्र०) समय 14 दोहा 93, पृ० 327

(73) नरपति नाल्ह कृत बीसलदेव रासो छन्द 27 पृ० 76 चंदायन (सं० डा० माता प्रसाद गुप्त) चुंदरी पद 83 पृ० 91 चुनड़ी बीसलदेव रासो (सं० डा० माता प्रसाद गुप्त) पद 23, पृ० 105 तथा पद 58-59 पृ० 139-14[illegible],

(74) पृ० रा० खण्ड 5 (उ० प्र०) समय 61 दोहा 306 पृ० 110[illegible]

इब्नबतूता मालाबार की स्त्रियों की वेश-भूषा का उल्लेख इस प्रकार करता है " इस नगर तथा समुद्रतट की सभी स्त्रियाँ सिले हुए कपड़े नहीं बल्कि बिनासिले हुए कपड़े (साड़ी) पहनती हैं। इस कपड़े के एक छोर को वे अपनी कमर में लपेटती है तथा दूसरे छोर से अपने माथे तथा अपनी छातियाँ को ढकती है ।[75]

समकालीन साहित्य में चीर (सूती कपड़ा) का भी पर्याप्त विवरण हमें मिलता है ।[76] साधारण वर्ग की स्त्रियाँ फुँदियाँ से मिली हुई सिंदुरी साड़ी मेघवना और कुसियारा पहनती तथा जोगिया चौकड़िया वाला चीर पहनती , सर पर पतली झंगिया ओढ़नी तथा चूंदरी पहनती सावन में कुंसुभी साड़ी एक खण्ड छाप की गुजराती साड़ी पहनती थीं । [77]

---

(75) इब्नबतूता पृ0 199।

(76) चंदायन दाउद कृत 42/3,47/3, 50/5,51/1,87/6,90/3 91/1,94/2,26,173/2,207/3,209/3,224/2,227/2-6,228/3,229/3 इत्यादि

(77) चंदायन डा0 माता प्रसाद गुप्त, पद 83, पृ0 82

मुस्लिम उच्चवर्ग की महिलाएँ मुस्लिम कुलीन वर्ग के पुरुषों को भाँति सुनहरे धागे से कसीदाकारी किए हुए काबा अथवा काढ़ा[79] और कुलाह [79] पहनती थीं। रजिया सुल्ताना ऊँची टोपी (कुलाह) कोट (काबा) और अन्य पुरुष परिधान धारण किया करती थी। वह परदे में ही बाहर आया करती थी।[80] नर्तकियों तथा गायिकाओं (मुतरिब अथवा अहल-ए-तरब) की पोशाक का वर्णन इस प्रकार है, वे दस्तार (पगड़ी) धारण करने की आदी थीं। उनके वस्त्रों पर सोने और चाँदी के धागों से जरी का काम किया होता था। वे चालीस हजार " टंका" तक के लबादे पहनती थीं।[81] नर्तकियाँ एवं गणिकाएँ (मुतरिबात) स्वयं को आकर्षित बनाने के उद्देश्य से रेशम से बने जालीदार वस्त्र पहनती थीं।[82]

---

(78) टी० एफ० एस० (बर्नी) (बी) पृ० 158) अर्थात स्वर्ण धागों से कढ़ाई किया हुआ काबा) का उल्लेख है।

(79) वही ग्रन्थ तारीख-ए-फिरोज शाही (बर्नी) जहाँ एक मुस्लिम द्वारा कुलाह प्रयोग करने का उल्लेख है।

(80) तारीख-ए-फरीश्ता भाग 1 पृ० 119

(81) तारीख-ए-फिरोजशाही (अफीफ) पृ० 363

(82) अमीर खुसरो रचित " नूह सिपिर" पृ० 379 तथा देवलरानी खिज़्रखाँ पृ० 134,

परदा प्रथा का पालन सम्पन्न मुस्लिम महिलाओं में दृढ़ता से होता था। जब भी वे अपने घर से बाहर जाती थीं तो बुर्का धारण कर लेती थी। दूसरी ओर हिन्दू महिलाओं में घूँघट का प्रचलन था जिससे केवल चेहरा ही छिपता था। उत्तरीय भारत में मुसलमानों का जोर अधिक होने से पर्दे एवं घूँघट की प्रथा बड़े घरों में चली थी।[83] गरीब स्त्रियाँ नंगे पाँव ही चलने की आदी थी किन्तु सम्पन्न महिलाएँ सामान्यत: विभिन्न डिजाइन तथा रंग के चमाऊ (चमड़े के) पाई पादत्री) पहना करती थीं।[84]

आभूषण:-

आभूषण वैभव और विलास के प्रतीक है। भारत में इनका प्रचलन चिरकाल से है। स्त्री पुरूष दोनों द्वारा आभूषण धारण किया जाता था। सामान्यत: आभूषणों से हमारा अभिप्राय सोना चाँदी हीरक मौक्तिक आदि से बनने वाले अलंकारों से ही है।

पुरूषों के आभूषण:-

उच्च वर्गीय हिन्दुओं में बहुमूल्य आभूषण के लिए रूचि थी।

---

(83) मुल्लादाऊद कृत चंदायन, 94/3, जायसी लिखित कहरानामा और मसलानामा पृ0 92, नालन्दा विशाल शब्द सागर, पृ0 766, गौरी शंकर हीराचन्द ओझा मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, पृ0 54.

(84) मुल्लादाऊद कृत चंदायन (सम्पादक डा0 माता प्रसाद गुप्त) पद 95 पृ0 83

बिन आभून नर नारि सब। बिन तेज ग्रह भूष ।[85]

समकालीन साहित्य में बच्चों के गले में कठुला पहनाने की प्रथा थी।[86] पुरुषों के आभूषणों में मुद्रिका अथवा अंगूठी[87] हार[88] एवं कुंडल[89] मुक्तामाला[90] (हाँसला)[91] कड़ा[92] मुख्य है। समकालीन साहित्य में पैर में स्वर्ण शृंखला पहनने का उल्लेख मिलता है और इसे पवंग तथा संकरे की संज्ञा दी है ।

---

(85) पृ० रा० (का० प्र०) पृ० 2398, छन्द 11 तथा देखिए अलबेरूनीज इण्डिया (सचाऊ) 1 पृ० 181.

(86) पृ० रा० (का० प्र०) पृ० 151, छन्द 726

(87) अँगूठियों के अनेक उल्लेख समकालीन साहित्यों में प्राप्त है जैसे- मौलाना दाऊद दलमई कृत चंदायन, छन्द 357, पृ० 284, मुंदरी के लिए देखिए जायसी कृत कहरानामा और मसलानामा पृ० 76

(88) तारीख-ए-फरिश्ता, भाग-1, बम्बई 1832, पृ० 41

(89) पृ० रा० (का० प्र०) खण्ड 5, छन्द 54

(90) पृ० रा०, का० प्र०, खण्ड 16, छन्द 12; पृ० रा०, का० प्र०, पृ० 1216, छन्द 117 तथा पृ० रा० खण्ड 5 छन्द 43

(91) हाँसला के लिए देखिए (... का आभूषण) बीसलदेव रासो (डा० माता प्रसाद गुप्त) पद 11, पृ० 93-941

(92) कड़ा के लिए प० रा० का० प्र०, खण्ड 16, छन्द 12

फुनि कन्हा प्रथिराज नृप, थाव पञ्ग परोट्ठे ।
नेहु नहि मन रंझ मन निट्टु पटाइय हट्टु । [93]

वीरों का आभूषण 'तूणीय' समकालीन साहित्य में बताया गया है । [94]
'स्वाति-सुते' नामक कर्णा भूषण पुरुषों के लिए बताया गया है । [95]
स्वर्ण तथा रत्न जड़ित मुकुट [96] का प्रचलन बहुतायत से राजकुमार
एवं उच्चवर्गीय लोगों में था । सुन्दर तलवारें कटारें तथा अन्य हथियार
भी पुरुषों के आभूषण का एक मुख्य अंग थे । [97]

<u>स्त्रियों के आभूषण</u> :- साधारणतया स्त्रियाँ आभूषणों के प्रयोग में पुरुषों
से ज्यादा शौकीन थीं। महिलाएँ इतने अधिक आभूषणों से पूर्ण रहती थीं
कि उनके कुछ आभूषणों के खो जाने का भी ध्यान नहीं रहता था। [98]
बाल्यावस्था से ही भारतीय स्त्रियाँ आभूषण पहनने की आदी हुआ करती

---

(93) पृ० रा० (का० प्र०) पृ० 1216, छन्द 119 तथा पृ० 2032 , छन्द 93

(94) पृ० रासउ (सं० डा० माता प्रसाद गुप्त) 12:13:15

(95) पृ० रा० (का० प्र०) पृ० 156 , छन्द 103

(96) मणिकम प्रति ताजम (रत्न जटित मुकुट) के लिए देखिए पृ० रा० खण्ड2
(उ० प्र०) समय 23, दोहा 169 पृ० 670

(97) नरपति नाल्ह कृत बीसलदेव रासो, छन्द 96, पृ० 139 यहाँ राजपूत
सम्राट बीसलदेव के आभूषण का उल्लेख है यथा-कदोतरक्स चई जडाउ निरवान
(कमर के म्यान में तलवार रखा है ।

(98) पृ० रा० (उ० प्र०) भाग 1, पृ० 314, छन्द 50

थीं। अत्यन्त कम आयु में ही उनके कान छेद दिए जाते थे।[99]

अवलोकित काल में स्त्रियाँ सिर से पाँव तक शरीर के प्रत्येक अंग को विभिन्न प्रकार के आभूषणों से सुसज्जित करती थीं।

शीशफूल[100] [जिसे राजस्थान और गुजरात में राखड़ी राखड़ी अथवा राखड़ी के नाम से पुकारा जाता था] एक लोकप्रिय शीशाभूषण था। यह सोने और मोतियों से बना ऐसा शिराभूषण प्रतीत होता है जिसे माँग पर धारण किया जाता होगा।[101] बोर सिर पर पहना जाने वाला एक अन्य आभूषण है जिसे विशाल शब्द-सागर में इसे "सिर पर पहनने का एक गहना जो गुम्बज के आकार का होता है" कहा गया है।[102] महिलाएँ अपनी माँग को मोतियों से सजाती थीं।

मुकेस मुक्ति संग्रे। ससी सराह दी ल्हे।[103]

---

(99) इब्नबतूता भाग3, पृ71, इसका उल्लेख इस प्रकार करता है। मुस्लिम महिलाओं की पहचान यह है कि उनके कान छिदे नहीं होते है इसके विपरीत हिन्दुओं के कान छिदे हुए होते है।

(100) राजमती की रत्न जड़ित राखड़ी के लिए देखिए नरपति नाल्हकृत बीसलदेव रासो, छन्द 99, पृ0 106, छन्द 23, पृ0 76 रत्न जड़ित शीशफूल के लिए देखिए पृ0 रा0 (उ0 प्र0) समय 9 (भीम स्वप्न कथा) कवित्त 33, पृ0206, पृ0 रा0 (का0 प्र0) पृ0 1976, छन्द 107

(101) मुल्ला दाउद कृत चंदायन, 75/5

(102) विशाल शब्द सागर, पृ0 100,

(103) पृ0 रा0 (का0 प्र0) छन्द 163, पृ0 1085

सम्पन्न वर्ग की महिलाओं में कानों में कुंडल [104] धारण करने का प्रचलन अत्यन्त लोकप्रिय था। स्वर्ण कुंडल कानों का एक चिर प्रचलित गहना है, जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है यह स्वर्ण निर्मित होता था।[105]

वर्णरत्नाकार में खुंटी और कुन्ती नाम के दो कर्णाभूषणों का उल्लेख मिलता है।[106] खुंट उन्हीं में से एक अन्य नाम हो सकता है। खुंट को आकाश तारे के समान कहा गया है।[107] 'कर्णफूल' पुष्प की आकृति का कान का गहना होता है। कान में एक साथ अनेक आभूषण पहनने

---

(104) पृ० रा० (का० प्र०) पृ० 803, छन्द 312, दाउद कृत चंदायन 95/1

(105) इंडियन ज्यूलरी एण्ड ओरनामेन्टस,जमीला ब्रज भूषण, पृ० 179

(106) ज्योतिरीश्वर ठाकुर, वर्ण रत्नाकर , पृ० 4,46

(107) यहाँ इसे 'अरु दुइ खुंट सरग जनु तारा' खुंट के उल्लेख के लिए देखिए मौलाना दाउद दलमई कृत चंदायन छन्द 266, दो 02, पृ० 124, छन्द 9, दो 2, पृ० 131

का रिवाज अब भी कुछ क्षेत्रों में देखा जा सकता है। प्राचीन काल में तो इसका प्रचलन और भी अधिक था।[109] ताटक (जिसे तड़की भी कहा जाता था)[109]

नाक के आभूषण धारण करने का रिवाज भारत में मुसलमानों के आगमन के साथ प्रचलित हुआ प्रतीत होता है। इससे पूर्व के भारतीय सहित्य में इनका कोई उदाहरण का उल्लेख नहीं मिलता।[110] प्रचलन होने के पश्चात भी ये जनसाधारण अथवा राजमहलों में बहुत समय तक लोकप्रिय नहीं हुए थे।[111] वर्णरत्नाकर की आभूषण-सूची में नाक के किसी गहने का नाम नहीं आया।

---

(108) विद्यापति पदावली, पद 163, पृ0 261, गौरी शंकर हीरा चन्द्र ओझा, मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, पृ0 45

(109) 'ताटंक अथवा तड़की' के लिए देखिए पृ0 रा0, खण्ड 4 (उ0 प्र0 (समय 61, कवित्त 8, पृ0 947 इसे त्राटक कहा गया है, मौलाना दाऊद दलमई ने इसे तरवन कहा है चंदायन छन्द 359 दो 2, पृ0 285,

110) सी0 वी0 वैद्य - 'हिस्ट्री आफ मेडुवल इण्डिया' पार्ट-II, पृ0187-189

(111) प्राणनाथ चोपड़ा, सम अस्पेक्ट्स ऑफ सोसायटी एण्ड कल्चर, पृ0 25-26

दाऊद ने जिन नाक-आभूषणों के नामोल्लेख किया वे हैं फूल और नाथ। फूल को कवि ने तिलक फूल जैसा कहा है। उसकी आभा अगस्त्य नक्षत्र जैसी है ।[112] कदाचित यह लौंग कील या नक फूली (छोटी कनी के आकार का एक आभूषण जिसका डंठल नाक से सटा होता था) के आभूषण का ही नामान्तर है ।[113] जिसका एक सिरा नासापुट को बीध कर उसमें फंसा दिया जाता है, दूसरा बाहर पुट पर बना रहता है ।[14] इसकी आकृति खिले फूल के समान होती जो इसके इस विशेष नामकरण का आधार है ।

---

(112) दाऊद कृत चंदायन 90/4 , तथा 95/3

(113) दाऊद दलमई कृत चन्दायन छन्द 95, दो० 3, पृ० 131, प्राण नाथ सन असपेक्टस आफ एण्ड कल्चर पृ० 26 , पृ० 131 यहाँ इसे नाक काई फूली कहा गया है ।

(114) जमिला बृज भूषण- दइंडियन ज्वेलरी एण्ड ओरनामेन्टस , पृ० 180

नाथ या नथ एक चन्द्राकार आभूषण जिसे नाक में बायी ओर पहना जाता था । सोने से बनी होती थी ।[115] एक बड़े से छल्ले में दो मोतियों के मध्य एक लाल पिरोकर इस आभूषण का निर्माण होता था ।[116] समकालीन साहित्य में नाक में नकमोती, नाक फूली पहनने का उल्लेख मिलता है ।[117] बेसर एक अर्द्ध चन्द्राकार आभूषण था जो नाक से लटकता रहता था ।[118] तथा रत्नफूल आदि ।[119]

गले में अनेक प्रकार के आभूषण पहनने के उदाहरण चिर काल से मिलते हैं। उपलब्ध प्राचीन मूर्तियों और चित्रों में से एक भी ऐसा नहीं जहाँ मानवकृति को इन से अलंकृत न दिखाया गया हो।

---

(115) दाउद कृत चंदायन 359/5

(116) जमिला ब्रज भूषण; 'इंडियन ज्वैलरी एण्ड ओरनामेन्टस', पृ0 130

(117) पृ0रा0 (का0 प्र0) पृ0 1954, छन्द 25/6 तथा पृ0 छन्द 59 तथा पृ0 563, छन्द 147 । नाक फूली के लिए देखिए चंदायन (माताप्रसाद गुप्त) पद 84, पृ0 82-93

(118) जायसीकृत कहरानामा और मसलानामा, पृ0 90

(119) रत्नफूल के लिए एक नर्तकी को नाक के गोहर-ए-बोनि (बुलाक) के निमित्त देखिए अमीर-खुसरो रचित नूह सिफीर, पृ0 384 ।

साहित्य में भी इसकी पर्याप्त चर्चा है।[120] गले में पहने जाने वाले विविध आभूषणों में से हार[121] स्त्रियों के कण्ठ में सुसज्जित होता था। इंडियन ज्यूलरी में हार को मोहन माला का पर्याय मान कर सोने के मनकों से बना कण्ठ-आभूषण कहा गया है।[122] यह हार मोतियों तथा स्वर्ण धागों से बना होता था जो कि छाती तक लटकता था। इन ग्रीवाभूषणों में सिंकड़ी[123] गले में पहनने की जंजीर या श्रृंखला का रूप है।

इंडियन ज्युलरी में रत्न-मुक्ता को मिलाकर पिरोये गये एक आभूषण बेर संकलिया का नाम लिया गया है।[124]

---

(120) जीमला ब्रज भूषण; 'इण्डियन ज्यूलरी एण्ड ओरनामेन्टर्स पृ० 64

(121) स्वर्ण मोतियों हीरों तथा सुगन्धित पुष्पों के उल्लेख सन्कालीन साहित्य में मिलता है बीसलदेव रासो(सम्पादक-डा० माताप्रसाद गुप्त तथा श्री अगरचंद नाहटा पद 106 पृ० 188-189 तथा पद 127 पृ० 212-213 तथा दाऊद कृत चन्दायन 266/2 चंदायन(माताप्रसाद गुप्त)पद 34,पृ०82 -83

(122) जीमला ब्रज भूषण:इंडियन ज्यूलरी एण्डओरनामेन्टस, पृ० 181

(123)चंदायन(डा० परमेश्वरी लाल)पृ० 132 तथा मौलानादाऊद कृत चंदायन छन्द 95, दोहा 4, पृ० 131

(124) चंदायन माता प्रसाद गुप्त, पद 34, पृ० 82-83; जीमला ब्रज भूषण:इंडियन ज्यूलरी एण्ड ओरनामेन्टस, पृ० 179

इस काल में सिकड़ी इसी प्रकार का कोई आभूषण रहा होगा।
गले के पास छाती से ऊपर की दोनों धन्वाकार हड्डियों को हंसली
कहते हैं। इन्हीं पर मंडित होने के कारण इस आभूषण का नाम
भी हंसली पड़ा।[125] कण्ठी का वर्तमान रूप गले से लिपटी
रहने वाली एक जंजीर का रूप है जिसमें रत्नमोती अथवा सोने का
एक आध मनका भी पिरोया रहता है। यह आभरण बहुत पुराना है
तथा आज भी लोक प्रिय है।[126] कंठी को कंठी माला अथवा कंठी हार भी
कहा जाता था। मुक्ताहार और गजमोति तथा विद्रुममाला गले में पहनने
का वर्णन भी समकालीन साहित्य में मिलता है।[127]

भुजा, मणिबन्ध तथा कर में धारण किए जाने वाले आभूषण:-

---

(125) मौलाना दाऊद दलमई कृत, छन्द 339, दोहा 2, पृ0 285; चंदायन (माता प्रसाद गुप्त) पद 329, पृ0 326-327; विशाल शब्द सागर पृ0 1526

(126) कण्ठहार के लिए देखिए पृ0 रा0, उ0 प्र0, खण्ड 3, दोहा 51, पृ0 92; चंदायन (माता प्रसाद गुप्त) पद 329, पृ0 328-327; जामिला बृज भूषण इण्डियन ज्युलरी एण्ड ओरनामेन्ट्स पृ0 90

(127) पृ0 रा0 (ना0 प्र0) 1976 छन्द 116 तथा पृ0 564, छन्द 153 तथा 53 पृ0 1976, 70।

चन्दायन में एक स्थान पर सलोनो का उल्लेख हुआ है। [128]

यह सम्भवत: टाड बाजूबन्द के समान हो है। टाड बाजूबन्द कुहनी से ऊपर बाजूबन्द के नीचे पहने जाने वाले[129] अन्दर से खोखले कड़े का नाम है।[130] समकालीन साहित्य में मणि बन्ध के आभूषणों में कंगन, हतपुर, चूड़े, चूड़ी करपा तथा पहुँची वलय पहनने का उल्लेख मिलता है।[131] भुजाओं पर बाजूबंद पहने जाते थे।[132]

- -

(128) दाउदकृत, चंदायन 266/3; चंदायन (माताप्रसाद गुप्त) पद 260, पृ0 253,

(129) जामिला बज भूषण इंडियन ज्युलरी एण्ड ओरनामेन्टस, पृ0 17।

(130) प्राण नाथ चोपड़ा, सम अस्पेक्टस आफ सोसायटी एण्ड कल्चर, पृ0 27

(131) कंगन, हतपुर, चुड़ी, वलय, के लिए देखिए- चंदायन दाउद कृत, 95/5 तथा 359; चंदायन (माता प्रसाद गुप्त) पद 94, पृ 92-93, पद 328, पृ 326-327 तथा कंगन चूड़ी पहुँची और वलय के लिए - पृ0 रा0 (का0 प्र0) पृ0 1955 छन्द 25।8; वर्णरत्नाकर, द्वितीय कल्लोल, पृ० 4; जमीला ब्रज भूषण, पूर्वोक्त, पृ० 181.

(132) पृ0 रा0 (का0 प्र0) पृ0 1979, छन्द 142

कंगन दोनों सिरों पर घुंडी वाले उस ठोस आभूषण का नाम है जो कलाई पर पहना जाता है।[133] हतपुर को हाथ का कड़ा भी कहा जाता है।[134] जो सादा गोलाकार वलय होता है।[135] परन्तु हथपुर से अभिप्राय कदाचित हाथ फूल से है। हाथफूल पांच जंजीरों वाले उस वलय को कहते है जो करमूल पर पहना जाता है, इसकी प्रत्येक जंजीर हाथ को पांचों अंगुलियों में पहनी गई अंगुठियों के साथ बधी रहती है।[136] प्रत्येक अंगुली को अलंकृत करने के लिए अंगूठी अथवा मुन्दरी का प्रयोग किया जाता था। समकालीन साहित्य में दोनों हाथ की दसों अंगुलियों में अंगूठियां पहने जाने का विवरण मिलता है।[137] सम्पन्न वर्ग की महिलायें हीरे जवाहिरातों से जड़ी हुई अंगूठियाँ पहना करती थीं। दसों अंगुलियों में अंगूठियां पहनना वैभव और सौंदर्य का प्रतीक माना जाता था। अंगूठे में पहनी जाने वाली दर्पण युक्त अंगूठी को आरसी कहा जाता था।[138]

---

(133) चंदायन (माता प्रसाद गुप्त) पद 94, पृ0 82-83

(134) चंदायन (डा0 परमेश्वरी लाल) पृ0 286

(135) जीमला ब्रज भूषण इण्डियन ज्युलरी एण्ड ओरनामेन्टस, पृ0 131

(136) चंदायन का सांस्कृतिक परिवेश, डा0 ज्ञान चन्द्र शर्मा, पृ0 157

(137) दाउद कृत चंदायन, 95/5 एवं पृ0रा0(का0 प्र0) पृ0 1387, छन्द 190, मुद्रिका के लिए बीसलदेव रासो (डा0 माता प्रसाद गुप्त)पद 95, पृ0 166-167 चंदायन (माता प्रसाद गुप्त) पद 94, पृ082-83, पद 329, पृ0326-327

(138) दाउद कृत चंदायन, 94/4 तथा वही 95/6

कमर के लिए विशेषकर छुद्रघंटियों[139] का प्रयोग किया जाता था। इसे सोने के तारों में स्वर्ण घंटिकाओं को पिरोकर बनाया जाता था। मेखला [140] कमर का अन्य विशेष आभूषण था। पदाभूषणों में पायल या पाजेब[141] अवलोकित काल की स्त्रियों में अत्यन्त प्रचलित चरणाभूषण थे। पायल जंजीर और झुलनों से युक्त चांदी का बना पदाभरण है जो चलने के साथ झंकार करता है।[142]

- -

§139§ पृ0 रा0 §का0 प्र0§ पृ0 1976, छन्द 122

§140§ ज्योतिरीश्वर कृत वर्णरत्नाकार, द्वितीय कल्लोल, पृ0 4

§141§ दाऊद कृत चंदायन, 122/7 तथा सोने को पायल के लिए देखिए बीसलदेव रासो §डा0 माता प्रसाद गुप्त§ पृ0 138-140, चंदायन §सं0 माताप्रसाद गुप्त§ पद 109, पृ0 106, पायल पैजनिया के लिए वही गंथ पद 94, पृ0 92-93 तथा पद 328, पृ0 326-327 जायसी रचित कहरानामा और मसलानामा पृ0 91

§142§ जामिला ब्रज भूषण इंडियन ज्वेलरी एण्ड ओरनामेन्टस, पृ0 190

चूड़ा[143] पिण्डलियों पर पहने जाने खोखले अथवा ठोस कड़े का नाम है। यह पहनने वाले के सामर्थ्य के अनुसार स्वर्ण, रजत अथवा रांगा आदि धातुओं से बनाया जाता था। चूड़ा या नाद चूड़ इसका प्रचलित नाम है। बेड़ी भी इसी ढंग का पदाभरण है।[144] अनवट तथा बिछुवा[145] विवाहित महिलाओं में अति लोक प्रिय आभूषण था। अनवट पांव के अंगूठे में पहना जाता था।[146] तथा बिछुआ अन्य अंगुलियों में विशेषतः अंगूठे के साथ वाली अंगुली में पहना जाने वाला रजताभरण है। पैरों में तोरड़, जेहरि और अनोट आदि का प्रयोग किया जाता था।[147] छड़ा प्रचलित चरणाभूषण था।[148]

- -

(143) दाऊद कृत चंदायन, 359/3

(144) चंदायन पूर्व वत् 122/7 तथा सोने की बेड़ी के लिए वही ग्रंथ 359/6

(145) चंदायन (सं॰ डा॰ माता प्रसाद गुप्त) पद 329, पृ0326-327; पृ॰रा॰ (का॰ प्र॰) खण्ड 15 छन्द 190, जीमला ब्रज भूषण इंडियन ज्युलरी एण्ड ओरनामेन्टस, पृ॰ 180

(146) पृ॰ रा॰ (उ॰ प्र॰) खण्ड 1, समय 14 (इच्छिनीवि॰) दो 32, पृ॰ 327, यहाँ इसे अनोट खोट का मण्डित (रत्नजड़ित असली सोने की अनवट यहाँ अनवट को "अनोट" कहा गया है।

(147) पृ॰ रा॰ (का॰ प्र॰) खण्ड 15, छन्द 190

(148) दाऊद कृत, चंदायन (डा॰ परमेश्वरी लाल गुप्त) छन्द 95, दोहा 6, पृ॰ 131 यहाँ इसे "छुड़ा कहा गया है।

नर्तकियों के दो चरणाभूषणों में घुँघरू झांझिर तथा नूपुर का विवरण मिलता है, जो बहुत लोक प्रिय थे।[149] निर्धन वर्ग की महिलायें सतफला के फलों के आभूषण बनाकर धारण करती थीं।

> सतखने आवासं महिलानै मझ सद नूपरया।
> सतफल बज्जतु पयात पीत्वरियं नैव पालति।[150]

इस प्रकार सम्पन्न वर्ग की महिलाएँ शरीर के अन्य अंगों की भाँति अपने पैरों को भी विभिन्न आकार-प्रकार के बहुमूल्य आभूषणों से अलंकृत किया करती थीं। पैरों में विभिन्न प्रकार के आभूषणों के बोझ से लदे होने के कारण जूते पहनने में स्त्रियों को असुविधा का अनुभव होता था।[151]

---

(149) पृ0 रा0 (का0 प्र0) खण्ड 15, छन्द 190, नूपुर के लिए देखिए चंदायन (सम्पादक डा0 माता प्रसाद गुप्त) पद 84, पृ0 82-93

(150) पृ0 रा0 (का0 प्र0) खण्ड 11, छन्द 17

(151) किशोर प्रसाद साहू, मध्यकालीन उत्तर भारतीय सामाजिक जीवन के कुछ पक्ष, पृ0 124

§ख§ प्रसाधन और श्रृंगार

प्रसाधन से अभिप्राय है सुवेश और साज सज्जा। सुन्दर और आकर्षक दिखलाई पड़ना मनुष्य की एक सहज प्रवृत्ति है। इस हेतु प्रयोग में लाए जाने वाले उपकरण प्रसाधन के अंतर्गत आते हैं।

वस्त्र और आभूषणों की ही तरह श्रृंगार के प्रसाधन पुरुष

और महिला वर्ग के सर्वथा अलग-अलग थे। मानव मन निसर्गतः श्रृंगाराभिमुख रहा है। प्राचीन भारत में सोलह श्रृंगारों का उल्लेख अनेक स्थानों पर हुआ है।[1] श्रृंगार-प्रसाधन के प्रति समाज की विशेष रूचि थी बाजारों में अगरू, चंदन, कुंकुम, परिमल, वीरण, केवड़ा जैसे सुगन्धित द्रव्य, पान, सुपारी तथा विविध फूल बिकते थे।[2] लोगों के घरों में इन सामग्रियों का प्रचुर प्रयोग होता था।[3] व्यापारी इनके क्रय-विक्रय के लिए देश के एक भाग से दूसरे भाग तक जाते है।[4]

---

§1§ श्री अत्रिदेव विद्यालंकार, प्राचीन भारत के प्रसाधन, पृ0 40-41

§2§ दाऊद कृत चंदायन, 29/2-5

§3§ वही ग्रन्थ, 32/4, 41/5, 247/4, 449/2,

§4§ वही ग्रन्थ 400/4-5,

पुरुषों का श्रृंगार-प्रसाधन :-

उच्च वर्गीय पुरुष अपने शारीरिक आकर्षण की वृद्धि हेतु अनेकों प्रक्रियायें अपनाते थे। कल्पना से परे यौवन ढल जाने पर भी युवकवत् दिखने को इस युग में एक लोकप्रिय भ्रांति थी। स्नान भारतीय लोक-जीवन का एक आवश्यक अनिवार्य नित्य कर्म है। नित्य कार्यारम्भ से पूर्व पुरुष तथा स्त्रियाँ दोनों ही स्नान करने के आदी थे। इसके अतिरिक्त हिन्दुओं में धार्मिक दृष्टिकोण से भी स्नान को एक पावन कर्तव्य माना जाता था। समाज में हर विशेष अवसर पर इसका विधान है।[5] गंगा में स्नान से पापों का नाश होता है यह एक सामान्य धारणा है। समकालीन साहित्य में गंगा जल के द्वारा स्नान किये जाने के विवरण मिलते हैं।

पाप दीन्ह में गंगा बहाइ। धरम नाव हौं लीन्ह चढ़ाई।[6]

अल्बेरूनी हिन्दुओं में प्रचलित धावन क्रिया का उल्लेख इस प्रकार करता है, " धावन क्रिया में वे सर्व प्रथम अपना पग धोते हैं फिर मुख। इस प्रकार स्वयं को स्वच्छ कर लेते हैं। [7]

---

(5) चंदायन, मुल्लादाऊद कृत 41/1

(6) दाऊद कृत चंदायन 9/2 तथा 423/7; पृ0 रा0 (का0 प्र0) पृ 319, छन्द 131, एवं पृ0 2062, छन्द 217

(7) अल्बेरूनीज इण्डिया (सचाऊ) 1, पृ0 191

समकालीन साहित्य में चांद के वाग्दान के अवसर पर ब्राहम्ण और नाई के स्नान करवाये जाने का विवरण मिलता है। स्नान के प्रसंगों में यह कार्य अन्य व्यक्तियों द्वारा किये जाने का भी उल्लेख है ।[8]

इस काल में अंग-प्रत्यंग का मर्दन पुरूषों के द्वारा क प्रथा थी। सुगन्धित तेल मलवाने से शरीरिक वृद्धि बेल के होती है ऐसा माना जाता था ।

कीर पावन पवित्र वर, मोहन सुरभि सु ते
मर्दनीक मर्दन करें, बढ़े घात तन बेल । [9]

समकालीन साहित्य में पुरूषों के शरीर पर मालिश स्त्रियों द्वारा किया जाने का भी विवरण मिलता है ।[10]

---

§8§ दाऊद कृत चंदायन, 41/1, 249/3, ।

§9§ पृ0 रा0 § का0 प्र0 § पृ0 319, छन्द 310, तथा रासो § का0 प्र0 § खण्ड 21, छन्द 91 पृ0 रा0 §का0

§10§ पृ0 रा0, § का0 प्र0 § पृ0 1994

सुनि मर्दन को हकम । होत मरदानो बोलिलिय
बय किशोर घन थोर । कच्छि अच्छीर समानीत्रिय
तिन नेह देह मील देह सुख वरषि मेह सिंगार रस ।

स्नान से पूर्व तेल-फुलेल कुंकुम आदि द्रव्यों का प्रयोग किया जाता था तथा स्नान के पश्चात नवीन सुन्दर वस्त्र पहने जाते थे।[11]

समकालीन साहित्य में केश सवारनें के अनेकों विवरण मिलते है अमीर-खुसरों ने केशकल्प अथवा "खिजाब "[12] का उल्लेख किया है, जिसका प्रयोग श्वेत केश को श्याम बनाने के लिए किया जाता था। उच्च वर्ग के पुरूषों में अपने केश को सँवारने का सामान्य प्रचलन था । इस कंघी को मुस्लिम "शाना "[13] कहा करते थे। मुस्लिम अपनी दाढ़ी को भी कंघी द्वारा सुव्यवस्थित करते थे ।

---

§11§ दाऊद कृत, चंदायन, 41/1, 52/1 है ।

§12§ अमीर खुसरो कृत मतला उल अनवार, पृ0 173 ,

§13§ अमीर खुसरो कृत, "इजाज-ए-खुसरवी, खण्ड 1, पृ0 179 एवं 214

इबनबतूता सामान्य भारतीयों के बारे में लिखता है " वे केश में तिल का तेल प्रयोग में लाते थे तथा अपने केशों को वे मालिश भी करने के आदी थे क्यों कि उनका मानना था कि ऐसा करने से उनके केश स्वच्छ एवं लम्बे होते हैं ।[14] केश को चिकना और सौम्य रखने के लिए सुगन्धित तेलों का भी प्रयोग किया जाता था ।[15] गरीब वर्ग के लोग सरसों के तेल से ही संतुष्ट रहते थे। समकालीन साहित्य में करूआ तेल का उल्लेख किया गया है । [16] इसके अतिरिक्त अनेकों प्रकार के सुगन्ध एवं सुगन्धित वस्तुएँ प्रयोग में लाई जाती थीं।

जैसे- मृगमद,[17] कर्पूर ,[18], केसर,[19], कुंकुम ,[20] कस्तूरी और जावदि[21] चंदन[22] आदि का प्रयोग अवलोकित काल में सामान्य व्यवहार में लाए जाते थे।

---

(14) इबनबतूता, भाग 3, पृ0 53

(15) सुगन्धित पांडानुन फूल (केवड़ा) से बनाये हुए तेल के लिए देखिए, नरपति नाल्ह कृत बीसलदेव रासो, छन्द 96, पृ0 139

(16) विद्यापति कृत, कीर्त्तिलता, तृतीय पल्लव, छन्द24,दोहा101,पृ0 134

(17) विद्यापति पदावली, पद135,एवं 145,पृ0 क्रमशः 190 एवं 190

(18) ज्योतिरीश्वर कृत, वर्णरत्नाकर, तृतीय पल्लव, पृ0 11, पृ0 रा0(का0 (प्र0 छन्द 112 पृ0 316

(19) पृ0रा0(का0प्र0),छन्द112,पृ0316,पृ0रा0(उ0प्र0)समय23,दोहा2पृ0599,

(20) पृ0रा0 (का0प्र0)छन्द112,पृ0316,ज्योतिरीश्वरकृत,वर्णरत्नाकर,तृतीय पल्लव ,पृ0 11

(21) पृ0 रा0(प्र0 का0 प्र0) छन्द 112, पृ0 316

(२२) प्राचीन भारतीय कलात्मक विनोद, पृ० २२

समकालीन साहित्य में हमें साबुन[23] के प्रयोग का उल्लेख मिलता है ।

हनि मोर कंध पहुआन भ्रत,वहिग तति जनु सब्बीनय।[23-ए]

ललाट पर तिलक -रचना शोभा और मंगल के हेतु की जाती थी।[24] नियमानुसार हिन्दू विशेषकर घर से बाहर निकलते समय अपने मस्तक पर तिलक[25] लगा लेते थे। तिलक के द्वारा साम्प्रदायिक आस्था का भी बोध होता है। समकालीन साहित्य में सिरजन के माथे पर द्वादश तिलक[26] उसके वैष्णव ब्राह्मण होने का परिचायक है ।

---

(23) पृ0 रा0 (उ0 प्र0 (कवित्त 46, (माधो भट्ट कथा) पृ0 236

(24) अत्रिदेव, प्राचीन भारत के प्रसाधन , पृ0 57-58

(25) नरपति नाल्हकृत, बीसलदेव रासो , छन्द 102,पृ0 144, इब्नबतूता भाग 3, पृ0 319 तथा बीसलदेव रासो (डा0 माता प्रसाद गुप्त) छन्द 95, पृ0 176-177

(26) दाउद कृत , चंदायन 420/2

अवलोकित काल में भारतीयों में अपने दातों को रंगने तथा अपनी सुन्दरता बढ़ाने के लिए पान [27] खाना अत्यन्त प्रचलित था। इस काल में ताम्बूल (पान) के अन्य गुणों की अपेक्षा इस एक विशिष्ट कारण से भी इसके सेवन का प्रचलन था।[28] दाँतों का विशेष ध्यान रखा जाता था तथा प्रातः काल ही दातून से इनकी सफाई की जाती थी।

करि दातौन सनान। ध्यान गोरख को ध्यायौ।[29]

दर्पण [30] का प्रयोग भी सामान्य रूप से किया जाता था। अवलोकित काल में योगियों के अतिरिक्त कुछ हिन्दू भी लम्बी दाढ़ी रखते थे, किन्तु कुछ लोग विशेष कर राजपूत लम्बी मूँछ रखा करते थे, जिसे वे पराक्रम तथा पौरुष का चिन्ह मानते थे। [31]

---

(27) अमीर खुसरो कृत, इजाज-ए-खुसरवी, खण्ड 2, पृ0 252-59

(28) प्राण-नाथ चोपड़ा, सम असपेक्ट्स ऑफ सोसायटी एण्ड कल्चर, पृ0 [illegible]

(29) पृ0 रा0 (का0 प्र0) पृ0 2555, छन्द 337

(30) पृ0 रा0 (उ0 प्र0) खण्ड 1, समय 14, दोहा 32, पृ0 327, जायसी कृत कहरानामा और मसलानामा, पृ0 96

(31) पृ0 रा0 (उ0 प्र0) खण्ड 2 समय 25 (शशिवृता समय) दोहा 170, पृ0 671

अलबेरूनी इसका उल्लेख इस प्रकार करता है " वे अपनी मूँछ को सुरक्षित रखने के लिए एक ही चोटी में गूँथते थे।[32] अलबेरूनी आगे लिखता है - हिन्दू अपने केश नहीं काटते थे। प्राचीन काल में वे गर्मी के कारण सिर के केश। बढ़ाकर वे लू से सुरक्षित रहना चाहते थे।[33] योगियों के विषय में इब्नबतूता लिखता है। " वे अपने को दुलाई से ढककर रखते है और जिस प्रकार लोग अपनी आँख के रोएँ को साफ करते है उसी प्रकार वे अपने केशों को राख से ढकते हैं। उनका केश उस्तरे से नहीं बल्कि जले हुए कोयले अथवा राख से मुड़ा जाता था।[34]

स्त्रियों की श्रृंगार विधि एवं प्रसाधन :- साधारणतया स्त्रियाँ विभिन्न प्रकार की श्रृंगार विधियों में पुरूषों से अधिक शौकीन थीं। वे अपने श्रृंगार तथा सजावट में तीव्र रूचि रखती थीं। मानव मन निसर्गतः श्रृंगार विमुग्ध रहा है। प्राचीन भारत में सोलह श्रृंगारों का उल्लेख अनेकों स्थानों पर हुआ है।[35] नारियों के सोलह श्रृंगारों में - उबटन, स्नान, सुगन्धि

---

(32) अलबेरूनी (सचाऊ) I, पृ0 180

(33) वही, पृ0 179

(34) इब्नबतूता, पृ0 165

(35) चंदायन दाऊद कृत, 163/1, श्री अत्रिदेव विद्यालंकार, प्राचीन भारत के प्रसाधन, पृ0 40-41, काशी नागरीप्रचारिणी पत्रिका (भाग 62, वि0 सं0 2014 सं0 2-3, पृ0 169-170) में प्रकाशित षोडश श्रृंगार शीर्षक एक लेख (लेखक बच्चन सिंह)

बेणी , मांग, काजल , भौंह, बिन्दी, तिल, चित्र, मेहदीं, महावर, पुष्पमाल तथा पान रचना, सुन्दर वस्त्र एवं विविध आभूषण परिगणित किये जाते थे ।[36]

इस काल में रानी तथा राजकुमारियों के अतिरिक्त उनकी दासियाँ भी सोलह श्रृंगार युक्त होती थीं। इस प्रकार का उल्लेख हमें समकालीन साहित्य में मिलता है ।

सुवर्न छुद्र घंटिकादि । षोडसं वस्त्रानयं ।[37]

इसी प्रकार महिलाओं के सोलह श्रृंगारों में जो कि बाहर से किये जाते थे, के अतिरिक्त प्रकृति-प्रदत्त शरीरिक सोलह श्रृंगारों का भी विवरण मिलता है ।[38]

---

§36§ चंदायन , 297/2-5 तथा अमीर खुसरो, हश्त बहिश्त § सैयद सुलेमान अशरफ द्वारा सम्पादित § पृ0 31, प्रमाणिक हिंदी कोश, पृ01124,

§37§ पृ0 रा0 § का0 प्र0 § पृ0 904, छन्द 316, तथा पृ0 1025, 60 पृ0 653, छन्द 99 तथा पृ0 1976, छन्द 105, पृ0 1977 छन्द 126

§38§ पृ0 रा0 § का0 प्र0 § पृ0 1975-1976, छन्द 105 तथा पदमावत 467/1-9

उबटन [39] लगाने का प्रचलन श्रृंगारिक पद्धति में सम्मिलित था। इसे वे अपने मुख एवं शरीर के अन्य अंगों में स्वयं को आभायुक्त एवं सुन्दर बनाने के लिए, प्रयोग में लाती थीं ।

अमीर खुसरो चेहरे पर लगाए जाने वाले " गाजा अथवा सफेदा[40] जैसे अनुलेप का उल्लेख करता है जिसे उसकाल में मुस्लिम मर्द-औरतें सभी इस्तेमाल करते थे ।

स्नान-

समाज में स्नान का महत्व होने के कारण हर विशेष अवसर पर इसका विधान था। इस काल में स्त्रियाँ अपनी श्रृंगार सज्जा के पूर्व स्नान करती थीं ।[41] इसी प्रकार हमें उल्लेख मिलता है कि पतिगृह से लौटने पर चांद को नहला कर उसकी सखियां किस प्रकार उसका श्रृंगार करती है ।[42]

---

§39§ पृ0 रा0 §का0 प्र0 § पृ0 902, छन्द 304 तथा पृ0 550, छन्द 49 तथा पृ0 551 छन्द 53, तथा पृ0 1025, छन्द 57

§40§ अमीर खुसरो कृत, मतला उल अनवार, पृ0 194 तथा हश्त-बहिश्त ।

§41§ पृ0 रा0 §का0 प्र0 §पृ0 551, छन्द 53, तथा पृ0 1025, छन्द 57 पृ0 1968 , छन्द 51

§42§ दाउद कृत, चंदायन, 52/12, 448/1 तथा 249/3

विलेपन:-

स्नान के पश्चात विलेपन का विधान था। शरीर को सुवासित रखने तथा उसकी शोभा एवं कांति की अभिवृद्धि के लिए उस पर अगरू-चंदन, कस्तूरी , केसर जैसे द्रव्यों का उपलेपन किया जाता था ।[43] समकालीन साहित्य में रानियाँ श्रृंगार हेतु सुगन्धित द्रव्यों तथा धूपों का प्रयोग करते हुए दिखाई गयी हैं ।[44] आचार्य हजारी प्रसाद ने उस काल में चंदन के अनुलेपन के अधिक लोकप्रिय होने की बात कही है ।[45]

चंदायन में चन्दन और जायफल दो प्रकार के विलेपनों का उल्लेख मिलता है । चंदन और जायफल के मिश्रण से शरीर संवारा हुआ कहा गया है ।[46] शरीर को सुवासित करने के लिए सुगंधित द्रव्यों का प्रयोग किया जाता था। अनेकों सुगन्धित द्रव्यों का क्रय-विक्रय बाजारों में होता था ।[47]

---

(43) चंदायन सांस्कृतिक परिवेश (डा० ज्ञान चन्द्र शर्मा) पृ० 156

(44) बीसलदेव रासो (डा० माता प्रसाद गुप्ता) छन्द 59, पृ० 140-141 तथा पृ० रा० (का० प्र०) पृ० 551, छन्द 53 तथा पृ० 1955, छन्द 2520, पृ० 1026 छन्द 61

(45) आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी प्राचीन भारत का कलात्मक विनोद पृ० 22

(46) चंदायन, दाऊदकृत, 93/1,297/2 तथा पृ० रा० (का० प्र०) पृ० 1026, छन्द 61

(47) चंदायन का सांस्कृतिक परिवेश (डा० ज्ञान चन्द्र शर्मा) पृ० 159

केश विन्यास :-

केश-विन्यास में स्त्रियों की विशेष रुचि रही है। इनके सुरुचिपूर्ण विन्यास द्वारा सौंदर्य को अभिवृद्धि करना स्त्रियों को चिरकाल से प्रिय रहा है। इसके उदाहरण हमें पुरातत्व से प्राप्त स्त्री-मूर्तियों खिलौनों आदि में देखे जा सकते हैं जिनमें अनेक प्रकार की केश रचनाएँ मिलती है।[48]

समकालीन साहित्य में स्त्री अपने केशों के विन्यास और प्रसाधन के सम्बन्ध में पूर्ण सजग रहती है। केशों को सुवासित तेल के प्रयोग द्वारा सजाती है।[49]

इसी प्रकार बालों को सुखाने के लिए सुगन्धित धूपों के धुंऐं का प्रयोग करती थी।[50]

---

(48) वही, पृ० 157

(49) पृ० रा० (का० प्र०) पृ० 903, छन्द 310 तथा पृ० 1779, छन्द 53

(50) पृ० रा० (का० प्र०) पृ० 1969, छन्द 53

स्नान के पश्चात बालों को विन्यस्त कर मांग निकालना [51]
अगरु-चन्दन[52], बेला-चम्पा[53] से सुगन्धित कर उन्हें गूंथना युवतियाँ
अपनी केश राशि की वेणियाँ बनाती थीं (जिसे कबरी, वेणि
जूड़ा, अम्बोदो, जूड़ा, झोंपा अथवा शृंग[54] आदि विभिन्न नामों
से पुकारा जाता है) तथा उसमें फूल टांकना [55] सभी उपाय केश
श्रृंगार के काम में लाए जाते थे। तत्कालीन साहित्य में शशिव्रता को
तीन वेणियाँ बाँधे बताया गया है।[56] इसके अलावा उन्हें स्निग्ध
और चमकीला बनाने के लिए तेल का प्रयोग करना आवश्यक था।
विभिन्न प्रकार के सुगन्धित तेलों की मिश्रित सुमधुर सुगन्ध उनकी
केश-राशि से आती रहती थी।[57] इसी प्रकार चंदायन में लोरिक के
वियोग में मैना बाल बिना तेल के रूखे रखती है।[58]

---

(51) चन्दायन दाउद कृत, 52/2,75/2 तथा पृ0 रा0 (का0प्र0) पृ0903 छन्द 311
(52) चंदायन पूर्वोक्त, 252/3
(53) चंदायन वही, 297/2 तथा विद्यापति पदावली, पद 42, दोहा6
(54) दाउद कृत, चंदायन छन्द 207, दोहा 4, पृ0 199, चंदायन (डा माताप्रसाद गुप्त) प0 195 पृ0 190
(55) चंदायन, 76/2-3तथा विद्यापति की पदावली पद 42, दोहा 6
(56) पृ0 रा0 (का0 प्र0) पृ0 303 छन्द 310
(57) नरपति नाल्ह कृत, बीसलदेव रासो छन्द 96, पृ0 193, कीर्तिलता तृतीय पल्लव, छन्द 24, दोहा 101, पृ0 154 तथा पृ0 रा0 (का0 प्र0) पृ0 303 छन्द 310 तथा पृ0 1999, छन्द 53
(58) चंदायन 429/1 चंदायन (डा0 माता प्रसाद गुप्त) द 210, पृ0 200

नारियाँ अपनी माँगों में मोतियों और सिन्दूर का प्रयोग सजाने के लिए करती हैं।[59] माँग में सिन्दूर भरना विवाहित हिन्दू स्त्रियों में अत्यन्त ही शुभ तथा सौभाग्य का प्रतीक माना जाता है।

सम्पन्न वर्गीय स्त्रियाँ तथा प्रत्येक विवाहित स्त्री सिन्दूर रखने के लिए एक सुन्दर डिबिया (सिन्दूर का पात्र) रखती थी जिसे सिंधोरा[60] कहा जाता था यह एक विशेष महत्व की वस्तु थी जिसे सुहाग के प्रतीक के रूप में देखा व वर्णित किया जाता था।

---

(59) पृ० रा० (का० प्र०) पृ० 903, छन्द 311 तथा दाऊद कृत चंदायन, छन्द 52, दोहा 2, पृ० 109 तथा चंदायन 75/2,5 प० रा० (का० प्र०) पृ० 1095, छन्द 163

(60) दाऊद कृत, चंदायन छन्द 39, दोहा पृ० 124 और छन्द 253, दोहा 1 पृ० 224; कीर्तिलता, द्वितीय पल्लव, छन्द 133, पृ० 259

मस्तक पर तिलक-रचना शोभा और मंगल हेतु को जाती है।
प्राचीन भारतीय साहित्य में तिलक को वशीकरण का रूप कहा गया है।[61]
तिलक नारी श्रृंगार के अंग रूप में भी हुआ है। स्त्रियाँ अपने मस्तक पर
शीशा हाथ में लेकर केशर तिलक तथा बिन्दी टिकुली लगाती थीं।

तिलक्क सभाल रची रवि रेखा मनो भव गेह दुआरिन देख।

धन भुअ-इम तिलक्कस राजितजित घर अद्र सुग्ग सुतानि।[62]

आलोच्य काल में नारियाँ अपनी ठोढ़ी पर तिल बनाकर शोभा
बढ़ाती थीं। समकालीन साहित्य में सोलह श्रृंगार में से एक श्रृंगार तिल
बनाकर करने का विवरण मिलता है।

चिबुकक बिन्द असित सुभानि। प्रसारित कज अली सिसु ठानि।[63]

इसी प्रकार हमें श्रृंगार में कपोल चित्र बनाने का उल्लेख मिलता है। यह
चित्र-कर्म कस्तूरी और घनसार के द्वारा किया जाता था

कंठली मंडि बंदन सु चन्द, कसतूर विग्गह घनसार बिन्द।[64]

---

[61] पृ० रा० , का० प्र० , पृ० 1095 , छन्द 164, तथा पृ० 1432 छन्द 121 एवं पृ० 1392, छ० 121; अत्रिदेव : प्राचीन भारत के प्रसाधन पृ० 57-59

[62] पृ० रा० , का० प्र० , पृ० 1963, छन्द 57 तथा पृ० 1954, छन्द 2515 तथा चंदायन, 257/3 तथा पृ० रा० , का० प्र० , पृ० 303, छन्द 312

[63] पृ० रा० , का० प्र० , पृ० 1969, छन्द 61

[64] पृ० रा० , का० प्र० , पृ० 1975 , छन्द 107

अंजन या काजल:

अंजन का प्रयोग भारत में चिरकाल से हो रहा है। अंजन का ही एक प्रकारान्तर काजल है। स्त्रियां अपनी सौन्दर्य वृद्धि के लिए नेत्रों में सुरमा और अंजन अथवा काजल लगाया करती थीं।[65] समकालीन साहित्यिक कृतियों में काजल श्रृंगार का एक अंग माना गया है।[66] उत्सव-पर्वों में सामान्य स्त्रियां आंखों में काजल लगाती थीं।[67] समाज में सिन्दूर की ही भांति काजल भी सौभाग्य का प्रतीक माना जाता था।[68] महिलायें अपनी भौहों को काले रंग का तथा तिरछा बनाती थीं, तथा बालिका द्वारा सुरमा और काजल की स्याही से अपनी भौहों का श्रृंगार करती थी।

रो जल कज्जल रेख सुरेख। मुषी भय काम जरे जनु एख।[69]

अधर-रंजन-

अधरों का सौंदर्य उनकी लालिमा में है। प्राकृतिक लालीमा को कृत्रिम उपकरणों से रंजित कर और गहरा करने का रिवाज प्राचीन काल से ही

- -

65. पृ0रा0 (का0प्र0), पृ0 565, छन्द 159; अमीर खुसरो कृत "मतला-उल-अनवार" पृ0 215; जायसीकृत महरानामा और मसलानामा, पृ0 90

66. चंदायन, 287/3,; 448/2

67. चंदायन, 409/4; 295/4 तथा 402,/3 तथा चंदायन (डा॰ माता प्रसाद गुप्त), पद 393, पृ0 388

68. चंदायन 150/4, पृ0रा0(का0प्र0),पृ01968, छन्द 57 तथा पृ0 1 54, छन्द 2515, एवं चंदायन (डा॰ माता प्रसाद गुप्त)पद 395, पृ0 390

69. पृ0रा0(का0प्र0), पृ0 1968, छन्द 58; जायसीकृत महरानामा और मसलानामा, पृ0 90, अमीर खुसरो, "मतला-उल-अनवार, पृ0 218

चला आ रहा है। प्राचीन साहित्य में इस कार्य हेतु मोम और अलक्तक धारण करने का उल्लेख मिलता है। [70], जिसे वर्तमान में लिपस्टिक का पूर्वरूप कहा जा सकता है।

पान खाने से भी ओठों पर लाली आ जाती है। अलौकिक काल में ताम्बूल के अन्य गुणों की अपेक्षा एक विशिष्ट कारण से भी इसके सेवन का प्रचलन था। पान खाने से ही उनका श्रृंगार सम्पूर्ण होता था।[72]

<u>मेंहदी</u>:

भारतीय स्त्रियाँ हाथ-पाँव रंजित करने के लिए मेंहदी का प्रयोग करती आई हैं। स्त्रियाँ अपने हाथों का श्रृंगार मेंहदी द्वारा ही करती है।[73] हाथों और नाखूनों को मेंहदी या हिना के द्वारा रंगने का उल्लेख भी हमें समकालीन साहित्य में मिलता है।

दर्पन दत नख जोति। सुरंग मिहदी रुचि रुच्चिय।[74]

- -

70. आचार्य हजारी प्रसाद: प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद, पृ० 24

71. प्राण नाथ चोपड़ा, "सम अस्पेक्ट्स ऑफ सोसायटी एण्ड कल्चर" पृ० 22

72. चंदायन, 287/3, तथा 218/2; पृ०रा० (का०प्र०), पृ० 1954, छन्द 2516 तथा पृ० 1957, चंदायन (डा० माता प्रसाद गुप्ता), पद 393 पृ० 388

73. चंदायन 27/4; तथा पृ० रा०, (उ० प्र०) भाग-1, पृ० 327, छन्द 8।

74. पृ० रा०(उ०प्र०), भाग-1, पृ० 327 छन्द 8। तथा बीसलदेव रासो (डा० माता प्रसाद गुप्त) छन्द 72, पृ० 153-154 एवं इब्नबतूता भाग-3, पृ०-2

इसी प्रकार से अवलोकित काल में महिलायें अपनी एड़िया रंगती थीं उनके लिए जावक, महावर तथा आलता आदि का प्रयोग किया जाता था।[76] तत्कालीन साहित्य में हमें रानी इच्छिनी को जावक द्वारा अपनी एड़ियां रंगने का उल्लेख मिलता है।

एडी ईंगुर रंग। उपम औपियै जु अंचिय।

सौतिन सकल सुहाग। भाग जावक तल बंधिय।[77]

दर्पण[78] (अदर्शिका या आईना) श्रृंगार विधि का अभिन्न अंग था। जब कोई स्त्री अपने कपोलों पर श्रृंगार प्रसाधन या लाली लगाती, अपने मस्तक पर तिलक

- -

75. डा० प्राण नाथ चोपड़ा, सम अस्पेक्ट्स आफ सोसायटी एण्ड कल्चर, पृ० 22

76. पृ० रा० (का०प्र०) पृ० 1086, छन्द 182 तथा पृ० 1087, छन्द 191 तथा पृ० 355, छन्द 2519,, विद्यापति पदावली, पद-4, पृ० 92 तृतीय संस्करण; विद्यापति पदावली प्रथम संस्करण पद 31, दो० 12, पृ० 145 तथा पद 129, दो० 10, पृ० 204; विद्यापति, (रामवृक्ष बेनीपुरी द्वारा सम्पादित) पद 62, पृ० 89.

77. पृ० रा० (का०प्र०), पृ० 585 छन्द 160 तथा विद्यापति पदावली, तृतीय संस्करण पद 4, पृ० 92

78. पृ० रा० (उ०प्र०), खण्ड 1 समय 14, दोहा 32, पृ० 427 तथा पृ० रा० (का०प्र०) पृ० 1968, छन्द 37; पद्मावत (डा० माता प्रसाद गुप्त) पद 332, पृ० 331, एवं जायसीकृत, कहरानामा और मसलानामा, पृ० 96 तथा मध्यकालीन उत्तर भारतीय सामाजिक जीवन के कुछ पक्ष (किशोर प्रसाद साहू) पृ० 110-111

पर तिलक धारण करती, नयनों को अंजन लगती और अपनी मांग में सिन्दूर भरती तथा बिन्दी लगाती थीं, तो वह दर्पण का प्रयोग करती थी:

तिलक्क द्प्पनं करी। श्रवन्न मंडन धरी।[78]

प्रसाधन के रूप में फूलों का प्रयोग:

फूल अपनी गंध कोमलता और सुन्दरता के कारण लोकप्रिय हैं। देव अर्चना से लेकर वैयक्तिक श्रृंगार तक इनके विविध प्रकार के प्रयोग के उदाहरण मिलते हैं। प्राचीन काल से ही फूलों के द्वारा श्रृंगार सज्जा करना प्रचलित रहा है।[79] विवेच्यकाल में बालों में फूल गूंथ कर श्रृंगार करने का उल्लेख मिलता है:

अनेक पुष्प बीचि गंथि। भासिता त्रिपंडियं।[80]

चंदायन के बाजारों में विविधप्रकार के मनमोहक फूल बिकते थे। स्त्रियाँ दौना, मरवा, कुंद और निवारी पुष्पों के हार गूंथ कर बेचतीं थीं।[81]

- -

79. चन्दायन का सांस्कृतिक परिवेश, (डा० ज्ञान चन्द्र शर्मा), पृ० 160

80. पृ०रा० (का०प्र०), पृ० 803, छन्द 310 तथा पृ० 1985, छन्द 106

81. चंदायन, 28/1-5

इसी प्रकार संयोगिता के द्वारा पुष्पमाल पहनने का उल्लेख मिलता है:

कबरी कुसुमं निसरतनयं। श्रुति कुण्डल लाल दुमाजनयं।[82]

फूलों को सजावट के तौर पर भी कार्य में लाए जाते थे।[83]

समकालीन साहित्यिक रचनाओं में हमें गणिकाओं की श्रृंगार विधियों का उल्लेख मिलता है, वे मुख का भलीभांति मण्डन करतीं, सिंदूर लगाती, बाल मोड़ती, टीका और फूल पत्तियों की रचना से सजतीं, दिव्य वस्त्र धारण करतीं, तथा केश जाल उभार कर बाँधती एवं उनके केशों में फूलों का निवास रहता।[84]

सिर से पांव तक शरीर के प्रत्येक अंग को सुसज्जित करना, हिन्दू स्त्रियों की सामान्य दुर्बलता थी।

- -

82. पृ0रा0(का0प्र0), पृ0 1963, छन्द 13 तथा चंदायन, (डा0 माता प्रसाद गुप्त), पद 210, पृ0 205

83. चंदायन, 221/2, 322/6-7

84. कीर्तिलता, द्वितीय पल्लव (डा0 वीरेन्द्र श्रीवास्तव) पद 134-140, पृ0 79 तथा कीर्तिलता (साहित्य सदन झांसी प्रथम संस्करण) द्वितीय पल्लव, छन्द 24, दोहा 136, पृ0 84.

खान-पान

प्राचीन काले से ही भारतीय अपने दैनिक भोजन पर विशेष ध्यान देते आये हैं। सभ्यता के विकास के साथ खान-पान में निरन्तर परिवर्तन तथा परिवर्धन होते रहे हैं। अतः किसी काल और देश-विशेष में व्यवहार में लाये जाने वाले खाद्य एवं पेय पदार्थों की सूची में सहज ही वहाँ के तत्कालीन समाज की सभ्यता और सम्पन्नता का अनुमान लगाया जा सकता है। अवलोकित काल में पाक-विधा का विकास एक समुचित एवं विलक्षण रूप में हुआ। भारतीयों का सम्पर्क जब एक नये समुदाय (मुस्लिम) से हुआ, तो एक नये युग का आरम्भ हुआ। अनेक नवीन रीतियाँ एवं प्रणालियाँ भारतीयों ने अपना ली जिनका प्रभाव उनके जीवन-स्तर पर पड़ा। भारतीयों के खान-पान पर मुस्लिम-सम्पर्क का जितना प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा उतना उनके जीवन के किसी पक्ष में दृष्टिगोचर नहीं होता।[1]

शासन वर्ग एवं धनाढ्यों का खान-पान

हिन्दू-मुस्लिम दोनो जातियों के कुलीनों एवं अमीरों में नाना प्रकार के पौष्टिक भोजन का प्रचलन था। प्रायः सभी सुल्तानों की पृथक पाकशाला या मतबख[2] होती थी जो सुसंचित एवं सुव्यवस्थित थी। सुल्तान

---

(1) चंदायन का सांस्कृतिक परिवेश, डा० ज्ञान चन्द्र शर्मा, पृ० 117 एवं माध्यकालीन उत्तरी भारत का सामाजिक जीवन के कुछ पक्ष, डा० किशोर प्रसाद साहू। पृ० 29

(2) अमीर खुसरो, कुल्लियात-ए-खुसरवी, अलीगढ़, भाग। ,पृ० 106,

साधारण तथा अपने कुलीनों एवं अमीरों के संग एक ही दस्तरख्वान[3] ﴾ खाना रखने का फर्श या चौकी आदि पर बिछाया जाने वाला कपड़ा ﴿ पर खाना खाते थे। इस प्रकार विशेष सामुदायिक सह-भोज का कारण एक तो इस्लाम धर्म में निहित भ्रातृभाव था तथा एक अन्य कारण सुल्तानों का कूटनैतिक व्यूहकौशल था। इन सहभोजों के दौरान कुलीन वर्ग सुल्तानों के विशेष सम्पर्क में आते थे। वे सुल्तानों का विरोध करने अथवा अन्य किसी भ्रष्टाचार से बचे रहते थे। सुल्तान अपने इस कार्य से कुलीन को अपने हाथ में रखते थे। राजकीय भोजनों में अधिकतर नान[4] ﴾ एक प्रकार की रोटी﴿ , समोसा[5], ﴾ सिंघाड़े की तरह माँस भरा हुआ पकवान﴿ कबाब-ए-मुर्ग,[6] ﴾ मुर्ग का कबाब﴿ , बच्च-ए-मुर्ग[7] मछली [8] एवं खुर्स-बिरयानी[9] का समावेश होता था। इब्नबतूता ने सुल्तान मुहम्मद-बिन-तुगलक के समय के अवसर विशेष का वर्णन करता है जब सुल्तान के दरबार में तिरेमिज के काजी

- -

﴾3﴿ अमीर खुसरो, कुल्लियात-ए-खुसरवी, भाग। पृ0 106

﴾4﴿ अमीर खुसरों,हश्त-बहिश्त, मौलाना सुलेमान अशरफ द्वारा सम्पादित पृ0 128

﴾5﴿ जायसी का पदमावत, सर्ग 45, पृ0 720

﴾6﴿ अहमद यादगार रचित तारीख-ए-शाही , पृ0 118 तथा जायसीकृत "पदमावत" सर्ग 45,दोहा 7, पृ0 722

﴾7﴿ तारीख-ए-फिरोजीशाही, ﴾बर्नी﴿सैयद खाँ द्वारा सम्पादित ,पृ0 116

﴾8﴿ जायसी रचित"पदमावत" दोहा 547/7 पृ0 722

﴾9﴿ अमीर खुसरो कृत आईन-ए-सिकन्दरी, अलीगढ़, 1917,पृ0 119

ख़ुदावन्दजादा क्विानउद्दीन आए थे। " राजमहल के प्रधान अधिकारी एवं उनके सहयोगियों ने आवश्यक-प्रबन्ध किये तथा इस कार्य-हेतु उन्होंने बीस मुल्तानी रसोइये ‖तब्बाक‖ रखे ।[10]

आगे इब्नबतूता भोज में प्रस्तुत विभिन्न स्वादिष्ट पकवानों का वर्णन इस प्रकार है " जिस क्रम में भोजन परसा गया वह इस प्रकार है सर्व प्रथम एक प्रकार की पावरोटी ‖ ख़ुब्ज‖ दी गयी जो बहुत पतली और रोटी के समान है, तदुपरान्त वे ‖ प्रधान अधिकारी‖ भुने हुए मांस ‖ अल्लाह-मुल-मशवी" ‖ को इस प्रकार बड़े-बड़े टुकड़ों में काटते है कि एक सम्पूर्ण भेड़ से चार या छः टुकड़े ही निकलते हैं। एक टुकड़ा एक व्यक्ति को परोसा जाता है। वे घी में चुपड़ी हुई गोला कार रोटी भी बनाते हैं, और इस बीच वे एक प्रकार का मिष्ठान प्रस्तुत करते हैं। जिसे सुबुनिया ‖ बादाम , मधु एवं सीसम-तेल का मिश्रण‖ कहते हैं । रोटी के प्रत्येक टुकड़े पर एक प्रकार की मोटी रोटी रख दी जाती जिसे खिश्ती कहते है, जिसका अर्थ होता है " ईट-सदृश्य" जो आटा ,चीनी एवं घी से बनती है। इसके उपरान्त वे चीनी मिट्टी की तश्तरी अथवा संहाफुन सिनियातुन में घी प्याज‖बस्त‖ और कच्चे अदरक में पकाया मांस परोसते है । [10] फिर समोसा ‖ समुसक‖

‖10‖ इब्नबतूता, दि रेहला ‖ महदी हुसैन‖ पृ0 14-15

‖10ए‖ वहीं ।

लाया जाता है। जिसे पिसे हुए मांस को बादाम , अखरोट , पिस्ता प्याज और मसाले में पकाकर पतली चपाती में भरकर तथा उसे घी में तलकर बनाया जाता है। प्रत्येक व्यक्ति के समक्ष इस प्रकार के चार से पाँच समोसे परोसे जाते हैं। उसके बाद घी में पकाये हुए चावल की थाली लायी जाती है, जिस पर भुना हुआ मुर्गा रखा होता है। दोजाज, अर्थात् मुर्ग-मुसल्लम के साथ पुलाव तदुपरान्त लुकमत-उल-काजी (एक प्रकार की मिठाई) लायी जाती है जिसे हाशिमी कहते हैं। उसके बाद अल-काहिरिया (काहिरा में प्रचलित मांस एवं अन्य के मिश्रण से बनाया हुआ एक प्रकार का पकवान) लाया जाता है।[1] सुल्तानों द्वारा पालित कुछ रीतियों का वर्णन करते हुए इब्नबतूता लिखता है," भोज आरम्भ होने के पूर्व प्रधान अधिकारी भोजन करने के कालीन सिरे पर खड़े होकर सुल्तान की ओर नमन (खिदमत) करता है, साथ ही अन्य उपस्थित लोग भी ऐसा ही करते है। भारत में घुटने तक झुककर (जिस प्रकार नमाज में किया जाता है) खिदमत की जाती है। इसके उपरान्त लोग खाने पर बैठ जाते है, तब सोने-चाँदी तथा काँच के पात्रों में गुलाब-जलमिश्रित मधुर-पेय लाया जाता है जिसे शरबत कहते है। शरबत पी लेने के बाद प्रधान-अधिकारी बिस्मिल्लाह कहता है, तब सभी खाना आरम्भ करते है। भोजन के अंत में यव-जल (फुक्का) लाया जाता है और जब यह

---

(1) दि रेहला ऑफ इब्नबतूता, (महदी हुसैन) पृ० 15

समाप्त हो जाता है तो पान एवं सुपारी दिया जाता है। जब लोग पान सुपारी खा लेते है तो प्रधान अधिकारी " बिस्मिल्लाह" कहता है। इस समय सभी लोग खड़े होकर उसी प्रकार अदब से झुक जाते है जैसे आरम्भ में झुके थे। तब लोग प्रस्थान करते है।[12] इब्नबतूता एक अन्य राजकीय भोज का विवरण देता है। वह लिखता है " राज प्रासादों में दो प्रकार के भोज हुआ करते थे-वैयक्तिक एवं सार्वजनिक। जिस भोज में स्वयं सुल्तान का चाचा, इमाद-उल मुल्क सरतेज एवं समारोहाध्यक्ष, वे जो अ-इज्जा ﴾ प्रतिष्ठित﴿ से बहिष्कृत है एवं वे महान अमीर होते है जिन्हें वह प्रतिष्ठित अथवा सम्मानित करना चाहता है। कदाचित जब वह ﴾ सुल्तान﴿ उपस्थित लोगों में से किसी को प्रतिष्ठित करने की इच्छा करता है तो एक थाली में रोटी रखकर उस व्यक्ति को ग्रहण करता है और इसे अपने बाएँ हाथ में रख लेता है और झुककर भूमि को स्पर्श करता है। कभी-कभी सुल्तान उस भोज में से कुछ उस व्यक्ति को भेजता है जो वहाँ उपस्थित नहीं होता। वह व्यक्ति भी ठीक उसी प्रकार अदब से झुक जाता है, फिर बैठकर अपने समाज के साथ उसे खाता है। मैं अनेक बार ऐसे विशेष भोज में उपस्थित हुआ और देखा कि ऐसे भोज में करीब बीस व्यक्ति उपस्थित थे।[13]

﴾12﴿ वही, पृष्ठ 15-15

﴾13﴿ दि रेहला ऑफ इब्नबतूता, पृ0 64-65

सम्पन्न मुस्लिम वर्गों ने साधारणतया दिल्ली के सुल्तानों के अनुकरण का प्रयत्न किया । यहाँ तक कि सुल्तानों द्वारा अनुग्रहित पक्वानों के प्रति रूचि को अपने में विकसित करने की चेष्ठा की। उच्च वर्ग के लोगों ने उत्तम अतिथि सत्कार का उदाहरण प्रस्तुत किया । बलबन का सैन्य-मंत्री इमाद-उल-मुल्क अपने सम्पूर्ण मंत्रालय के सदस्यों को प्रतिदिन मध्यांह में श्रेष्ठ पक्वानों का राजकीय भोज दिया करता था । इस भोज में मैदे की रोटी (नान-ए-मैदा) बकरी का मांस (गोश्त-ए-गोसफन्द) मुर्गा (बच्च-ए-मुर्ग) , बिरियान (मांस एवं चावल मिश्रित भोजन जो आधुनिक पोलाव जैसा होता था) , फुक्का (यव-जल) शर्बत (सुगन्धित मधुर जल) तथा तम्बोल (पान) प्रस्तुत किए जाते थे। कुलीनों में भी सम्मिलित रूप से भोजन करने का प्रचलन था ।भोज के उपरान्त बचे हुए खाने को फकीरों और भिक्षुकों को बाँट दिया जाता था ।[14] अमीर खुसरो मुस्लिम अभिजात वर्गों के खान-पान के संदर्भ में कहता है " उनके भोजन में साधारणतया शर्बत-ए-लब्गीर (अतिम मधु पेय (नान-ए-तुनुक(पतली रोटी) नान-ए-तनूरी(तन्दूर में पकी चपातियाँ) , समोसा (मांस , घी, प्याज द्वारा बनाया (भेड़ का मांस, विभिन्न पक्षियों का मांस जैसे बटेर , गौरैया (कुंजश्क्का) आदि और हल्वा, सबुनी-शंकर का समविश होता है । वे मदिरा-पान के भी अभ्यस्त है ।

---

(14) तारीख-ए-फीरोजशाही (बरनी) पृ0 116

भोजनोपरान्त मुँह का स्वाद बदलने के निमित्त पान भी खाते है । [15] इस प्रकार भोजन की विविधता एवं श्रेष्ठता धनाढ्य मुस्लिम समाज की खास विशिष्टता थी और यह निश्चित रूप से दिल्ली के सुल्तानों की ही देन थी ।

दिल्ली के सुल्तानों के समान हिन्दू राजा भी श्रेष्ठ एवं विविध पकवानों के शौकीन थे किन्तु इनके पकवान अधिकतर शाकाहारी हुआ करते थे। वे भी सुव्यवस्थित रसोई रखा करते थे जिसे भोजन शाला कहा जाता था । इसका निरीक्षण रनियाँ करती थी । [16] राजकीय रसोई में अनुभवी तथा कुशल रसोइयों को अधिक प्रश्रय मिलता था ।[17] दिल्ली के अन्तिम राजपूत शासक पृथ्वीराज के दरबारी कवि चंदरवाई अनेक प्रकार के भोजन का वर्णन करता है जो हिन्दू राजाओं में प्रचलित था। जैसे-"घृत-पक्व" (घी में पका भोजन) दुग्ध-पक्व (खाद्य-सामग्री जो शुद्ध मक्खन में बनाये जाते थे) "मांस" (विविध स्वाद युक्त) विभिन्न प्रकार के "शाक (साक) "फल" षटरस-व्यंजन (छः प्रकार के विशेष स्वाद वाली सब्जियाँ -जैसे मीठा , नमकीन, तीता, कडुवा, कसैला तथा खट्टा) संधन (चटनी-मसाले की तरह अचार) तथा पचने में सहायक "पछावरी" (मथा हुआ दही) [18]

- -

(15) किरानुस सा दैन ऑफ अमीर खुसरो, पृ0 138-139

(16) पृथ्वीराज रासो (उ0प्र0) भाग 4 पृ0 976

(17) पृ0 रा0 (का0प्र0) पृ0 1999, छन्द 96

(18) पृ0 रा0 (उ0 प्र0) भाग-3 पृ0 4 तथा भाग 4 समय 61 दोहा 70 पृ0 976

राजपूत राजा " खीर" एवं "रबड़ी " के अत्यन्त प्रेमी थे जिन्हें उनकी राजकुमारियाँ नितान्त रूचिपूर्वक बनाती थी । [19]

उच्च वर्गीय हिन्दू भी भोजन की विविधता एवं श्रेष्ठता में अपने मुस्लिम बन्धुओं के समकक्ष थे। उनके भोजन अधिकतर शाकाहारी हुआ करते थे। इसमें भात[20] दूध घी से बने पक्वान [21] चीनी , फल सब्जियाँ तथा विभिन्न प्रकार के सागों [22] का बाहुल्य होता था । समकालीन साहित्य में अवलोकित काल के पक्वानों का उल्लेख मिलता है । जैसे-"खिरोरा [23] (एक प्रकार का लड्डू जिसे चावल के आटे में गर्मजल मिलाकर बनाया जाता था । "केसरी " या "कसर" [24] (घी में बनी एक प्रकार की मिठाई जिसे गेहूँ और चीनी मिलाकर बनाई जाती थी) बरा [25] (पिसी हुई उड़द की दाल गोलाकार टिकिया जिसे तेल में छाना जाता था) मुगौरा [26] (मूँग दाल का बरा)

---

(19) पृ0 रा0 (उ0प्र0) भाग । , आदि कथा, दोहा 4 पृ0 3

(20) दाऊद कृत चंदायन , छन्द 158 , पृ0 170 (माता प्रसाद गुप्त) पद 42 पृ0 40

(21) पृ0 रा0 (उ0 प्र0) भाग। आदि कथा, पृ0 64,67-68,70-71

(22) पृ0 रा0 (का0 प्र0) पृ0 556, छन्द 89

(23) दाऊद कृत चंदायन , डा0 परमेश्वरी लाल द्वारा सम्पादित , छन्द 42 दोहा 2 पृ0 103

(24) चंदायन, छन्द 42, दोहा 2 पृ0 103

(25) वही, छन्द 157 , दोहा 1 पृ0 169

(26) वही.

खन्दुई [27] ﴾ आटा एवं चना-दाल मिश्रित एक नमकीन पक्वान जिसे पानी में घोलकर पुनः हलुआ की तरह गाढ़ा बनाया जाता था ﴿ " मिथौरी"[28] ﴾ पिसी हुई दाल में मेथी तथा अन्य मसाले मिलाकर बनाई हुई पिण्डाकार छोटी टिकिया ﴿ " दुबकी "[29] ﴾ एक प्रकार की पकौड़ी जिसे घी या तेल के स्थान में उबलते पानी में बनायी जाती थी ﴿ " लप्सी"[30] ﴾ एक प्रकार का हलुआ जिसे गेहूँ के आटे को घी में बनाया जाता था । किन्तु यह सूखा न होकर लेई के समान होता था ﴿ " खिरसा " [31] ﴾ छेना ﴿ तथा " पापड"[32] ﴾ जिसे विभिन्न प्रकार की दालों साबूदाना और आलू से बनाया जाता था ﴿

इसी प्रकार से अवलोकित काल में, लड्डू, खस्ता, कुसियारे या गुझियाँ एवं कढ़ी का प्रयोग होता था । गेहूँ को पीसकर एवं कपड़े से छानकर प्रयोग करते थे ।[33]

﴾27﴿ वही, छन्द 157, दोहा 7, पृ0 169

﴾28﴿ वही, छन्द 157, दोहा 2, पृ0 169

﴾29﴿ वही,

﴾30﴿ वही, छन्द 157, दोहा 5 पृ0 169

﴾31﴿ वही, छन्द 157, दोहा 6 , पृ0 169

﴾32﴿ वही, छन्द 156, दोहा 1, पृ0 168

﴾33﴿ छंदायन ﴾माता प्रसाद गुप्त﴿ पद 40 पृ0 38 पद 147 पृ0 144 एवं पद 149 तथा पृ0 146

भोजन में दही [34] का प्रयोग भी होता था। सब्जी में , करैला, कुम्हंडा , परवल , नेनुआ, तरोई, अरवी, पालक , चौलाई, लौकी, चिचिंड़ा, सेम, मेंथी, भाटा, टेडस (टींड़ा) तथा कटहल बडहल आदि शाक भाजियों का प्रयोग किया जाता था । [35] सब्जियों के पाक विधि के लिए कडुआ तेल तथा विविध मसालों का प्रयोग किया जाता था, जिनमें सौंफ, सोया, मेथी, नमक का प्रयोग होता था ।[36] मांस को पकाये जाने में विभिन्न प्रकार के पक्षियों को घी, सेंधानमक, मसालों में अनार दाने, करौंदे, इमली, विविध मसालों का प्रयोग किया जाता था । [37] अधिकांश हिन्दू शाकाहारी होते थे।

कुछ फल, पेय आदि

हिन्दू-मुस्लिम दोनों जातियों के उच्च वर्गीय लोग प्रचुर मात्रा में फल खाते थे। इस काल में हमें अनेक प्रकार के फलों का उल्लेख मिलता है । इब्नबतूता आम का वर्णन इस प्रकार करता है " जब शरत्काल(खरीफ) में आम पक जाता है तो अत्यन्त पीला हो जाता है और सेव के समान खाया जाता है । यह फल मीठा होता है किन्तु इसमें कुछ खट्टापन होता है । [38]

---

(34) चंदायन, (मा0प्र0गु0) पद 46,पृ0 44 एवं पद 147, पृ0 144

(35) चंदायन, दाऊद कृत, 156 एवं 160/3 स0मा0प्र0गु0 पद 146 पृ0 143

(36) वही,156/1 एवं (सम्पादक मा0 प्र0 गु0) पद 146 एवं पृ0 143 तथा पद 4 ख पृ0 40

(37) वही , 156/1 एवं (मा0 प्र0 गु0) पद 145, पृ0 142

(38) दि रेहला ऑफ इब्नबतूता , पृ0 17

वह आबनूस (तेंदुआ) के फल का भी उल्लेख करते हुए कहता है यह अत्यन्त मीठा होता है ।[39] जामुन का उल्लेख करते हुए वह लिखता है " इसके वृक्ष बड़े होते है तथा फल जालपाई के समान होते है । इसका रंग काला होता है तथा जालपाई के समान इसमें भी एक गुठली होती है ।[40] महुआ का उल्लेख करते कहता है " महवा का फल छोटे नाशपाती की तरह होता है । यह अत्यन्त मीठा होता है । प्रत्येक फल के ऊपरी भाग में अंगूर के बराबर एक खोखला बीज होता है । स्वाद में यह अंगूर के समान होता है, किन्तु अधिक खा लेने पर माथे में पीड़ा होती है । आश्चर्य यह है कि जब ये बीच धूप में सुखा दिए जाते है तो इनका स्वाद अंजीर जैसा हो जाता है। मैने इन्हें अंजीर के बदले में खाया जो भारत में नहीं पाया जाता है । " हिन्दुस्तान में प्राप्त नारंगी का वर्णन करते हुए इब्नबतूता कहता है, " भारत के सामान्य फलों में से मीठी नारंगी एक है । किन्तु खट्टी नारंगी बिरले ही होती है । एक अन्य प्रकार की नारंगी भी यहाँ पाई जाती है जो न तो अधिक मीठी है और न अधिक खट्टी ही होती है । यह अत्युत्म होती है ।[42] वह आगे कहता है ," भारतीय फलों में एक अन्य फल भी है जिसे कसेरा कहा जाता है ।

---

(39) वही,

(40) वही,

(41) दि रेहला ऑफ इब्नबतूता, पृ0 18

(42) वही , पृ0 17-18

इसे धरती से निकाला जाता है। यह अखरोट के समान अत्यन्त मीठा होता है।"[43] अनार का वर्णन करते हुए वह लिखता है, इसके वृक्ष में वर्ष में दो बार फल लगते है। मैंने कुछ पेड मालद्वीप में देखे जिसमें साल-भर फल लगते है। भारतीय इसे अनार कहते है।[44] समकालीन साहित्यिक कृतियों में अनेक प्रकार के फलों का उल्लेख मिलता है, जैसे- तारीख-ए-फीरोजशाही में हमें खुरमा, अनार, सफतालू अथवा सतालू, तूत, सेब, अमरूद का विवरण मिलता है।[45] इसी प्रकार एक अन्य कृति में हमें नारियल, अनार दाख॰ अंगूर॰ का उल्लेख मिलता है।[46] अमीर खुसरों खरबूजे को बहिश्त॰ स्वर्ग॰ का फल बताता है।[47] अमीर खुसरों ने ही इस काल में उपयोग में लाए जाने वाले फलों का उल्लेख इस प्रकार किया है "अम्बा ॰ आम॰[48] खुरमा[49] और "बेर"[50] अंगूर[51] " मूज ॰ केला ॰[52] अनार[53] पिस्ता, खरबूजा[54] चिरगोजा[55] अमरूद[56] केले का उल्लेख इस प्रकार करता है," हिन्दुस्तान के अतिरिक्त संसार में कहीं भी यह फल नहीं पाया है।"[56] ॰ख॰

॰43॰ वहीं पृ० 18

॰44॰ वहीं,

॰45॰ अफीफ, तारीख- ए-फीरोजशाही पृ० 127-128 एवं

॰46॰ चन्दायन, ॰हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर॰, छन्द 18 पृ० 85

॰47॰ अमीर खुसरों कृत, कुल्लियात-ए-खुसरवी, भाग 1 पृ० 84

॰48॰ वही, पृ० 107-109

॰49॰ वही

॰50॰ वही

॰51॰ अमीर खुसरों कृत, किरानुस सादैन, पृ० 166

॰52॰ वही

॰53॰ वही

॰54॰ वही

॰55॰ वही

॰56॰ देवल रानी खिज्रखा अमीर खुसरों कृत, पृ० 43 तथा "नुह सिपिहर" पृ० 160

फलों की ही भांति मेवों का उल्लेख मिलता है जिनमें, चिरौंजी , नारियल, और छुहारे सम्मिलित है।[57] षटरस भोजन में खटाई का अपना स्थान है । चटनी एवं अचारों का प्रयोग भी हिन्दू तथा मुसलमानों में लोकप्रिय और खर्चीला समझा जाता था । इसके स्वाद एवं चटपटेपन को अमाशय के कार्यों के लिए सहायक समझा जाता था ।[58]

हिन्दू तथा मुस्लिम दोनों जातियों में पान[59] (ताम्बूल) अत्यन्त ही लोकप्रिय था । आरम्भ में मुसलमानों में पान का प्रयोग अज्ञात था, जिसका ज्ञान उन्हें हिन्दुओं के संसर्ग से हुआ ।[60] अन्तत: मुसलमान इसके आदी हो गए । मुसलमानोंमेंयह इतना अधिक प्रचलित एवं लोकप्रिय हुआ कि दिल्ली के प्रसिद्ध अमीर खुसरो पान के बयालीस स्पष्ट गुणों का विस्तृत-विवरण दिया है और इसके कुछ ही अवगुणों का उल्लेख किया है।[61]

---

(57) चंदायन, दाऊदकृत, 28/9, 400/1

(58) चंदायन, (मा०प्र०गु०)पद 146,पृ0143,"तारीख-ए-दाऊदी (शेख अब्दुर्रशीद द्वारा सम्पादित)पृ0 81,अमीर खुसरो कृत "एजाज-ए-खुसरवो भाग-1 पृ0 180 तथा रेहला आफ इब्नबतूता, पृ0 16,

(59) पृ0 रा0 (उ0 प्र0) भाग 3 ,दोहा 8 पृ0 4 नरपति नाल्ह कृत " बीसलदेव रासो " पृ0 72 एवं छन्द 91,पृ0 134 ,तारीख-ए-फीरोजशाही (बर्नी) पृ0 78 अमीर खुसरो रचित "नूह-सिफिर (मुहम्मद वाहिद मिर्जा द्वारा सम्पादित) पृ0 160, वर्ण रत्नाकर ,ज्योतिरीश्वर कृत, कल्लोल 2,पृ013 चंदायन दाऊद कृत, 28/4

(60) एजाज-ए-खुसरवी, भाग 2 , पृ0 249-263 तथा खुसरों का "कुल्लियात-ए खुसरवी" भाग 2 पृ0 94

(61) अमीर खुसरों कृत" देवल रानी खिज्र खा पृ0 43 ,

हिन्दुस्तानी पान की बेल को नाग-बेल[62] भी कहते है । अलबेरूनी हिन्दुओं के पान खाने का उल्लेख करते हुए कहता है ," सुपारी को पान एवं चूने में मिलाकर खाने के परिणाम स्वरूप उनके दांत लाल होते है ।[63]

हिन्दू और मुस्लिम दोनो जातियों में सुगंधित जल का प्रयोग होता था । दोनों ही जातियों के उच्चवर्गीय लोगों में "शर्बत" का प्रयोग प्रचलित था । मुस्लिम सूफी अधिकतर अपने रमजान-व्रत शर्बत से ही भंग करते थे ।[64] तीनो त्यौहारों तथा विजयोल्लास के अवसर पर सुल्तान अपनी प्रजा में मुफ्त मिठाइयाँ एवं शर्बत बाँटा करते थे ।[65]

इस्लाम में मदिरा, भांग एवं अन्य नशीले पदार्थ का सेवन वर्जित था ।[66] किन्तु सुल्तानों और कुलीनों में इसका उल्लंघन खूब होता था ।[67] उच्चवर्गीय हिन्दू भी इसके व्यवसनी थे ।[68] हिन्दुओं के मदिरा पान की लत के विषय में अलबेरूनी कहता है, " बिना कुछ खाए ही वे मदिरापान करते है, और तब वे अपना भोजन करते है ।[69]

---

(62) एजाज-ए-खुसरवी भाग 2 , पृ0 263

(63) अलबेरूनीय इण्डिया, (सचाऊ) पृ0 180

(64) अमीर खुसरों कृत " खजाएनुल-फतुह" (सैय्यद मोईनुल हक द्वारा सम्पादि पृ0 83

(65) तारीख-ए-फीरोजशाही , (अफीक) पृ0 88

(66) दि होली कुरआन, मौलवी मुहम्मद अली द्वारा अनुवादित, पृ0 99 मध्यकालीन उत्तर भारतीय सामाजिक जीवन के कुछ पर्क्ष, डा0 किशोर प्रसाद साहु, पृ0 57

(67) विद्यापति कृत कीर्तिलता, द्वितीय पल्लव , छन्द 28, दोहा 178 पृ0।। तारीख -ए-फिरोज शाही (अफीफ) पृ0 146-147

(68) चंदायन दाऊदकृत, 248/7

अलाउद्दीन खिलजी ने मदिरापान पर रोक लगाने का प्रयत्न किया । उसने आज्ञा दी कि राजकीय -गृह के सम्पूर्ण मदिरा-पान न कर पाए । उसने इस बात को भी घोषणा कर दी कि मदिरा की बिक्री बंद कर दी जाए तथा मदिरापान करने वालों को कैद कर लिया जाए ।[70]

सर्वसाधारण का भोजन (आहार)

सर्वसाधारण का भोजन उतना पौष्टिक और विविध नहीं होता था जितना कि उच्चवर्गीय लोगों का । हिन्दुओं का साधारण भोजन चावल (भात)[71] साग 72 तथा अन्य सब्जियाँ 73 थी। जिन्हें अत्यन्त सरल नीति से बनाया जाता था । "सातु" अथवा "सत्तु" [74] (भूने हुए चने अथवा यव का आटा जिसमें चीनी या नमक मिलाकर पानी में घोलकर अथवा सानकर खाया जाता था) आज कल के बिहार और

---

(70) टी० एम० एस० ,के०के० बसु द्वारा अनूदित, पृ० 73, तारीख-ए-फीरोजशाही (बर्नी) 284-285 , अमीर खुसरो कृत "खजायनुल-फुतूह" सैयद मोईनुल हक द्वारा सम्पादित पृ० 18

(71) चंदायन ,दाऊद कृत, 158/1-6

(72) वही, छन्द 156, दो 4, पृ० 168

(73) दाऊद कृत, चंदायन (हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर) छन्द 156, दोहा 1-6 पृ० 168 , पृ० रा० (का० प्र०) पृ० 1998,छन्द 89-96

(74) वही, छन्द 47 , दोहा 3 पृ० 106

उत्तर प्रदेश क्षेत्र के लोगों का यह अत्यन्त प्रिय आहार था । अमीर खुसरो भुट्टे [75] का उल्लेख करता है जो कि साधारण जनता में काफी प्रचलित था । हिन्दू अपने भोजन बनाने की विधि पर विशेष ध्यान रखते थे। भोजन निर्माण के समय गोबर से लीपा जाने तथा निम्नकोटि के व्यक्ति के द्वारा न देखे जाने के उल्लेख समकालीन साहित्य में मिलते है । [76] अलबेरूनी हिन्दुओं के खाने की रीतियों का उल्लेख करते हुए कहता है," हिन्दू गोबर से पुती हुई धरती पर बैठकर अकेले -अकेले एक के बाद एक भोजन करते है । वे भोजन के जूठन का प्रयोग नहीं करते और यदि उनके पात्र मिट्टी के होते है तो भोजनोपरान्त उन्हें फेंक दिया जाता है [77]

मुसलमानों का आहार भी अपने हिन्दू-भाईयों के समान सादा तथा उच्चवर्गीय लोगों के विपरीत ही था । मुसलमानों के भोजन में

---

(75) "कविता कौमुदी भाग-1 रामनरेश त्रिपाठी द्वारा सम्पादित ,नवनीत प्रकाशन पृ0 136

(76) पृ0 रा0 (का0 प्र0) प्र0 1995, छन्द 70 पृ0 1989, छन्द 17

(77) अलबेरूनीज इण्डिया (सचाऊ) पृ0 180

मुख्यता नान,[78] ﴾ तली हुई रोटी ﴿ कबाब[79], मुर्गा कीमा[80] ﴾ पिसा मांस ﴿ और प्रचुर मात्रा में प्याज[81] मिलाया हुआ चावल ﴾ब्रिन्ज﴿[82] का समावेश होता था। मुसलमान सूफियों ﴾सन्तों﴿ के भोजन में फिरनी अथवा शिरनी[83] ﴾ चावल, दूध और चीनी से बना﴿ शीर ब्रिन्ज[84] ﴾ खीर ﴿ दोग अथवा योगुर्त[85] ﴾ दही ﴿ एवं शुष्क फलों में - पिस्ताना[86] ﴾ पिस्ता ﴿ समावेश होता था। इसके अतिरिक्त वे " शोखा ﴾मसाला मिलाया हुआ मांस का शोर﴿ का भी उपभोग करते थे।

﴾78﴿ सीरत-ए-फिरोजशाही फारसी पाण्डुलिपि सं0 99, कैटलाग सं0 547, मध्यकालीन उत्तर भारतीय सामाजिक जीवन के कुछ पक्ष, डा0 किशोर प्रसाद साहू, पृ0 62

﴾79﴿ विद्यापति कृत कीर्तिलता, द्वितीय पल्लव, दोहा 178, पृ0 101

﴾80﴿ अब्दुल्लाह रचित"तारीख-ए-दाऊदी ,फारसी पाण्डुलिपि सं0 100, कैटलाग सं0 548 मध्यकालीन उत्तर भारतीय सामाजिक जीवन के कुछ पक्ष डा0 किशोर प्रसाद साहू, पृ0 62.

﴾81﴿ विद्यापति रचित, कीर्तिलता द्वितीय पल्लव ,छन्द 29-30 दोहा 185 पृ0 105

﴾82﴿ तारीख-ए-दाऊदी फारसी पाण्डुलिपि सं0 100 कैटलाग सं0 548 मध्यकालीन उत्तर भारतीय सामाजिक जीवन के कुछ पक्ष डा0 किशोर प्रसाद साहू पृ0 62

﴾83﴿ विद्यापति कृत "कीर्तिलता द्वितीय पल्लव छन्द 60 , दो 188

﴾84﴿ अमीर हसन देहलवी रचित फवैदुल-फुवाद ,पृ0 91 मध्यकालीन उत्तर भारतीय जीवन के कुछ पक्ष डा0 किशोर प्रसाद साहू , पृ0 62

﴾85﴿ अफसाना-ए-बादशाहत भाग1 ,फोलियो 37

﴾86﴿ अमीर हसन देहलवी कृत फवैद-उल-फुवाद , पृ0 9

इसके अतिरिक्त वे " शोखा) मसाला मिलाया हुआ मांस का भोर)
का भी उपयोग करते थे।

अमीर खुसरो ने हुक्का [87] और चिलम [88] का उल्लेख किया है जो कि निर्धन श्रेणी के लोगों में धूम्रपान के उद्देश्य की पूर्ति करते थे।

खाना परोसने की विधि

सामान्य घर में भोजन स्नान करने के पश्चात किया जाता था ।[89] बड़े भोजन के अवसर पर नेत बिछा दी जाती थी जिस पर सब लोग अपनी स्थिति के अनुसार पंक्ति बद्ध होकर बैठ जाते थे। सम्मानित व्यक्तियों को विशेष आसन पर बिठाया जाता था[90] भोजन का प्रारम्भ भात परोसने से होता जिसे शुभ माना जाता था । भात के पश्चात मांस मसोरा तथा अन्य पदार्थ दोनों में भर कर परोसे गए । इसके पश्चात मतसार) बढ़िया किस्म का चावल) जिसमें घी और खांड तैरता रहता था। विविध पकवानों के साथ अनेक प्रकार के अचार भी परोसे जाते थे।[91] भोजन परोसने का

---

(87) " कविता कौमुदी भाग । , रामनरेश त्रिपाठी द्वारा सम्पादित ,पृ0 139

(88) वही, पृ0 137

(89) चंदायन दाऊद कृ0 , 41/130 , 249/3 एवं फूड एण्ड ड्रिंक इन एन्सीयेन्ट इण्डिया , पृ0 228-29

(90) चंदायन , दाऊद कृत, 161/1, 4-5

(91) वही, 162/1-5

सारा कार्य नाइयों द्वारा ही किया जाता था। भोजन करते समय ओंकार मंत्र का पाठ कर भोजन किया जाता था। [92]

---

[92] पृ० रा० [का० प्र०] पृ० 1995, छन्द 70

आर्थिक स्थिति

वाणिज्य तथा व्यापार:-

भारत वर्ष का शहरीकरण प्राय: उन शहरों के व्यवसायिक केन्द्रों के रूप में परिवर्तित होने के कारण विकसित तथा सशक्त था। और प्राय: इन शहरों को हम नदी तट पर बसा हुआ पाते है। क्यों कि व्यापार बहुधा जल मार्गो द्वारा ही हुआ करता था[1] ये जल-मार्ग सुविधाजनक व कम खर्चीले होते थे साहित्यकारों ने व्यापारिक केन्द्र के रूप में नगरों के वर्णन में सतयुग में काशी, त्रेता युग में अयोध्या , द्वापर में हस्तिनापुर और कलियुग में (इस काल तक) कन्नौज को भारत वर्ष का सर्व श्रेष्ठ नगर घोषित किया है । [2]

समकालीन साहित्य में कन्नौज की समृद्धि, व्यापारिक विनिमय तथा नाना प्रकार के व्यवसायों के कारण एक बड़ी जनसंख्या व उसकी क्रिया शीलता का हमें वर्णन मिलता है। कन्नौज नगर के हाट में घनी जनसंख्या का उल्लेख हमें मिलता है ।

अगम गति हट्ट ति पट्टन मंझ ।[3]

---

(1) अलबेरूनी (संक्षिप्त) पृ0122-124 तथा आईन, पृ0 289-292

(2) पृ0 रा0,(का0 प्र0) 1235 ,छन्द 52,पृ0 1630,छन्द 354,पृ0 1640 छन्द 424 तथा पृ0 1640, छन्द 432 ।

(3) पृ0 रासउ (सम्पादक डा0 माताप्रसाद गुप्त) 4:25:1

तत्कालीन समाज में व्यापारिक प्रवृत्ति का उल्लेख हमें कन्नौज नगर के वर्णन के आधार पर मिलता है। कन्नौज के अधिकतर निवास स्थल सात मंजिल के तथा उन पर फहरती पताकाओं वाले बताए गये है।[4] कन्नौज नगर में दक्षिण की ओर जुआ खेलने का स्थान था उसी के पास वेश्याओं के घर बने हुए थे।[5] जिससे स्पष्ट होता है कि ये दोनों कार्य राज्याश्रय पर होते थे तथा राज्य की आय के प्रमुख स्रोत रहे होंगे।

इसी प्रकार मध्यकाल के एक अन्य प्रमुख व्यवसायिक नगर जौनपुर के वर्णन में विद्यापति ने उसे वैभवपूर्ण वर्णित किया है - उनके विचारानुसार यह नगर क्या था साक्षात लक्ष्मी का विश्राम आँखों के लिए अत्यन्त वल्लभ।

लोअन केरा वल्लहा लच्छी के विसराम।

नगर के बाग-बगीचे, मकान रास्ते रहटबाट पुष्करिणी सोपान और हजारों श्वेत ध्वजों से मंढ़े हुए (मंडित) स्वर्णकलश वाले शिवालयों का सजीव वर्णन मिलता है।[6]

---

(4) पृ० रा० (का० प्र०) पृ० 1630, छन्द 354

(5) पूर्ववत् पृ० 1640 छन्द 424

(6) कीर्तिलता, द्वितीय पल्लव, पृ० 92-95

इसी प्रकार से भीम देव चालुक्य की राजधानी पट्टनपुर का वैभव पूर्ण वर्णन किया गया है। पट्टनपुर नगर बिजली के समान चमकता प्रतीत होता था। यहाँ पर भीड़ अधिक रहती थी, पट्टनपुर व्यापार का केन्द्र था, रत्नों तथा मोतियों की ढेरियाँ थीं और नव निधियाँ नगर में विजारजमान रहती थीं।[7] मोहम्मद गोरी की गजनी में भी मनोहर हाट का उल्लेख मिलता है।

धियास बीर चावुरी सुढारह हट्ट सोहयं।
विभास नभ्भ सनि कौ सुभिद्द मोह मोहमं।[8]

उपरोक्त से, उत्तरभारत के प्रमुख शहरों की एक छटा अथवा झलक देखी जा सकती है, इन नगरों की प्रकृति व स्वरूप लगभग एक जैसा ही था

समकालीन बाजारों में पान की दुकानों का उल्लेख सर्वाधिक प्राप्त होता है। अल्बेरूनी के वक्तव्य से भी स्पष्ट होता है कि मध्यकाल में भारतवासी अत्यधिक पान का सेवन करते थे। अतः पान का व्यापार व व्यवसाय प्रगति पर था।[9]

- -

7- पृ० रा०, का० प्र० समय 42, छन्द 50-51-55।

(8) पूर्ववत, समय 67, छन्द 143-144-145-147-148

(9) अलबेरूनी (संक्षिप्त) पृ० 237 (प्रकाशक, नेशनल बुक ट्रस्ट) अर्धकथा, पृ० 3, पृ० रा०, का० प्र०, पृ० 1641, छन्द 425, तथा अल्बेरूनी (साचाऊ) पृ० 237, हेरम्ब चतुर्वेदी 113-114

इस काल में वस्त्र उद्योग सबसे अधिक प्रगति पर था।

इसी प्रकार वस्त्र का व्यवसाय भी उस काल में प्रगति पर था तथा वे हर प्रकार के सूती व रेशमी वस्त्र बेचा करते थे।

विवेक बजाज सु बेचहि सार। सुअत बवासर सूझहि तार।[10]

उपरोक्त से स्पष्ट होता है कि वस्त्र व्यापार से सम्बद्ध व्यक्ति बजाज कहलाते थे। वस्त्र उद्योग से ही सम्बद्ध दो अन्य व्यवसाय थे एक बुनकरों अथवा वस्त्र बुनने वालों का जिन्हें जुलाहा भी कहा जाता था।[11] तथा दूसरे रंगरेज का उल्लेख मिलता है जो वस्त्रों को विभिन्न रंगों में रंगने के अतिरिक्त वस्त्रों की छपाई का कार्य भी करते थे।[12] इसी प्रकार पूरे पृथक रेशम उद्योग का वर्णन भी हमें प्राप्त होता है जिससे स्पष्ट होता है कि रेशम के कीड़ों से रेशम तैयार करने की विधि से भारतवासी मध्य युग में भली भांति परिचित थे।[13] इस प्रकार रेशम आदि के वस्त्रों में महीन कारीगरी होती थी कि उसके तार-तार उत्कृष्ट दिखाई देते थे।[14]

- -

(10) पु० रा०, का० प्र०, पृ० 1641, छन्द 438 तथा पृ० 550, छन्द 46

(11) पु० रा०, उ० प्र०, समय 1, छन्द 4 जुलाहों के लिए समय 14, छन्द 93 एवं चंदायन पृ० पृ० 247, पद254, पृ० 270, पद277, पृ० 23, पद 25; अलबेरूनी (सचाऊ) I पृ०47 तथा डा० शेफाली चटर्जी शर्की सुल्तानों का इतिहास, पृ०217

(13) चांदायन, पृ० 4-5, पद 5

(14) पु० रा० का० प्र०, पृ० 550, छन्द46 तथा चंदायन पृ० 4-5, पद 5

इसी प्रकार हमें ज्ञात होता है, कि उस काल में गुजरात की साड़िया बहुत प्रसिद्ध थीं और उसी से स्पष्ट हो जाता है कि गुजरात के छापे की साड़ियों का व्यापार भी उन्नति पर था। तथा उत्तरभारत में बड़ी मात्रा मेंमेंसाड़ियाँ व्यापारियों द्वारा लाई जाती थी तथा उनकी बिक्री का उल्लेख हमें प्राप्त होता है ।[15]

इसी प्रकार में सुनारो अथवा स्वर्ण तथा बहुमूल्य रत्नों से सम्बद्ध व्यापारी व्यवसायियों का भी उल्लेख प्राय: मिलता है। इन्हें जौहरी , सुनार स्वर्णकार आदि सम्बोधनों से पुकारा जाता था । [16]

समकालीन साहित्य में स्वर्ण व्यवसाय अत्यन्त उन्नत बताया गया है । जिसमें महोबा में पारसमणि का उल्लेख मिलता है, जिसके द्वारा लोहे का ढेर सोना बन जाता था। इसी साहित्य में मणियों को आकाश में उड़ता दिखाया गया था । [17]

- -

§15§ चांदायन ,पृ0 91 पद 93

§16§ पृ0 रा0, §का0 प्र0 § पृ0 1641, छन्द 441, पृ0 1642, छन्द 444, पृ0 रा0 उ0 प्र0, समय 1, छन्द 4, समय 48, छन्द 201 स्वर्णकार के लिए वही ग्रंथ ,समय 34 छंद31 तथा समय 58 छन्द 201, चंदायन पृ0 247, पद 254, पृ0 270, पद 277, पृ0 23, पद 25, [डा0 प्रसन्न कुमार आचार्य भारतीय संस्कृति और सभ्यता] पृ0 120

§17 § परमाल रासो, सम्पादक डा0 श्याम सुन्दर दास § का0 प्र0 § खण्ड 2 छन्द 164 तथा खण्ड 2 छन्द 170 ।

कन्नौज तथा दिल्ली में मणियों, नगों, हीरों लालों (रत्न) मुक्ताओं आदि का अम्बार बताया गया है। जिससे यह ज्ञात होता है कि इनका उत्खनन होता था, तत्पश्चात विभिन्न प्रकार की वस्तुओं आभूषणों का निर्माण होता था।[18]

समकालीन साहित्य से पता चलता है कि राजाओं के पास अतुलनीय सोना होता था। पृथ्वीराज के द्वारा कर्नाटी वेश्या को प्रशिक्षण देने वाले गुरु को बीस सेर स्वर्ण प्रदान करने का भी उल्लेख हमें मिलता है। सलखराज अपनी बेटी के विवाह में पच्चीस मन सोने के बर्तन दहेज में देते है। महाराज सोमेश्वर को सोने से तौले जाने का विवरण भी मिलता है।[19]

सोने के आभूषणों के साथ-साथ सोने के तारों से वस्त्रों को सुशोभित करने के विवरण भी हमें प्राप्त होते है।

कसिक्कसि हेम सु काढ़त तार। उगंत कि हंसह झुन्न प्रकार।[20]

---

(18) पृ0 रा0 (का0 प्र0) पृ0 1641, छन्द 44। तथा बीसल देव रासो, पूर्वोद्धृत पृ0 115, छन्द 35

(19) पृ0 रा0 (का0 प्र0) पृ0 966, छन्द 56, पृ0 560, छन्द 123-124, पृ0 329, छन्द 51

(20) पृ0 रा0, (का0 प्र0) पृ0 1641, छन्द 44।

कन्नौज तथा दिल्ली में मणियों, नगों, हीरों लालों (रत्न) मुक्ताओं आदि का अम्बार बताया गया है। जिससे यह ज्ञात होता है कि इनका उत्खनन होता था, तत्पश्चात विभिन्न प्रकार की वस्तुओं आभूषणों का निर्माण होता था।[19]

समकालीन साहित्य से पता चलता है कि राजाओं के पास अतुलनीय सोना होता था। पृथ्वीराज के द्वारा करनाटी वेश्या को प्रशिक्षण देने वाले गुरु को बीस सेर स्वर्ण प्रदान करने का भी उल्लेख हमें मिलता है। सल्खराज अपनी बेटी के विवाह में पच्चीस मन सोने के बर्तन दहेज में देते है। महाराज सोमेश्वर को सोने से तौले जाने का विवरण भी मिलता है।[19]

सोने के आभूषणों के साथ-साथ सोने के तारों से वस्त्रों को सुशोभित करने के विवरण भी हमें प्राप्त होते है।

कसिक्कसि हेम सु काढ़त तार। उगंत कि हंसह चून्न प्रकार।[20]

---

(19) पृ0 रा0 (का0 प्र0) पृ0 1641, छन्द 441 तथा बीसल देव रासौ, पूर्वोद्धृत पृ0 115, छन्द 35

(19) पृ0 रा0 (का0 प्र0) पृ0 966, छन्द 56, पृ0 560, छन्द 123-124, पृ0 329, छन्द 51

(20) पृ0 रा0, (का0 प्र0) पृ0 1641, छन्द 441

मध्यकालीन भारत में शासक सामन्त वर्गो की सवारी तथा युद्धों में गति प्राप्त करने हेतु घोड़ों का प्रयोग करते थे। अतः उनकी मांग बहुत अधिक बढ़ गई थी। अच्छी नस्लों के घोड़े प्रायः मध्य एशिया से क्रय किये जाते थे जिससे कि स्पष्ट है कि यह विदेशी व्यापार प्रगति पर था। समकालीन साहित्य में अरब के सौदागरों से अरबी घोड़ों[21] साथ ही, इराकी घोड़ों[22] तथा काबुल के भी घोड़ों के क्रय किये जाने के उल्लेख मिलते है तथा घोड़ों के अलावा गाय बैल घोड़ों के झुंड बनाकर व्यापारी बेचने ले जाते थे।[23]

उस काल में बड़े व्यापारी दलों का होना एक आम बात थी। एक व्यापारिक दल में सात सौ व्यापारी तक हुआ करते थे।[24] ये व्यापारी अनेक पदार्थों के व्यापार में संलग्न थे जैसे-मोम, मंजीर चिरौंजी सुपारी, नारियल, लवंग, छुहारा मोदक इत्र तेजपत्ता, ब्राह्मी तथा हीरे तांबा, चांदी अगरू, वीरण (खस), चैना (कपूर) आदि[25]

- -

(21) पूर्ववत, (का० प्र०) पृ० 2053, छन्द 175

(22) पूर्ववत, पृ० 2061, छन्द 212 तथा

(23) परमाल रासो, पृ० 235, छन्द 1519 तथा बीसल देव रासो (डा० माता प्रसाद गुप्त) पद 49

(24) चांदायन, पृ० 339-339, पद 340

(25) वही, पृ० 339-340, पद 341

व्यापारी -व्यवसायी वर्ग अत्यधिक समृद्ध व सम्पन्न था। हमें समकालीन नगर सेठों तथा उनकी करोड़ों की धन सम्पत्ति का भी उल्लेख मिलता है। जहाँ पर एक ओर सात खण्डों वाले राज प्रसाद थे, वहीं पर दूसरी ओर नगर के व्यापारियों के निवास स्थान भी ऊँचे श्वेत ध्वजापूर्ण बताये गये है ।[26] इसी प्रकार शासकों व सामन्तों के विशाल भवनों व सिंह द्वारों का वर्णन प्राप्त होता है , जिसके अनुसार सिंह द्वारा को कुशल सुतारों या गढ़ने वालों के बनाकर रखा था, जिस पर सिंह को बैठे हुए दिखाया गया। देखने में वे एकदम सजीव लगते थे। ऐसा

ऐसा मालूम होता था कि कारीगर ने एक ही सूत (नाप-जोख) में उसे बनाया था। उस पर चाँदी का पानी चढ़ाया गया था। इसी प्रकार राज प्रसाद को हिंगुल का पानी डालकर लाल किया जाता था ।[27]

इसी प्रकार एक सप्तभौमिक प्रसाद का उल्लेख प्राप्त होता है जिसमें सात चौखण्डियाँ थीं तथा सातों चौखण्डियों में सात कलश बनाकर रखे गये थे। जिस पर सोने का पानी किया गया था। सोने के खम्भे मणिक्यों से जटित होते थे तथा ये ऐसा आभास देते थे कि जैसे वे तारिकाओं से भरे हुए हो तथा उसमें अगरू, चंदन, तथा उबटने की महक बनी रहती थी ।[27(१)]

---

(26) पृ० रा० (का० प्र०) पृ० 1556, छन्द 30 एवं पृ० 2129 , छन्द 16।

(27) चंदायन, (सम्पादक , डा० माता प्रसाद गुप्त) पद 29-30 , पृ०26-29

समकालीन साहित्य से ऐसा आभास मिलता है कि मनुष्यों के क्रय-विक्रय का कार्य भी किया जाता था।

दस गुन लाभ देब महं तो कहं लोरू "बेसाहइ" जाइ।[28]

इसी प्रकार क्रय-विक्रय के लिए कीर्तिलता में घोड़ों के बदले में घी लेने का विवरण मिलता है।

सिक्कों के रूप में दीनार (हेम), मोहर, हून, रूपया, (रूप) दाम और कौड़ी टंका आदि का उल्लेख मिलता है। व्यापार के लिए वस्तु विनियम के माध्यम से भी क्रय-विक्रय किया जाता था। समकालीन साहित्य में जिसका उल्लेख मिलता है।

सहस अट्ठ हम सत्थ, सहस पंचह सौदागर।
आइ सपत्ते तत्थ, धरि घन्नौ आदर वर।
मंस एक हम लक्खि, सहस दूनह हय रक्खे।
द्रव्य समप्पिय धीर, अमित आदर तिय दिक्खे।
संभरिय वत्त सहावसौं दूत सपत्ते साहि दिसि।
पुणि पत्र धीर सौदागरह, आई सपत्ते ठाम असि।[29]

---

(28) चंदायन पृ० 357, पद 360; कीर्तिलता तृतीय पल्लव, छन्द 102, पृ० 295

(29) पृ० रा० (उ० प्र०) समय 60, छन्द 104, पृ० 935-936

सिक्के के रूप में " मोहर " का तथा " हेम' नामक मुद्रा का विवरण प्राप्त होता है, जो " दोनार " के ही समकक्ष था ।[30]

मोहम्मद गोरो की बेगमों द्वारा मक्का जाने के समय आठ लाख " हून" पृथ्वोराज के सामन्तों को लूटते हुए बताया गया है । " रूपया" या " रूप " का भो वर्णन मिलता है ।

जिते रूप के भूप चुप्पे जुआरो । [31]

इस काल में " दाम " और 'कौडो' सिक्कों के प्रयोग का भो उल्लेख मिलता है ।[32]

{30} परमाल रासो, सम्पादक, डा0 श्याम सुन्दर दास, का0 प्र0 , खण्ड 18, छन्द 26 एवं खण्ड 24, छन्द 97 तथा पृ0 रा0, का0 प्र0, पृ0 507 , छन्द 125

{31} पृ0 रा0 {का0 प्र0} पृ0 1351, छन्द 29 एवं पृ0 रासउ {डा0 माता प्रसाद गुप्त} 4 : 23 : 3

{32} पृ0 रा0 {का0 प्र0} पृ0 2061 , छन्द 212, पृ0 59 , छन्द 294

व्यापारिक वस्तुओं के यातायात के लिए हाथी ऊंट बैल और कांवर आदि का प्रयोग किया जाता था। शिकार के द्वारा मृत जानवरों को हाथियों और ऊंटों पर लाद कर लाया जाता था। इसी प्रकार से सामान ढोने के लिए "कांवर" का प्रयोग किया जाता था।

कांवरि कंधं कहार किंतिक स्वामीनमुख छुट्टिय ।[33]

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का उल्लेख समकालीन साहित्यों में दृष्टिगोचर होता है। अजमेर के स्वामी के द्वारा अरब के सौदागरों से घोड़े खरीदे जाते थे और उनका मूल्य सवा लाख " दाम " दिया जाता है।

---

§33§ पूर्ववत , पृ0 314, छन्द 105 तथा चांदायन सं0, डा0 माता प्रसाद गुप्त पृ0 339, पद 341, कांवरि के लिए देखिए पृ0 रा0 § उ0 प्र0 § समय 5, छन्द 56 तथा समय 61, छन्द 20, तथा समय 14, छन्द 76 तथा समय 16, छन्द 56

मुंह मांगि दाम करे कौल बोल। तिहे पंत्र से हवर हेरि मोलं।

जमा जोरि मेंहे सवा लष्ष दाम। लिये कागद कायंय अंक तामं।[34]

इसी प्रकार धीर पुण्डीर भोईराकी घोड़े को पन्द्रह लाख

दाम में खरीदता है।[35] महाराजा परमाल काबुली घोड़ों के लिए अदल

को चौदह खच्चरों पर मोहरें लदवा कर भेजते हैं।[36]

तत्कालीन भारत में वस्तुओं के मूल्य की भी जानकारी

क्रय-विक्रय के माध्यम से होती है।

ऐश्क तुरिय से पंच लै सौदागर ईसप कहै।

दिए दाम दस लष्ष, पंच लष्षह रहि बाकिय।[37]

---

(34) पृ0 रा0 (का0 प्र0) पृ0 2053, छन्द 175

(35) पूर्ववत् , पृ0 2061 , छन्द 212

(36) परमाल रासो, पृ0 235, छन्द 15-19 ,

(37) पृ 0 रा0 (का0 प्र0) 2061, छन्द 212 कीर्तिलता तृतीय पल्लव

पृ0 295, छन्द 91-104

ब्याज पर रुपये देने की प्रथा का उल्लेख भी समकालीन साहित्य में मिलता है - अतः उस काल में ब्याज पर ऋण लेने देने की व्यवसायिक - व्यवस्था थी ।

प्रथम मूल दिजिज्यै। ब्याज आवै कै नावै ।[38]

जिससे स्पष्ट होता है कि, व्यापारियों का एक वर्ग ब्याज पर ऋण देने का कार्य करता था। अतः यह वर्ग समृद्ध रहा होगा ।

राजस्व व्यवस्था अथवा राज्य के आय के स्रोत :-

तत्कालीन राज्य शक्ति का मुख्य आधार राज्य-कोष ही था । राज्य-कोष में विविध करों से शत्रुओं के नगर और धनागारों को लूटने से युद्ध के उपरान्त की गयी संधियों से और युद्ध में हारे हुए राजाओं के द्वारा दी गई भेंटों से सम्पत्ति इकट्ठी होती थी ।

---

(38) पूर्ववत् , पृ0 1339, छन्द 9।

समकालीन साहित्य में भूमिकर तथा चुँगी वसूली का विवरण नहीं दिया है परन्तु यह उल्लेख मिलता है कि राजा को प्रजाजनों से भूराजस्व उसी प्रकार से वसूल करना चाहिए, जिस प्रकार माली फूल और फलों को पेड़ पौधों से तोड़ता या चुनता है ।[39]

भूमिकर के अतिरिक्त जलकर जो कि "सांभरि झील " से वसूल किया जाता था, इस प्रकार का उल्लेख मिलता है । इस झील को पृथ्वीराज के द्वारा पृथाकुमारी के विवाह समय पर यह अधिकार रावल समर विक्रम को दहेज के रूप में दे दिया गया था ।

त्रितिय फिरत भंवरि । दयौ संभरिउदक्ककर ।[40]

- -

(39) पृ0 रा0, सम्पादक डा0 श्याम सुन्दर दास, का0 प्र0 , पृ0 2266, छन्द 965

(40) पूर्ववत् , पृ0 662 , छन्द 159

इसो प्रकार से भोला भीम भो बन्दरगाह से मिलने वाले धन को कैमास को देने का प्रलोभन देता है।

मध्य प्रहर जंमोह्वि , द्रव्य आवै बहु बंदर ।
सो अप्पौं चालुक्क , करै क्यमास इन्द्र घर ।[41]

समकालोन साहित्य में युद्ध में हारे एक राजा की सम्पत्ति को ग्यारह हाथियों पर लदवा कर खट्टवन से लाकर राजकोष में जमा किया जाता है ।[42]

इसो प्रकार बड़े शासक अपने आधोन अनेक राजाओं से कर वसूलने का कार्य सम्पन्न करते थे। पृथ्वोराज के द्वारा मुहम्मद गोरो को युद्ध में हराने के बाद बन्दो बनाकर लाया गया था। गोरो को बन्दोगृह से मुक्त करने के पूर्व संधि के रूप में अतुल धन-सम्पत्ति ग्रहण किए जाने का भो उल्लेख है ।[43]

---

(41) पृ० रा० (उ० प्र०) भाग 2 छन्द 84,

(42) पृ० रा० , सम्पादक डा० श्याम सुन्दर दास (का० प्र०) पृ० 756 छन्द 483

(43) पूर्ववत x पृ० 1257, छन्द 211, पृ० 1118, छन्द 134 ,

समकालीन साहित्य में भी इसका विवरण मिलता है। पृथ्वीराज के द्वारा महोबा पर आक्रमण करने पर महोबा के महाराज परमर्दि देव से पचास करोड़ प्राप्त करने की आकांक्षा व्यक्त करते हैं।[44]

तत्कालीन भारत में पराजित शत्रुओं के नगरों, खजानों आदि की लूट-पाट के द्वारा राजकीय कोष में वृद्धि की जाती थी। मुहम्मद गोरी की बेगमों की लूट पाट करके चामुण्डराय को सम्पत्ति संग्रह करते हुए भी समकालीन साहित्य में दिखाया गया है।

गहि बेगम सब सत्थ, लुटि लिय खास खजीना।[45]

एक अन्य स्थान पर मुहम्मद गोरी की सम्पत्ति लूटने के विवरण मिलते हैं।[46] सामान्यतः आर्थिक दृष्टि से समृद्ध व्यक्ति सामाजिक दृष्टि से प्रतिष्ठित धनवान माने जाते थे।[47]

---

(44) परमाल रासो (सम्पादक डा० श्यामसुन्दर दास) खण्ड 23, छन्द 49

(45) पृ० रा० (उ० प्र०) भाग -3, पृ० 304, छन्द 13

(46) पृ० रा०, सम्पादक, डा० श्याम सुन्दर दास (का० प्र०) पृ० 1374, छन्द 645।

(47) पृ० रासउ (आसो प्रकाशन) 6:15:16

मंगन, कृपण, निर्धनों और दरिद्र समाज में निम्न वर्गीय थे। इनमें कोई भी उच्च स्थान के अधिकारी नहीं थे।[48]

तत्कालीन आर्थिक जीवन इस बात की ओर इशारा था इंगित करता है कि प्रजाजन और राजन्य वर्ग आर्थिक संकट से मुक्त थे। विभिन्न उत्सवों, आभूषणों भेंटों और दान आदि में सम्पत्ति का उपभोग किया जाता था।[49]

कृषि पर आधारित :-

इसी प्रकार हमें कृषि पर आधारित उद्योग अथवा कृषि से सम्बन्धित लघु उद्योग की जानकारी भी प्राप्त होती है। उदाहरण के लिए सबसे पहले हमें ईख अथवा गन्नों के द्वारा शक्कर तथा खांड़ उत्पादन का उल्लेख मिलता है।

---

(48) पूर्ववत 8:5:3 तथा 8:5:2 तथा 2:5:16 एवं 6:15:16 एवं 5:14:2 ।

(49) पूर्ववत 2:3:56-63, 2:3:58 एवं 5:44 तथा 4:10:13-14 व 2:1:14

यहीं नहीं, ईख द्वारा खांड अथवा शक्कर बनाने की विधि की भी जानकारी प्राप्त हो जाती है ।[50] इसी प्रकार हमें फूलों के उद्यानों का भी वर्णन मिलता है जिनकी देख भाल के लिए अनेक माली नियुक्त किए जाते थे ।[51] फूलों पर ही आधारित फूल बेचने का कारोबार था । ये फूल सुंगध के लिए, सजावट के लिए विवाह मंडप से लेकर सभा स्थल एवं शयन कक्ष तक मिल जाते थे। पूजा अर्चना तथा शादी-विवाह पर भी फूलों का प्रयोग एक आम बात थी अत: इसका व्यापार समृद्ध रहा होगा । हमें अपने अध्ययन काल में पुष्प मालाओं का भी वर्णन मिला है । स्त्रियाँ दौना, मरवा, कुंद और निवारी पुष्पों के हार गूंथ कर बेचती है।[52] मलिनें घरों में फूलों की टोकरियां भर-भर कर ले जाती जो स्त्रियों के सूंघने, बालों में सजाने का काम आते है ।[53] इसी प्रकार से फूलों का श्रृंगार विधि से अविभाज्य तथ्य के रूप में अनेक वर्णन मिलते है ।

- -

§50§ पृ० रा० § का० प्र० § पृ० 1949, छन्द 16 तथा पृ० रा०; उ० प्र०, समय 61, छन्द 71

§51§ चांदायन पृ० 25 तथा पृ० 204, दो 210 तथा कीर्तिलता द्वितीय पल्लव पृ० 92-95 तथा डा० प्रसन्न कुमार आचार्य , भारतीय संस्कृति और सभ्यता पृ० 120

§52§ चंदायन 25412, पृ० रासउ § झांसी प्रकाशन § 24:25:7-9, चंदायन § दाउदकृत § 29/1/5

§53§ चंदायन § दाउद कृत § 276/1-3 , 439/3, 221/1, 322/X6-7

फूल अपनी गन्ध कोमलता और सुन्दरता के कारण सभी को लुभाने व इसी कारण बाजारों में विविध प्रकार के फूल बिकते थे[54]

उस काल में हमें नाना प्रकार के पेशों अथवा व्यवसायों का वर्णन मिलता है जैसा कि सामाजिक वर्गीकरण के अध्याय से स्पष्ट हो गया है कि इस व्यवसाय से जुड़े हुए लोग अलग पेशेवर जातियों में एकत्र हो संगठित होते जा रहे थे।[55] इसी से यह स्पष्ट होता चलता है कि प्रत्येक व्यवसाय काफी प्रगति पर विकसित व स्थापित हो चला था। विवरण देना इस अध्ययन के लिए अपरिहार्य है।

---

§54§ पृ० रा० § का० प्र० § खण्ड 11, छन्द 17, पृ० 803 छन्द 810 तथा पृ० 1975 छन्द 106, दाऊद कृत चंदायन, 28/1,5

§55§ देखें वर्तमान शोध प्रबंध में अध्याय सं० 2

सर्वप्रथम हम उस काल के व्यापार -व्यवसाय पर अपना ध्यान केंद्रित करें। प्राची भारत में, सिन्धु-घाटी सभ्यता-काल से ही देशी तथा विदेशी व्यापार व व्यवसाय का हमें वर्णन मिलता है।[56] यह व्यापार व व्यवसाय इसी प्रकार चलता रहा तथा तेरहवीं चौदहवीं शताब्दियों के समकालीन साहित्य में तत्कालीन आर्थिक स्थिति वणिज्य, व्यवसाय कृषि, व्यवसायिक मुद्रायें, आयात -निर्यात मूल्यों , खनिज पदार्थो, विभिन्न उद्योगों क्रय-विक्रय जीविका के साधन , भिक्षा वृत्ति राजकोष आदि पर पर्याप्त वर्णन मिलता है। तथा इसमें तत्कालीन भारत को धन-धान्य से समृद्ध बताया है और समस्त प्रजावर्ग को सुखी बताया है।[57]

इसी प्रकार हमें ग्रामीण जीवन का आधार कृषि का वर्णन प्राप्त होता है। रानी राजमति ईश्वर से प्रार्थना करती है कि मुझे जाटनी बनाया जाता जिससे कि मै अपने पति के साथ खेती कर सकती और स्वतंत्र तथा सुखी रह सकती।[59]

- -

§56§ डा0 राम जी उपाध्याय, प्राचीन भारतीय साहित्य को सांस्कृतिक भूमिका , पृ0 747

§57§ पृ0 रा0 § सं0 डा0 श्याम सुन्दर दास, का0 प्र0 § पृ0 591, छन्द14

§59§ बीसलदेव रासो § सं• डा0 माता प्रसाद गुप्त § छन्द 92, पृ0 163

भूमि उत्पाद का वर्णन समकालीन साहित्य में प्राय: काम-केलि को पुष्प भूमि के रूप में किया गया है ।[59] कृषि उत्पादन के लिए वर्षा का जल जरूरी होता था बरसात न होने पर सिंचाई के लिए उस काल में शासक वर्ग द्वारा पुर तथा रहट अथवा पैर चलाकर पानी का प्रबन्ध किये जाने के वर्णन मिलते है।[60] इसी प्रकार हमें चरसा ढंकली और रहट का उल्लेख भी मिलता है ।[61] वस्तुओं में " केसर "[62] चावल ,[63] ताम्बूल ,[64] पुष्प [65] गन्ना [66] साग-सब्जी [67], मक्का [68]

---

§59§ पृथ्वीराज रासउ , § डा० माता प्रसाद गुप्त § 2:5:32-42 तथा बीसलदेव रासो § सम्पादक डा० माता प्रसाद गुप्त § छन्द 73, पृ० 155

§60§ पृ० रा० § का० प्र० § छन्द 583, पृ० 1665

§61§ परमाल रासो § सं० श्याम सुन्दर दास का० प्र० § खण्ड 19 छन्द 102

§62§ पृ० रा० § उ० प्र० § समय 58, छन्द 309

§63§ वही, समय 1, छन्द 4 तथा चंदायन का सांस्कृतिक समावेश § डा ज्ञान चंद शर्मा § पृ० 61

§64§ वही, समय 58, छन्द 300

§65§ वही, समय 58 , छन्द 300

§66§ वही समय 61 छन्द 71

§67§ वही समय 61 छन्द 71

तथा कुछ अन्य अन्नों [69] का विवरण मिलता है। गेहूँ पीसकर आटा, खांड, घी, नमक, तेल, मसाले तथा नारियल खजूर पान की खेती होती थी सेंधनमक, अनार दानें तथा विभिन्न प्रकार की सब्जियों का उल्लेख समकालीन साहित्य में मिलता है।[70] दुर्भिक्ष के कारणों में एक कारण " टिड्डी " दल द्वारा फसलों का नष्ट किया जाना भी वर्णित है।[71]

मध्य काल में वेश्यावृत्ति एवं द्यूतक्रीड़ा के द्वारा सम्पत्ति के अपव्यय का परिचय मिलता है।[72] प्रासादों आवासों रनिवासों और पूजागृहों के निर्माण में राजकोष धन लगाया जाता था, किन्तु सर्वाधिक व्यय सेना और सेवकों के लिए ही किया जाता था।

---

§69§ पृ0 रा0 § उ0 प्र0 § समय 61, छन्द 71

§70§ चंदायन § डा0 माता प्रसाद गुप्त § पद 42, पृ040, पद 92, पृ090 पद 145, पृ0 142, पद 146, पृ0 143, पद 150, पृ0 147ऽ, पद 194, पृ0 189-190, पद 147, पृ0 144

§71§ पृ0 रा0 § का0 प्र0 § छन्द 16, पृ0 1949 एवं आदिकालीन हिन्दी रासो काव्य परम्परा एवं भारतीय संस्कृति § डा0 राकेश चतुर्वेदी § पृ0 151

§72§ पृ0 रासउ § झांसी प्र0 § +:23:7-9 एवं 4:23:3 बीसलदेव रासो पृ0 143, दो 61, पृ0 रा0, का0 प्र0 खण्ड 1, छन्द 132, पृ रा0 का0 प्र0 1440·, छन्द 42

तहं तबै अधिप सुवोन प्रवोन तिदासि दस ।[73]

इसी प्रकार हमें अन्य प्रमुख व्यवसायों लघु अथवा कुटीर उद्योगों के भी उल्लेख प्राप्त होते है। अपनी जिविकोपार्जन के लिए लोग जिस प्रकार के व्यवसायों को अपना रहे थे वे उसमें प्रगति कर पेशेवर जातियों में परिवर्तित हो रहे थे तथा जाति रूपी संगठन के चलते पुन: समृद्ध व उन्नत हो रहे थे। ग्रह नक्षत्रों की स्थिति से फलाफल का विचार भविष्य कथन ज्योतिष के अन्तर्गत आते है। ज्योतिष एक ऐसा शास्त्र है जिसकी प्रतिष्ठा भारत में चिरकाल से है ।

उस काल में लोग अंध विश्वास के चलते ज्योतिषियों पर बहुत अधिक विश्वास करते थे अत: भविष्य वक्ता या भविष्यवाणी करना एक लाभदायक व्यवसाय हो गया था शासक, सामन्त व समृद्ध वर्ग अवश्य ही इनकी सेवाएँ नियमित प्राप्त करते थे ।[74]

---

§73§ पूर्ववत् 9:6:4: व 2:27:1 एवं 9:4:1 तथा 2:1:13

§74§ पृ० रा० §का० प्र० § पृ० 148 , छन्द 712, पृ० रा० §उ० प्र०§ पृ० 21, समय 1, छन्द 44 तथा चांदायन , पृ० 31, छन्द 33 तथा चंदायन 39/1 एवं 290/2 एवं चंदायन 422-24

किसी भी शुभ कार्य के प्रारम्भ से पूर्व ज्योतिष के आधार पर उसके फलाफल की चर्चा कर लेना आवश्यक समझा जाता था। जन सामान्य के प्रतिदिन के कार्यक्रम- विवाह, नामकरण आदि में अतः ये बड़ी संख्या में रहे होंगे।[75]

ब्राह्मण मध्यकालीन धार्मिक और नैतिक जीवन की धुरी के रूप में प्रतिष्ठित थे। जन्म-विवाह आदि विविध संस्कारों और धार्मिक अनुष्ठानों में उनकी उपस्थिति अनिवार्य होती थी जहाँ वे मंत्रपाठ आदि द्वारा इनको सम्पन्न करवाते थे। उनका विशेष ज्ञान उनकी जीविका का साधन बनता था। विवाह संबन्ध निश्चित करवाने के लिए ब्राह्मण की सेवाएँ ली जाती थीं।[76]

---

(75) पृ० रा० (का० प्र०) पृ० 147, छन्द 705 तथा 710 एवं चंदायन 39/1 पृ० रा० (उ० प्र०) भाग 3, पृ० 95, छन्द 19

(76) बीसलदेव रासो (डा० माता प्रसाद गुप्त) पद 9-9, पृ० 91-92 पृ० रा० (का० प्र०) पृ० 69, छन्द 341 तथा पृ० रा० (उ० प्र०) भाग 3, पृ० 256, छन्द 16 एवं चंदायन का सांस्कृतिक परिवेश (डा० ज्ञान चन्द्र शर्मा) पृ० 63

मध्यकाल में भाट युद्ध के समय वीरों को गीत सुनाकर प्रोत्साहित करते थे तथा वंश परम्पराओं के कार्य कलापों (वंशावली) का बखान भी किया करते थे।[77]

प्रशस्ति गायकों में सरस्वती, साधक कवि चन्दबरदायी दुर्गाकेदार, प्रशस्ति गायकों और बन्दीजनों का भी पृथक व्यवसाय उन्नत हो गया था। ये अपने समय के राजा महाराजाओं की वीरता और शौर्य की प्रशंसा काव्य के रूप में करते थे।[78] ये तन्त्र मन्त्र को जानने वाले, स्वप्न फल वैधक तथा शकुन शास्त्र में सिद्ध हस्त होते थे।[79] शारीरिक रोगों का निदान और उपचार चिकित्सा के अन्तर्गत आता है चिकित्सा -शास्त्र के ज्ञाता को वैद्य कहते है। मध्य काल में औषधि देने का कार्य वैद्य किया करते थे वैद्य लोग सदैव नाड़ी पकड़ कर ही रोग का निदान करते थे। [80]

---

(77) पृ० रा०, (का० प्र०)549, छन्द 44 तथा पृ० 2607, छन्द 707 तथा परमाल रासो (का० प्र०) खण्ड 21, छन्द 40, चंदायन 42/7, 119 16-7, 120/1, 129/7

(78) पृ० रा० (उ० प्र०) समय 1, छन्द 47 तथा, समय 56, छन्द 41, समय 56, छन्द 26-39, समय 59, छन्द 269, समय 59, छन्द 327

(79) पृ० रा० (का० प्र०) पृ० 604, छन्द 9, तथा परमाल रासो (का०,प्र० खण्ड 2409, छन्द 177-191

(80) चंदायन, 164/45 एवं 164/3

चिकित्सा के अन्तर्गत ही एक विशेष व्यवसाय गारूड़ी का है जो सर्पदंश का विष उतारता है। इसे गुणी भी कहते है। गारूड़ी का उपचार तंत्र-मंत्र पर आश्रित था।[81] इससे स्पष्ट होता है कि मध्य काल में " गुणियों " का स्वतंत्र व्यवसाय था, जो अपने कार्य से मुंहमांगा धन पाते थे ।

भारत एक नदियों का देश माना जाता है। मध्यकाल में नदी पार करने के लिए संरगे [नाव] का सहारा लिया जाता था यह कार्य केवट द्वारा किया जाता था इसके लिए उसे समुचित पारिश्रमिक मिलता था अतः यह स्पष्ट होता है कि, केवटों का भी विशेष व्यवसाय था, जिनका कार्य नदी के तट पर ही था ।

संरगा ढांउ जऊ केवट आवा। कर कंगन चांदइ चमकावा।[82]

उपरोक्त से स्पष्ट होता है कि नदी और उसके आस-पास रहने के कारण ही यह वर्ग नदी से प्राप्त मछली आदि का भी सेवन भोजन के रूप में करता रहा होगा ।

- -

[81] चंदायन, 337/1 एवं 359/4, 359/3,6,-7

[82] चांदायन [सम्पादक डा० माताप्रसाद गुप्त] पृ० 290-291, पद 287-299 तथा पृ० रा० [उ० प्र०] चंदायन 304/2-3,305/1-2,307/1-3

सामान्य व्यवसाय:-

प्राय: राजपरिवार सामन्तों व समृद्ध जन की स्त्रियाँ अपने यातायात के लिए डोलियों का प्रयोग करती थीं। अत: इन डोलियों को उठाने वाले कहारों का भी एक महत्वपूर्ण पेशा था ।[93] इसी प्रकार धोबियों का भी उल्लेख हमें समकालीन साहित्य में प्राप्त होता है । जो उच्च वर्गों के कपड़े आदि धोने का कार्य करते थे।[94]

इसी प्रकार हमारे अध्ययन काल में मिट्टी के बर्तन भाड़ों का अत्यधिक प्रयोग होता था जिससे स्पष्ट हो जाता है कि मिट्टी के बर्तन बनाने वाले कुम्भकारों का भी व्यवसाय काफी उन्नत था। सामाजिक व धार्मिक अनुष्ठानों पर भी प्राय: मिट्टी के बर्तन ही प्रयुक्त होते थे अत: समाज को यह वर्ग आवश्यक सेवाएँ उपलब्ध कराता था ।[85]

---

§93§ पृ0 रा0 § उ0 प्र0 § भाग-1, समय 6, दो.65 समय 14 छन्द 76 समय 19 छन्द 56 पृ0 396 , छन्द 56 चांदायन पृ0 37-39 दो 40 इब्नबतूता पृ0 119 तारीख-ए-फरीश्ता, खण्ड 1, पृ0 422, फुतहाते -फिरोजशाही पृ0 अमीर खुसरो कृत देवल रानी खिज्रखा पृ0 49

§94§ दाऊद चंदायन 439/1 चांदायन § डा0 माता प्रसाद गुप्त§ पृ0 247, पद 254, पृ0 270, पद 277 तथा वर्ण रत्नाकर प्रथम कल्लोल पृ0 1 , मृगावती पृ0 367, दो 424 तथा हेरम्ब चतुर्वेदी पृ0 86-97

§85§ पृ0 रा0 § उ0 प्र0 § पृ0 5 तथा पृ0 162 कवित्त 54, चंदायन

मध्यकालीन भारत में मकान आदि के निर्माण से लेकर खेतो में प्रयुक्त होने वाला हल , यातायात हेतु पालकी, रथ अथवा बैलगाड़ी घोड़े की काठी , घरों में बैठने के लिए सामान्य रूप से चौकी पीढ़ा आदि चूँकि सब लकड़ी के होते थे अत: काष्ठ शिल्प एक समुन्नत व्यवसाय था ।[86]

इसी प्रकार तलवार से लेकर साधारण मकान, मंदिरों, हल तथा रहट आदि के निर्माण में लुहार का कार्य महत्वपूर्ण था अत: लौह उद्योग भी बारहवीं तेरहवीं शताब्दियों में पर्याप्त रूप से विकसित था । [87]

इसी प्रकार मध्यकालीन भारत में तेल उत्पादन से लेकर तेल बिक्री तक का कार्य तेली लोग किया करते थे । [88]

---

(86) पृ0 रा0 (उ0 प्र0) समय 1 , छन्द 74 , समय 4 , छन्द 1 समय 34, छन्द 31, समय 38 , छन्द 11, समय 58, छन्द 201, समय 61, छन्द 34; पृ0 रा0 (उ0 प्र0) समय 12, छंद 21; मृगावती पृ0 28, दो 35; चांदायन पृ0 114, दो 116, पृ0 153, दो 156, तथा हेरम्ब चतुर्वेदी पृ0 49,

(87) चांदायन , पृ0 22, दो 24, पृ0 रा0 समय 12, छन्द 23 तथा मृगावती पृ0 28 , दो 35

(88) पृ0 रा0 (उ0 प्र0) समय 1, छन्द 4, चांदायन, (डा0 माता प्रसाद गुप्त) पृ0247, पद 254, पृ0 270, पद 277-चंदायन 439/1 391/4-5

इसी से मिलता जुलता उद्योग इत्र का था। सम्पन्न वर्गों द्वारा इसका प्रयोग प्रचुर मात्रा में होता था जैसा कि सौंदर्य प्रसाधन वाले अध्याय से स्पष्ट भी हो जाता है कि ये उद्योग भी विकसित उद्योग था। गंधी फूलों की गंध निकालने और इत्र तथा सुगन्धित द्रव्यों का विक्रय करने का धन्धा करते थे। [89]

इस काल में हमें कलालों के वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि शराब का प्रयोग भी सदैव की भांति पर्याप्त होता था। [90]

इसी प्रकार लगभग हर व्यक्ति द्वारा जूता चप्पल पहनने का उल्लेख हमें समकालीन साक्ष्यों में तथा अन्य प्रकार के अनेक वस्तुओं के निर्माण में चर्म एक आवश्यक तत्व होता था। अतः चर्म उद्योग भी पर्याप्त रूप से विकसित था। [91]

---

(89) पृ० रा० (उ० प्र०) समय 12 , छन्द 30, समय 5, छन्द 93

(90) पृ० रा० (का० प्र०) पृ० 733 छन्द तथा पृ० 1005 छन्द 70 एवं परमाल रासो खण्ड 2 , छन्द 142-143 एवं चिन्तामणि विनायक वैद्य हिन्दू भारत का अन्त, पृ० 40

(91) चंदायन (डा० माता प्रसाद गुप्त) पद 85, पृ० 93, वर्णरत्नाकर प्रथम कल्लोल पृ० 1, बीसलदेव रासो पद 97, पृ० 179-180 तथा कीर्तिलता, द्वितीय पल्लव, छन्द 27, दोहा 169, पृ० 96 तथा हेरम्ब चतुर्वेदी पूर्वो० पृ० 194-196

इस काल में कुछ वर्ग अपना जीविकोपार्जन दूसरों के मनोरंजन द्वारा करते थे जैसे कि वेश्यायें एवं नर्तकियाें [92] तथा बाजीगर, नट व नटी । [93] इसी प्रकार हमें कुछ नौकरों व सेवकों के भी उल्लेख प्राप्त होते है ये गृह कार्य में दक्ष होते थे और प्राय: दास व दासी के नाम से सम्बोधित किया जाता था । [94] ये तत्कालीन भारत में आय के साधनों में प्रमुख थे ।

कुछ व्यवसाय धूर्तता एवं पाप पर आधारित थे जिन्हें विधि (न्याय) की दृष्टि से भी अपराधिक माना जाता था । कुछ लोग लगभग हर जगह इस प्रवृत्ति के शिकार थे अत: इनके उल्लेख हमें

---

(92) पृ० रा० (का० प्र०) पृ० 960 , छन्द 50, वर्णरत्नाकर कल्लोल चतुर्थ, पृ० 26-27; कीर्तिलता द्वितीय पल्लव, छन्द 16, दो 113-118 पृ० 78-79; पृ० रा० (का० प्र०) पृ० 1640 , छन्द 427-430 , पृ० 2375 छन्द 1642, एवं चंदायन 42/7 तथा 251/4-5 पृ० रा० (उ० प्र०) समय 29 छन्द 4-8-9 तथा समय 59, छन्द 318-319, 321 एवं समय 13 छन्द 3 तथा के० एम० अशरफ पृ० 229

(93) पृ० रा० (उ० प्र०) समय 59, छन्द 112 एवं समय 1, छन्द 74 चांदायन पृ० 186-187, दो 191, तथा हेरम्ब चतुर्वेदी पृ० 187

(94) चांदायन, पृ० 187-188, दो 192, पृ० 190, दो 195, पृ० रासउ (डा० माता प्रसाद गुप्त) 5:21; 6:15:9; 5:29:1; 3:4:2; 45:20:1

समकालीन साहित्य में निरन्तर प्राप्त होते है उदाहरण के लिए चोर (ठग) तथा डाकू[95] राह में राहगीरों को लूटने वाले ठग अथवा बटवार- ।[96] तथा इसी प्रकार हमें तस्करों का भी उल्लेख प्राप्त होता है ।[97] तत्कालीन समाज में इन्होंने आतंक उत्पन्न कर दिया था । इसी प्रकार हमें भिक्षुओं अथवा भिखारियों का भी उल्लेख मिलता है कि कुछ लोग इसी को अपना पेशा बनाए हुए थे।[98]

---

(95) चांदायनपृ० 199 , दो० 193, पृ० 192 , दो। 197, पृ० 196-197, दो 202, पृ० रा० (उ० प्र०) समय 50, छन्द 74, समय 58 छन्द 395 बीसलदेव रासो पृ० 143, दो 61,

(96) चांदायन पृ० 54 , दो 56, पृ० रा० (उ० प्र०) समय 50, छन्द 74 समय 59, छन्द 395

(97) चांदायन पृ० 9-9, दो 9, पृ० 179, दो 183

(98) पृ० रासउ, पृ० 21। कवित्त 4, पृ० रा० (उ० प्र०) समय 1, छन्द45 समय 6, छन्द 4-5 एवं चांदायन , पृ० 169, दो 174

मध्यकालीन भारत में हमें कुछ नवीन व्यवसायों का भी उल्लेख मिलता है उदाहरण के लिए मशालची के व्यवसाय का। बिजली के आविष्कार के अभाव में उस काल में समृद्ध वर्ग अपने यहाँ मशालचियों को नियुक्त करते थे जिनका कार्य इनको मरम्मत करने तथा जलाने के अतिरिक्त अपने स्वामियों के चलने पर उनके मार्ग को रोशन करते थे।[99] हाथी आदि को देखभाल के लिए महावतों को नियुक्ति एक आम बात थी।[100] इसी प्रकार हमें शासकों सामन्तों के यहाँ पर (निवास पर) चामर धारियों की नियुक्ति का उल्लेख प्राप्त होता है।[101] सम्पन्न वर्गों के सदस्यों के यहाँ दासों और नौकरों के अतिरिक्त रसोईयों का भी उल्लेख उस काल के साहित्य में प्राप्त होता है।[102] भोजन से ही सम्बद्ध तथा भोजन प्राप्त करने के लिए विशेष रूप से सामाजिक धार्मिक आयोजनों पर हमें पत्तल के प्रयोग का उल्लेख हमें मिला है। अतः पत्तल निर्माण कार्य भी महत्वपूर्ण था।[103]

---

(99) चांदायन पृ० 183-195, दो 188-199

(100) चांदायन पृ० 131, दो 134,

(101) चांदायन पृ० 132, दो 135

(102) चांदायन पृ० 142, दो 145,

(103) चांदायन पृ० 147, दो० 151

इसी प्रकार दूध दही घी आदि के विक्रय को हम पशु-पालन से सम्बद्ध उप व्यवसाय कह सकते है। यह कार्य मुख्य रूप से स्त्रियाँ ही करती रही है। ब्रज की गोपियां इसका उदाहरण है। समकालीन साहित्य में भी विवरण मिलता है।[104] पशु पालन हमारे देश के प्राचीनतम व्यवसायों में से एक है। इन्हें पालने वाले अहीर अथवा ग्वाल अथवा गोपालक कहलाते थे।[105]

अन्य व्यवसाय :-

मध्यकाल में अपने नाम के अनुरूप अपने विशेष व्यवसायों का उल्लेख मिलते हैं। जिनमें धागर, धुनी, नाई परजापीनी आदि जातियों का विवरण मिलता है।[106]

---

(104) दाऊदकृत, चंदायन, 4421/1-2, 427/1, चंदायन (सं0 डा0 माताप्रसाद गुप्त) पद 397, पृ0 392-393, पू0 रा0 (का0 प्र0) पृ0 582, छन्द 32

(105) दाऊद चंदायन, 215/1, 263/4 तथा पृ0 रा0 (उ0 प्र0) समय 21 छन्द 23-25

(106) दाऊद कृत पृ0 रा0 (का0 प्र0) पृ0 592, छन्द 33 चंदायन, 26/1-5

धागर एक निम्न वर्ग की जाति थी जिसकी स्त्रियाँ जन्म के अवसर पर शिशु की नाल काटने का एवं सूतिका गृह के अन्य काम करती थीं।[107] चूनी, चूना बनाने का कार्य करते थे।[108] नाई का मुख्य कार्य बाल बनाना है। परन्तु भारतीय समाज में नाई का स्थान अन्य दृष्टियों से भी महत्वपूर्ण है। विवाह सम्बन्ध पक्का करने के लिए वह ब्राह्मण के सहायक के रूप में जाता है।[109] सुख-दुख के विविध अवसरों पर नाई संदेश वाहक का कार्य करता है। समकालीन साहित्य में भोज के समय आगन्तुकों को बुलाने के लिए भेजा जाता तथा खाना परोसते बताया गया है।[110]

---

(107) परमेश्वरी लाल गुप्त, चंदायन पृ० 90, पा० टि० 2

(108) चंदायन, 26 11-5

(109) चंदायन (डा० माताप्रसाद गुप्त) पद 35-36, पृ० 33-34, पद 254, पृ० 247, दाउदकृत चंदायन 37/6 41/2

(110) परमाल रासो (का० प्र०) खण्ड 15, छन्द 157, चंदायन दाउद कृत 151/2, 151/4 तथा 391/4-5, 93/23, चंदायन (डा० माता प्रसाद गुप्त) पद 152 पृ० 148

मध्यकाल में नाई की स्त्री कुलीन घरों की स्त्रियों के तेल मर्दन, उबटन एवं महावर लगाने, सिर गूंथने आदि का कार्य करती है। विविध संस्कारों के अवसर पर बिरादरी में निमन्त्रण देना मिठाई आदि बांटना भी इन्ही के जिम्मे रहता है। इन सब के लिए इन्हें नेग या उपहार प्राप्त होता है।[111] उच्च और कुलीन वर्गों के लोगों के साथ सम्पर्क होने के कारण नाई सामान्यतः व्यवहार कुशल और शिष्टाचार के नियमों को जानने वाले होते थे।

समकालीन साहित्य में हमें परजा-पौनी।[112] जाति का उल्लेख मिलता है। ये परजा पौनी या प्रजा जातियाँ उच्चवर्ग के कुलीन लोगों की सेविका के रूप में गांवों में रहती थी। शादी-विवाह और मुंडन-छेदन पर इन जातियों के लोग अपने परम्परागत कर्तव्यों का पालन करते थे बदले में इन्हें वस्त्राभूषण एवं नेग-न्यौछावर प्राप्त होते थे।[113]

---

(111) चंदायन, दाउद कृत, 52/12, 448/1, एवं पृ० रा० (का० प्र०) पृ० 902, छन्द 304 तथा 550, छन्द 49 तथा पृ० 551, छन्द 53 तथा पृ० 1025, छन्द 57 एवं पृ० 1994 तथा परमाल रासो (का० प्र०) खण्ड 21 छन्द 9।

(112) चंदायन दाउद कृत, 26/1

(113) वही, चंदायन का सांस्कृतिक परिवेश (डा० ज्ञान चन्द्र शर्मा) पृ० 66-67

सामान्य व्यवसाय:-

मध्यकाल में कतिपय कुछ जातियाँ जो लोकोपयोगी विविध सामान्य व्यवसायों में निरत रहती है।[114] भड़भूंजा कोरी, धोबी, धाय आदि के व्यवसाय प्रमुख है।[115] इन व्यवसायों से समाज की अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। संभवत: धोबी कुलीन वर्गीय परिवारों के वस्त्र धोने का कार्य करते होंगे। इससे सम्बन्धित हमें समकालीन साहित्य में साबुन का उल्लेख मिलता है।

हनि मीर कंध चहुआन भ्रत, वहिग तंति जनु सब्बनिय ।[116]

साबुन को स्नान करने व वस्त्र धोने का कार्य में लाया जाता होगा।

---

§114§ दाउद कृत चंदायन 51/4

§115§ वही, 439।1, चंदायन § माता प्रसाद गुप्त § पद 254, पृ0 247 पृ0 रा0 § उ0 प्र0 § समय 61, छन्द 71 तथा समय 8, छन्द 23

§116§ पृ0 रा0 § उ0 प्र0 § कवित्त 46, § माधो भट्ट कथा § पृ0 236

इसी प्रकार जंगली पशु-पक्षियों को पकड़ -मार कर जीवन निर्वाह करना " पारधी " का व्यवसाय था। इन्हें बहेलिया व्याध आदि अन्य नामों से पुकारा जाता है।[117]

बारी का व्यवसाय दोनों-पत्तल बनाकर जीविकोपार्जन करना है। विशेष अवसरों पर पत्तलों और दोनों का प्रयोग होता था।

नूत-नूत पल्लव परवरि पत्रावलि मंडिप।

धोय तोय बिन छिद्र धरे दोना ढिंग ठंडिय।[118]

मध्यकाल में हमें भोजन सामग्री तैयार करने वाले रसोइयों का उल्लेख भी मिलता है।[119] जो कि कुलीन घरों में नित्य प्रति नवीन भोजन सामग्री तैयार करती थी।

मध्यकाल मे समाज आत्म निर्भर था। विविध आवश्यकताओं के अनुसार ही लोग अलग अलग-व्यवसाय अपनाते थे।

---

§117§ दाउद कृत , चंदायन 151 § 6 एवं कड़वक, 152 , 154 तथा 343 ए. चंदायन § डा0 माता प्रसाद गुप्त § पृ0 139 दोहा 142 एवं पृ0 140 दोहा 143

§118§ पृ0 रा0 § का0, प0 § पृ0 1995, छन्द 70, चंदायन § डा0 माता प्रसाद गुप्त§ पृ0 147 दोहा 151 पृ0 39 पद 41

§119§ पृ0 रा0 § का0 प्र0 § पृ0 1999, छन्द 96 एवं पृ0 1989 छन्द 14 तथा चंदायन § डा0 माता प्रसाद गुप्त § पृ0 142 , छन्द 145 पृ0 148 , छन्द 152

इस्लाम के प्रवेश से पूर्व भारतवर्ष में ब्राह्मण, (हिन्दू) बौद्ध और जैन तीन प्रमुख धर्म प्रचलित थे। प्रतिष्ठा के चरमशिखर को छूने के पश्चात बौद्ध और जैन धर्मों का पतन प्रारम्भ हुआ। कुमारिल भट्ट और शंकराचार्य के धर्माभियानों ने इन दो धर्मों को भारत से निर्मूल कर दिया। विराट और उदार हिन्दू धर्म ने इन्हें कुछ इस प्रकार आत्मसात् कर लिया कि इनकी प्रथक सत्ता समाप्त हो गई। गौतम बुद्ध की गणना विष्णु के मुख्य दशावतारों में होने लगी। प्रसिद्ध चौरासी सिद्धों में से अनेक ऐसे थे जो बौद्धों और शैवों द्वारा समान रूप से पूजित थे।[1]

इसी प्रकार इस काल में जैन धर्म भी हिन्दू धर्म का अंग बन गया था। धार्मिक असहिष्णुता और वैमनस्य का जो वातावरण बन चुका था, उसमें भी परिवर्तन आने लगा और विभिन्न धर्मों में परस्पर एक दूसरे के लिए सम्मान की भावना जागृत होने लगी। सामाजिक स्तर पर हिन्दुओं तथा बौद्धों एवं जैनियों में परस्पर विवाह-सम्बन्ध होने लगे थे।[2] सह-अस्तित्व की इस स्वस्थ भावना ने हिन्दू धर्म में एक नई प्राण-शक्ति का संचार किया था।

- -

1-मध्ययुगीन भारतीय, संस्कृति (एक झलक), डा०युसुफ हुसैन, पृ०1, हिन्दी साहित्य कोश, पृ०389, पृ०रा० (का॰पृ॰) पृ०2030, छन्द 73 तथा पृ० 2202, छन्द पृ578 तथा पृ०1965, छन्द 71 तथा पृ० 1574, छन्द 68 तथा प०रा० (क्रा०पृ०) खण्ड2, छन्द 87 तथा वही पृ० 449, छन्द9, पृ० 71 छनद 352,

2-गौरी शंकर हीरानन्द ओझा, मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, पृ० 30 प०रा० (का०पृ०) पृ०449, छन्द 9 तथा पृ०482, छन्द 214 तथा पृ० 491, छन्द 278, पृ०71, छन्द 352 तथा पृ० 494, छन्द 288,

हिन्दू धर्म की विशेषता उसकी बहुरूपता में है। मूल वैदिक धर्म से लेकर बहुदेवोपासना के विविध रूपों तक अनेक मतमतान्तरों के होते हुए भी आस्था का एक ऐसा सूत्र है जो भिन्न-भिन्न और कहीं-कहीं परस्पर विरोधी तत्वों को दृढ़ता से बांधे हुए है। ब्रह्मा, विष्णु और शिव के पूजकों में परस्पर एकता के परिणाम स्वरूप ही पंचायतन पूजा प्रचलित हुई। विष्णु, शिव, रुद्र, देवी, और सूर्य सभी देवता एक ईश्वर की भिन्न-भिन्न शक्तियों के प्रतीक माने जाने लगें।[3] सब को अपनी इच्छानुसार किसी भी अथवा सभी की उपासना की स्वतंत्रता थी। अवलोकित काल में यदि एक वैष्णव को मानने वाला था तो दूसरा शैव मत को और तीसरा भगवती का उपासक था तो चौथा परम आदित्य भक्त था।[4]

भारतवर्ष में मुस्लिम साम्राज्य की स्थापना के संध्या के समय हिन्दू धर्म, वैष्णव, शैव, शाक्त आदि अपने विविध सम्प्रदायों के रूप में व्यवहरित था। नाथ और सिद्ध योगी इसके साधनात्मक रूप का प्रचार कर रहे थे। दर्शन के क्षेत्र में उन दिनों शंकराचार्य के अद्वैतवाद का भी प्रचार हो चुका था।

- -

3- पृ०रा (उ०प्र०) समय।, छन्द 13, तथा समय।, छन्द 1, समय 58, छन्द 134, पृ०रा० (का०प्र०) पृ052, छन्द 264-268, गौरी शंकर हीरानन्द ओझा, मध्य कालीन भारतीय संस्कृति, पृ0 30,

4- वही, पृ0 33, पृ०रा०(उ०प्र०) समय 58, छन्द 413, समय 36, छन्द 59, तथा मध्ययुगीन भारतीय संस्कृति (एक झलक), डायुसुफ हुसैन, पृ08-10.

नव विकसित विशिष्टाद्वैतवाद और द्वैतवाद का भी प्रचार हो चला था । ये दार्शनिक सम्प्रदाय धार्मिक आंदोलन के रूप में लोकप्रिय हो गये थे ।[5] जिनका परिणाम निर्गुण और सगुण भक्ति धाराओं में दिखलाई पड़ता है । साथ ही बौद्ध, जैन योग और चार्वाक दर्शन-पद्धतियों का भी प्रचलन था । सिद्धों, नाथ-पंथियों ने योग-दर्शन का विशेष विकास किया । एक ओर वेदान्त, न्याय, योग आदि सम्प्रदाय ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध कररहे थे तो दूसरी ओर सांख्य सम्प्रदाय निरीश्वरवाद के प्रचार में लगा हुआ था । पूर्व मीमांसक यदि कर्मकाण्ड का प्रतिपादन कर रहे थे, तो वेदान्ती ज्ञान के द्वारा ही मोक्ष-प्राप्ति को प्रमाणित कर रहे थे ।[6] इसी प्रकार, इस काल में, दक्षिण में भी भक्ति धारा प्रवाहित हो चुकी थी । इस प्रकार तत्कालीन भारत के आध्यात्मिक जीवन में कर्म ज्ञान और भक्ति तीनों की व्याप्ति थी ।

विविध-धार्मिक सम्प्रदाय

समाज में अनेक देवताओं तथा धर्म-सम्प्रदायों का प्रचलन था ।

वैष्णव मत:-

विक्रम की चौदहवीं शताब्दी में वैष्णव श्री सम्प्रदाय के प्रधान आचार्य

5- वही,पृ076-77,पृ0रासउ (मा0प्र0गु0)4:13:3 तथा 12:7:7,तथा मध्ययुगीन भारतीय संस्कृति डा यूसुफ हुसैन0 पृ08-9.

6- वही, पृ0 79 तथा मध्ययुगीन भारतीय संस्कृति, डा0 युसुफ हुसैन, पृ010.

श्री राघवानन्द जी ने अपनी अंतिम अवस्था में श्री रामानन्द को अपने सम्प्रदाय में दीक्षित किया जिन्होंने सारे देश में घूम कर अपने मत का प्रचार किया ।[7] आचार्य रामानुज के श्री सम्प्रदाय में तो विष्णु या नारायण की उपासना का ही विधान था परन्तु परवर्ती आचार्यों ने विष्णु के अवतार के रूप में राम और कृष्ण तथा लक्ष्मी के अवतार-रूप में सीता और राधा की भक्ति का समावेश भी इस सम्प्रदाय में कर दिया था । भक्ति का यही स्वरूप अधिक लोक प्रिय हुआ । राम-पर्वों पर रामायण का पाठ होता था, तथा लोगों के घरों में रामायण और महाभारत के पात्रों और प्रसंगों को लेकर चित्रांकित किए जाते थे ।[8] समाज के विशेष वर्गों में तो वैष्णव धर्म के ब्राह्म आचरण का भी पूरी तरह से पालन होता था । समकालीन साहित्य में हमें सिरजन का जो रूप वर्णित होता है, वह वैष्णव मान्यताओं के अनुरूप है । सिरजन के माथे पर द्वादश तिलक है, बगल में पोथी, हाथ में वैसारवी, कान में अनंत मुद्रा दोनों कलाइयों में राखी, कन्धे पर जनेऊ तथा तन पर धोती धारण करता था । वह वेदों तथा धर्म ग्रंथो का ज्ञाता था ।[9]

- -

7- रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ0101, तथा मध्ययुगीन भारतीय संस्कृति, डा0 युसुफ हुसैन, पृ012-13,

8- चंदायन दाउदकृत 29/2, 225/2-3, मध्ययुगीन भारतीय-संस्कृति (एक-झलक) डा0 युसुफ-हुसैन, पृ06-8, तथा

9- चंदायन दाऊद कृत 420/2-5, तथा बीसल देव रासो, छन्द 102·

णर्वों के धार्मिक अनुष्ठानों व कर्मों का दर्शन हमें समकालीन साहित्य में प्राप्त ता है ।[10]

प्रमत :-

शैवमत के प्रति चिरकाल से भारत के जन साधारण को श्रद्धा रही है । मध्यकाल में भी शिवभक्ति हिन्दू जन-साधारण और हिन्दुधर्म के प्रभाव में आने वाली जातियों का धर्म था ।[11] समकालीन साहित्य में भी इसकी अभिव्यक्ति हुई है । शिव एक आशुतोष देवता है जो थोड़ी सी भक्ति से रीझ जाते है । पूजा पाठ और व्रत अनुष्ठान की जटिल विधियों का पालन कर पाने में असमर्थ जनसाधारण के लिए भोलानाथ की भक्ति बहुत सरल व सहज है, जिससे वर प्राप्त करना आसान था । सभी वर्गों के लोग एकत्र हो कर सोमनाथ- भगवान शिव की पूजा करते हैं ।[12]

योगी और सिद्ध सम्प्रदाय:-

इस काल में समाज में विविध योगी सम्प्रदायों का विशेष प्रभाव था ।

10- वही

11- पृ०रा० [उ०प्र०] समय,58, छन्द 413, तारा चन्द, इनफ्लुएन्स ऑफ इस्लाम आन इंडियन कल्चर, पृ० 131,

12- दाऊदकृत चंदायन, 251/6-7 एवं 254/4 एवं हिन्दी साहित्य कोश पृ0389 परमाल रासो, [का०प्र०] खण्ड 1, छन्द 173, खण्ड 2, छन्द 274, खण्ड2, छन्द 178, खण्ड 4, छन्द 131, खण्ड 10, छन्द 454, पृ०रा० [उ०प्र०] भाग 1, पृ0 410, छन्द 23,

उनमें सर्वाधिक प्रभाव नाथपंथी योगियों का था। इस सम्प्रदाय के साधकों के अपने नाम के आगे नाथ शब्द जोड़ने के कारण इसका नाम नाथपंथ पड़ा। जिसमें योगपरक पाशुपत शैवमत का विकास हुआ।[13]

योग साधना के इस मार्ग ने जन साधारण को ऐसा अभिभूत किया कि लोग ईश्वरोपासना के अन्य मार्ग छोड़कर अनेक प्रकार के तंत्र-मंत्र गुह्य-साधना आदि में उलझ गये। उनका विश्वास योग के द्वारा उपलब्ध अलौकिक सिद्धियों पर केन्द्रित हो गया। समकालीन साहित्य में हमें नाथ-पंथी योगियों का वर्णन प्राप्त होते है। नाथ-पंथी योगी कानों पर स्फाटिक मुद्रायें धारण करते है। यह नाथ पंथियों का एक विशेष चिन्ह है जिसके कारण उन्हें कनफटा योगी भी कहा जाता है।[14] इसके अतिरिक्त ये सिर पर सेली, गले में रुद्राक्ष की माला, लंगोटा-योगपट्ट कंथा, खड़ाऊ आदि को धारण करते, मुख पर भस्म, हाथ में अधारी आसन के लिए बघ छाला, खप्पर व सिंगी लेकर तथा बजाने के लिए हाथ में किंगरी रहती थी।[15] नाथपंथी योगियों का यह रूप चिरकाल से इसीप्रकार चला आ रहा है। ये योगी भेरा डमरू डाक बजाते है, सींगी पूरते है तथा त्रिशूल लेकर बैठते जो शैव धर्म का प्रतीक है।[16]

13-हिन्दी साहित्य कोश, पृ0 389

14-हिन्दी साहित्य कोश, पृ0 389, तथा चंदामन, दाउदकृत 164/1-7

15-चांदायन, दाउदकृत 164/1-7

16-चंदायन, वहीं 20/4-5, 164/6, 88 356/5

17-वही, 337/5,

यह इस काल में योग साधना और शिवभक्ति की एकरूपता की ओर संकेत करता है । नाथ पंथियों का प्रभाव कहाँ तक था, इसका अनुमान इस बात से किया जा सकता है कि समकालीन साहित्य में सामान्य जन द्वारा ईश्वर के लिए नाथ पंथियों द्वारा प्रचारित नाम अलख-निरंजन का प्रयोग किया जाता है ।[17] साधना के बहिष्कार के जिस सिद्धान्त का प्रतिपादन गोरखनाथ ने किया था, परवर्ती योगियों ने उस को मान्यता नहीं दी । वे संभवतः पंच प्रकार की साधना-पद्धति का अनुसरण करने लगे थे ।[18] ये तंत्र-मंत्र ही भोली भाली जनता को बहलाने फुसलाने के मुख्य साधन थे ।

<u>सिद्ध:-</u> साधना में निष्णात, अलौकिक सिद्धियों से सम्पन्न चमत्कार-पूर्ण अति प्राकृतिक शक्तियों से युक्त व्यक्ति सिद्ध कहलाते थे। परन्तु हिन्दी में यह शब्द बौद्ध सिद्धाचार्यों के लिए रूढ़ हो गया जो पूर्वी भारत में तांत्रिक साधनाएँ करते थे और प्रज्ञोपायात्मक युगनद्ध द्वारा सिद्ध प्राप्त करते थे । [19] अपने व्यापक सामाजिक प्रभाव के कारण नाथ पंथियों में जहाँ अनाचार का समावेश हो रहा था और वे समाज के लिए आतंक का कारण बन रहे थे, वहाँ सिद्ध अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए जन साधारण की सहायता कर के उनकी

-- - -- - - - - - - - - - -- - - - - - - --- - - - - - --

(17) वहीं, 337/5

(18) चंदायन, 374/1-3, चंदायन का सांस्कृतिक परिवेश पृ0 28

(19) हिन्दी साहित्यकोश पृ0 853

सहानुभूति प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील थे ।[20] समकालीन साहित्य में हमें इसका उदाहरण मिलता है ।

इस्लाम का प्रवेश :-

यात्रा और व्यापार के लिए मुसलमानों का भारत आना मुहम्मद के जीवन काल में प्रारम्भ हो चुका था । उनके प्रभाव से कुछ हिन्दुओं द्वारा इस्लाम धर्म स्वीकार करने के भी कुछ उदाहरण मिलते हैं ।[21] महमूद गजनवी के भारत आक्रमणों (सन् 1000 ई0 से 1027 ई0) से केवल मुसलमानों का आगमन ही सतत् नहीं हुआ बल्कि उनका प्रभाव भी बढ़ा । महमूद का लक्ष्य मुख्य रूप से इस देश को लूटपाट कर इस्लाम की शक्ति से आतंकित करना था । अपने प्रत्येक आक्रमण के साथ वह अतुल धनराशि लूट ले जाता तथा मंदिर-मूर्तियों का विध्वंस करा निरीह लोगों को मौत के घाट उतारा जाता था ।[22]

ये आक्रमणकारी अपने साथ एक धर्म भी लेकर आए जिसकी श्रेष्ठता के प्रति इन्हें अटूट विश्वास था । यह नया धर्म इस्लाम, एकेश्वरवादी और हजरत मुहम्मद को ईश्वर का संदेशवाहक मानने वाले थे । विजेता होने के कारण, इनमें से कुछ लोग अपने इस धर्म को जबरदस्ती यहाँ के लोगों पर लादना भी चाहते थे ।

20- चंदायन, 371/6-7, 372/2, 377/4, 378/1-2,

21- डा0 यूसुफ हुसैन ग्लिमसेस ऑफ मेडिवल, पृ012, टी0 डब्ल्यू एरनाल्ड, दि

21- प्रिचींग आफ इस्लाम, पृ0 261-65·

22- ए·बी· पाण्डे, अर्ली मेडुवल इण्डिया, पृ0 12-13,

किन्तु अल्पसंख्यक होने के नाते यह सुलभ रूप से असंभव नहो था अत: उन्होंने लोगों को धर्म बदलने के लिए प्रेरित व आकर्षित किया ।[23]

इस्लाम-धर्मावलम्बियों का एक ऐसा वर्ग भी था जो तलवार के बल पर नहीं बल्कि प्यार के बल पर धर्म का प्रचार करता था । ये सूफी सन्त कहलाते थे । ये जन साधारण के साथ रहकर उन्हें धर्म परिवर्तन के लिए प्रेरित करते थे ।[24] सूफियों के धार्मिक सिद्धान्त भारतीय विचार धारा के साथ बहुत साम्य रखने के कारण सहज ही लोकप्रिय हो गये । [25] मुसलमानों के स्थायी रूप से भारत में बस जाने के साथ दो पृथक संस्कृतियों को निकट से एक दूसरे के सम्पर्क में आने और समझने का अवसर मिला तथा जीवन के विविध क्षेत्रों में परस्पर आदान-प्रदान प्रारम्भ हो गया । धर्म और दर्शन भी इससे अछूते न बचे । हिन्दुओं ने मुसलमानों के एकेश्वरवाद, सूफियों के प्रेमतत्व तथा भावात्मक रहस्यवाद और अपनी धर्म-साधना में स्थान दिया तो सूफियों ने भारतीय वेदान्त और साधनात्मक रहस्यवाद को स्थान दिया ।[26]

- -

23-ए0बी0 एम0 हबीब-उल्लाह, दि फाउडेशन आफ मुस्लिम रूल इन इण्डिया पृ0।
मो0 मुजीब, "द इण्डियन मुस्लिम" एवं युसुफ हुसैन पृ0 ।2

24-डा0 ताराचन्द पृ0 46, युसुफ हुसैन पृ0 36-37, तथा मो0 हबीब, सुल्तान आफ गजनी पृ0 82,

25-युसुफ हुसैन, पृ0 33 तथा लईक अहमद, भारतीय मध्यकालीन संस्कृति पृ0 32-33, हिन्दी साहित्य की भूमिका हजारी प्रसाद द्विवेदी पृ0 62-63,

26-युसुफ हुसैन प्रथम दो अध्याय, लईक अहमद, भारतीय मध्यकालीन संस्कृति पृ0 32-33
हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल पृ0 55-67.

इस प्रकार शबे- बारात पर दीपमाला और मुहर्रम के अवसर पर ताजिया का जलूस स्पष्टतः दीवाली और रथयात्रा जैसे हिन्दू उत्सवों से काफी हद तक प्रभावित है ।[27] पुण्य तिथियों पर गरीबों को भोजन खिलाने की प्रथा मुसलमानों ने हिन्दुओं की श्राद्ध पद्धति से ग्रहण होगी । [28]

सूफी तत्वों का समावेश :-

सूफी विचार-धारा का उद्गम इस्लाम का ईश्वर की एकात्मक सत्ता (वहदत उल-वजूद) सम्बन्धी मूल सिद्धांत है जिसका अभिप्राय है कि मन के भीतर और बाहर जो कुछ भी भाव या पदार्थ रूप में विद्यमान है, वह एक वही है, जिसे विश्व, प्रकृति, यथार्थ, सत्य अथवा ईश्वर किसी की भी संज्ञा से अभिहित (कथित) किया जा सकता है । गोचर में अगोचर का आभास सूफी रहस्यवाद का बीज है, जिसकी परम परिणति शेखमुहम्मद-बिन बंसो के अनुसार हर वस्तु में ईश्वर की सत्ता देखने में होती है ।[29]

सनातन-पंथी इस्लाम के अनुसार परमात्मा निरूपम है । उसके जैसा और कुछ भी नहीं ।[30] सूफी उसके साथ रागात्मक सम्बन्ध स्थापित कर उसे

27- के०ए० निजामी, रिलीजन एण्ड पोलिटिक्स इन इण्डिया, पृ0228 तथा प्राननाथ चोपड़ा, सम अस्पेक्ट्स आफ सोसायटी एण्ड कल्चर, पृ095-97.

28-निजामी रिलीजन एण्ड पोलिटिक्स इन इंडिया, पृ0 305.

29-के०ए० निजामी, रिलीजन एण्ड पोलिटिक्स इन इंडिया पृ0 230 तथा मध्य युगीन भारतीय संस्कृति (एक झलक) डा0 युसुफ हुसैन पृ0 30 तथा निकोलसन दि मिस्टिक्स आफ इस्लाम पृ0 16-18.

30-डा युसुफ हुसैन पृ0 30-32 तथा मध्ययुगीन भारतीय संस्कृति (एक झलक)

सोपम रूप दे देते हैं। समकालीन साहित्य में हमें इसका विवरण मिलता है। जब हर वस्तु में ईश्वर का रूप है तो वह उसके अनुरूप भी हो सकती है। इसी धारणा से प्रभावित होकर ईश्वर को सब राजाओं का राजा मानकर उसकी उपमा रात्रि के चन्द्रमा से करते हैं।[31]

हजरत मुहम्मद को पैगम्बर मानते हुए भी पुरुष कहना सूफी सिद्धांतो के ही अनुरूप है।[32]

धर्म ग्रन्थों के प्रति आस्था :-

धर्म का मूल स्रोत वस्तुतः तत्सम्बन्धी ग्रंथो में निहित रहता है। प्रत्येक धर्म का अपना एक पवित्र ग्रंथ होना आवश्यक समझा जाता है। इस्लाम में अहल-ए-किताब (धर्म ग्रंथ वाले) तथा मुशबह अहल-ए-किताब (धर्म जैसी किसी रचना वाले) इस्लाम से अन्य (दूसरा) धर्म वाले लोगों के लिए धर्मकर-जजिया देने पर मुसलमानों के साथ पद और अवसर की समानता का अधिकार देने की व्यवस्था है।[33] परन्तु बे-किताब (धर्म ग्रंथ हीन) काफिरों के लिए ऐसा कोई नियम नहीं।

हिन्दुओं में अनेक धर्म ग्रंथों को मान्यता प्राप्त है, जिनमें शीर्ष स्थान

31- दाउद कृत चांदायन 4/7 डा युसुफ हुसैन पृ0 44-48 एवं 63

32- वही, चांदायन, 6/1, डा युसुफ पृ0 30-31 मध्ययुगीन भारतीय संस्कृति (एक झलक) तथा एम0 एम0 पिकथल, दि ग्लोरियस कुरान।

33- के0 ए0 निजामी, रिलीजन एण्ड पोलिटिक्स इन इंडिया पृ0 308।

वेदो को प्राप्त है। इन्हें ईश्वरीय ज्ञान माना जाता है । विविध अनुष्ठानों एवं संस्कारों में वेद मंत्रों का उच्चारण आज भी सश्रद्धा होता है । वेदों का ज्ञाता होना एक बहुत बड़ा योग्यता है।[34] समकालीन साहित्य में हमें, विवाह के अवसर पर ब्राह्मण वेद पाठ करने का उल्लेख मिलता है।[35] समकालीन साहित्य में उल्लिखित धर्म-ग्रंथों में हमें रामायण का भी उल्लेख मिलता है ।[36] इसका अभिप्राय यह है कि, आलोच्यकाल में वेद और रामायण ही पूर्णत: लोक प्रतिष्ठित थे । अन्य ग्रंथ मान्य होते हुए भी कदाचित उस पद तक नही पहुँच पाये थे ।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि इस काल में भारतीय समाज में इस्लाम और हिन्दू धर्म दोनों का प्रचार था । इन दोनों में अनेक छोटे बड़े सम्प्रदाय पनप रहे थे जिनको लोक मान्यता प्राप्त हो रही था । इस्लाम का एक मुख्य सम्प्रदाय सूफीमत के रूप में प्रतिष्ठित था जिसके अनुयायी इस्लाम के मूल आध्यात्मिक सिद्धान्तों को पूर्ण मान्यता देते हुए भी भारतीय अद्वैतवाद, योग-साधना इत्यादि से प्रभावित थे । हिन्दू पौराणिक मान्यताओं और विश्वासों से भा वे अभिभूत थे ।[37]

- -

34- दाउद कृत चांदायन, 43/4

35- वही, 420/5-6

36-वही, 29/2 तथा पृ0 रा0 (का0 प्र0) पृ0 1965, छन्द 71

37- चंदायन पृ0 2-5, राम पूजन तिवारी सूफीमत साधना और साहित्य पृ0248
तथा चांदायन का सांस्कृतिक परिवेश, डा0 ज्ञान चन्द्र शर्मा, पृ0 34,

हिन्दू धर्म के वैष्णव, शैव और योगमार्गी सम्प्रदायों का उस काल के समाज में विशेष रूप से प्रचार था । बौद्ध और जैन धर्मों के अनुयायी भी यत्र-तत्र मिलते थे । जन साधारण में योगमार्गी नाथ-सिद्ध सम्प्रदायों का भी प्रचलन था । लोग इनसे प्रभावित थे । कुछ योगी अध्यात्मिक साधना के क्षेत्र से निकल समाज विरोधी कार्रवाइयों में भी उलझ रहे थे जिनका विरोध उनके अपने वर्ग के लोग भी करते थे । सामान्य जनता को अपने धर्म, धर्मग्रंथों, पर्व उत्सवों, धार्मिक परम्पराओं और विश्वासों के प्रति पूर्ण श्रद्धा थी ।

यह काल दो विभिन्न संस्कृतियों के परस्पर निकट आकर एक दूसरे को समझने के यत्न का काल था । धर्म के क्षेत्र में भी विचारों सिद्धांतों और मान्यताओं का आदान-प्रदान हो रहा था ।

धार्मिक विश्वास :-

हमारे अध्ययन काल के विविध धर्म ग्रंथों में धार्मिक कृत्यों के अन्तर्गत पूजा,[38] ब्रत,[39], तीर्थ स्थान - निवास,[41], तप,[42],

38- पृ0 रा0 (उ0प्र0) समय 6, छन्द 1 तथा समय 61, छन्द 198, चंदायन 1/6, 5/7 अलबेरूनीज, भाग 2 (सचाऊ) पृ0 144-145

39-उपरिवत्, समय 6, छन्द 2, श्री राम प्रताप त्रिपाठी, हिन्दुओं के ब्रत पर्व और त्योहार, पृ0 380

40-वही, समय34, छन्द 27, अलबेरूनीज इण्डिया। (सचाऊ) पृ0142, पृ0 257-262

41-वही, समय 34, छन्द 40, अलबेरूनीज इण्डिया, भाग 2, पृ0 146-148

42-वही समय 9, छन्द 8 पृ0रा0 (का0प्र0)पृ0594, छन्द 28 तथा पृ0145, छन्द 696, पृ0 113, छन्द 567, पृ0 9, पृ0 1237, छन्द 67-71 पृ02007, छन्द

यज्ञ[43], श्राद्ध[44], मन्दिर निर्माण[45], मूर्ति स्थापना[46] पवित्र नदियों-गंगा[47] यमुना[48], गोमती[49], में स्नान, नदियों के किनारे, भूमि शयन[50], धर्म कथा पठन[51], और श्रवण[52], इष्टदेव की आराधना[53], अनेक देवी-देवता आदि की भक्ति[54], कुल देवता[55], स्थान देवता[56], विष्णु-शिव, ब्रह्मा[57], सूर्य [58], गणपति[59].

- -

43- पृ० रासउ, (मा०प्र०गु०) 2:3:15, 2:3:19, 4:20:1, 4:10:9 पृ०रा० (का०प्र०) पृ० 2404, छन्द 233-236.

44-पृ०रा०,(उ०प्र०), समय 35, छन्द 45, चंदायन, 404/4

45-पृ० रासउ, (मा० प्र० गं०) 4:22:1, चंदायन, 20/1

46- वही,

47-पृ० रा० (का० प्र०) पृ० 1625 छन्द 115, चंदायन, 9/2

48-पृ० रा० पृ० 1125, छन्द 38, पृ०रा० (का० प्र०) खण्ड9, छन्द 151-152 पृ० 603, छन्द 5,

49-पृ०रा० पृ० 2390, छन्द 25, पृ० रा० (का० प्र०) पृ० 1172, छन्द 49 पृ० 2390, छन्द 25.

50-पृ० रा० (उ० प्र०) भाग 4, पृ० 629 छन्द 148 तथा प० रा०, खण्ड9, छन्द 159.

51-पृ० रा० (का० प्र०) पृ० 2504,छन्द 232, चंदायन 43/4, 29/2.

52-पृ०रा०, पृ० 2504, छन्द 233-236 चंदायन, 420/5-6

53-पृ० रा० (उ० प्र०) समय 58, छन्द 134.

54-वही, समय 1, छन्द 13० चंदायन, 138/3

55-पृ० 11, छन्द 79,

56-वही, समय 38, छन्द 11

57- वही समय 58, छन्द 137 प०रा० (का० प्र०) खण्ड 2, छन्द 87 खण्ड

शक्ति[60], शारदा[61], सरस्वती[62], यम[63], हरि[64], वाराह[65], इन्द्र[66] कुबेर[68], गन्धर्व[69], , , नाग[70], स्देह देवी [71], महामाया[72], गौरी-लक्ष्मी[73], आदि का पूजार्चन। इसके साथ ही जंत्र-मंत्र [74]. भूत-प्रेत[75],

- -

60-पृ0रा0 ﴾ का0 प्र0﴿ पृ0 52, छन्द 264 से पृ0 53, छन्द 268 पृ0490, छन्द 273 पृ0 753, छन्द 468-469, डा0 गौरी शंकर ओझा, पृ0 30-31

61-पृ0 रा0 ﴾ उ0 प्र0﴿ समय 1, छन्द 10, बीसलदेव पद 4-5

62-पृ0 रासउ, ﴾मा0 प्र0﴿गु﴿ 1:2:1, 1:2:2, बीसल देव पद 4-5

63-पृ0 रासउ, 3:17:39, 4:11:7, 8:3:5, 8:2:2, चंदायन, 164/6

64-पृ0 रासउ, 7:5:6, 2:3:20

65- वही, 7:6:26

66-वही, 1:3:21, चंदायन, 93/6-7

68-पृ0 रासउ 2:3:18

69-वही·4:11:7, चंदायन, 93/6-7

70- पृ0 रासउ 3:23:1,, चंदायन 116/1-2

71-पृ0 रासउ 4:24:1, पृ0 रा0 ﴾का0प्र0﴿ पृ0 2402, छन्द 123, पृ0148-109

73-पृ0 रासउ 8:32:6 तथा 7:6:11, चंदायन 175/2-5

72- पृ0 रासउ 8:24:102, चंदायन, 175/2-5

74- वही 3:23:2·

75-पृ0 रासउ ﴾ मा0 प्र0 गुं0﴿, 11:12:15·

दानव[76], राक्षस[77], आदि की भी मान्यता उपलब्ध होती है। यत्र-तत्र बलि[78], पाण्डव[79], प्रद्युम्न[80], अर्जुन[81], द्रोण[82], और जनमेजय[83], आदि की भी चर्चा की गई है। इससे स्पष्ट है कि विविध धर्म सम्प्रदायों के अन्तर्गत अनेक विविध धार्मिक कृत्यों एवं साधना पद्धति का विधान था। हिन्दु और मुसलमान दोनों जालन्धरी देवी के आराधक थे।

तंह हिन्दू वर मुसलमान। लब्ध विप्र सुआ तहि।

जवनिक कुल छत्री। कुलाल खोइस मिलि धावहि।[84]

सम कालीन साहित्य में हमें दसम समय के अन्तर्गत भगवान के दस अवतारों का वर्णन किया गया है, जिसमें मत्स्य[85], कच्छ[86], वाराह[87], नृसिंह[88],

- -

76- पृ0 वही, 2:3:34 तथा 6:10:1

77- वही, 7:8:1

78-वही, 2:3:15

79- वही, 2:3:19 तथा 2:1:16

80- वही 7:6:11:12

81 - वही, 7:17:3 तथा 12:33:9

82- वही, 12:3:16

83- वही, 4:20:1-2

84= पृ0 रा0 (का0 प्र0) पृ0 2030, छन्द 73

85- वही दसम समय पृ0 187

86- वही " पृ0 189

87- वही " पृ0 195

88-वही " पृ0 196

वमन,[89] परूशराम[90], राम[91], कृष्ण[92], कल्कि[93], तथा बौद्धावतार[94], का उल्लेख मिलता है। हिन्दू धर्म के अन्तर्गत ह बहुदेववाद की प्रवृत्ति थी और शिव, शाक्त तथा विष्णु और विष्णु के स्वरूप राम और कृष्ण सभी की पूजा हिन्दुओं के द्वारा की जाती थी। समकालीन साहित्य में इसका उल्लेख मिलता है।[95]

निश्चय ही तत्कालीन भारत में हिन्दू धर्म के विभिन्न देवी-देवताओं की आराधना के प्रति जन सामान्य और राजन्य वर्ग का सहिष्णु और समभाव का दृष्टिकोण था, जिसकी पुष्टि ऐतिहासिक विवरणों से भी होती है।[96]

हिन्दू तीज त्योहार, तीर्थयात्राएँ:-

तीज-त्योहार जन-साधारण के हर्षोल्लास और श्रद्धा-भक्ति की सामूहिक अभिव्यक्ति है जिनको धर्म के साँचे में ढाल कर मनाया जाता है। इनसे समाज की जीवन्त शक्ति और सांस्कृतिक चेतना का परिचय मिलता है। इसके पीछे लोक-विश्वास का बल निहित रहता है। जिससे ये जन-जीवन के अभिन्न अंग के रूप में प्रतिष्ठित होते है।

89- वही, दसम समय पृ0 202
90- वही, " " पृ0 205
91-वही " " पृ0210
92-वही " " पृ0 218
93-वही " " पृ0 243
94- वही " " पृ0 252
95- परमाल रासो, (का0प्र0) खण्ड 2 छन्द 87, पृ0 रा (का0 प्र0)पृ022 छन्द 76 एवं पृ0 2202, छन्द 578, पृ0 1965, छन्द 71 तथा पृ0 1574 छन्द 62 एवं पृ0 753, छन्द 468-469 एवं पृ0 छन्द 1988, छन्द 10-12
96- डा गौरी शंकर हीरानन्द ओझा, मध्यकालीन भारतीय संस्कृति,पृ030-31,

हिन्दुओं के त्योहार वास्तव में अनेक थे जो साल के प्रायः सभी महत्वपूर्ण ऋतुओं में होते थे। हिन्दू त्योहारों का विस्तृत रूप से हमें वर्णन प्राप्त होता है। हिन्दू त्योहार अधिकांश महिलाओं और बच्चों द्वारा मनाये जाते हैं।[97] विदेशी यात्री के संस्मरणों से भी हमें अनेक प्रचलित हिन्दु तीज-त्योहारों का वर्णन प्राप्त होता है, जिनमें, काश्मीर में मनसा जाने वाला " आगदुस" ।[98] "हिडोली चैत्र" [99] चैत्र की पूर्णिमा पर होने वाला बसन्त अथवा बसन्त का उल्लासपूर्ण त्योहार[100], वैशाख की तृतीया को मनाया जाने वाला "गैर-त्र" (गौरी तृतीया)[101], जिसमें शिव-पत्नी गौरी की पूजा होती थी। इसी प्रकार हमें पितृ-पक्ष की भी विशद जानकारी प्राप्त होती है, जो उस युग में प्रायः सभी हिन्दुओं द्वारा अपने मृत-पूर्वजों के स्मरण में मनाया जाता था।[102]

- -

97- अलबेरूनील, इण्डिया (सचाऊ)2, पृ० 178-184, तथा डॉ० गौरी प्रसाद साहू, पूर्वोद्ध, पृ० 260,

98- अलबेरूनी, पृ० 178, तथा साहू पृ० 260,

99- अलबेरूनीज, इण्डिया पृ० 178, साहू पृ० 260

100-अलबेरूनी पृ० 178,-179, साहू पृ० 260

101- वही , पृ० 179, साहू, पृ० 260

102- पृ० रा (उ० प्र०) समय 35, छन्द 45, चंदायन पृ० 404/4, अलबेरूनीज इण्डिया, (सचाऊ)2, पृ० 180, साहू पृ० 261.

आलोच्यकाल के साहित्यमें हमें हिन्दुओं के महत्वपूर्ण त्योहारों और उत्सवों का उल्लेख मिलता है, जिनमें होली[103], दीपावली[104], रामनवमी, नवदुर्गा, विजया दशमी (दशहरा) आदि राम पर्वों पर रामायण का पाठ होता था गीत गाए जाते । नवदुर्गा चैत्र महीने में शुक्ल पक्ष में पहले नौ दिन और क्वार के महीने में शुक्लपक्ष में प्रथम नौदिन मनाया जाताथा।[105]

श्रवण मास की पूर्णमासी ब्राह्मणों काप्रिय त्योहार था । सिल्क और पन्नो से बनी राखी भाइयों की कलाइयों पर बहनें या अन्य कुमारियाँ पहनाती थी जिसे प्रेम और स्नेह का प्रतीक समझा जाता था । इसे जेंवरिया खोटने अथवा भुजरियों को पवनी कहा गया है ।[106] बसन्त पंचमी मनाने का

- -

103- वही, 409/4-5, राम प्रताप त्रिपाठी, हिन्दुओं के व्रत पर्व और त्योहार पृ0 385, पृ0 रा0 (का प्र0) पृ0 671, छन्द 3 एवं पृ0 673, छन्द 17-18 एवं 21,

104- पृ 0 रा0 (का0 प्र0) पृ0 677 व 679, छन्द 19 व 34-35, चंदायन दाउद कृत 175/2-5 एवं 405/3, अलबेरूनीज इण्डिया, (सचाऊ)2, पृ0182

105- पृ0रा0 (उ0 प्र0) भाग 4, पृ0 869, छन्द 1-4 पृ0 रा0 (का0प्र0) 2021, छन्द 90, चंदायन, दाउदकृत, 29/2, 29/4 के एम0 अशरफ, लाईफ एण्ड कन्डीसन्स ऑफ दि पीपुल्स आफ हिन्दुस्तान, पृ0 203,

106-परमाल रासो, (का0 प्र0) खण्ड 10, छन्द 324 एवं छन्द 761, के0 एम0 अशरफ लाईफ एण्ड कन्डीशन्स ऑफ दि पीपुल्स ऑफ हिन्दुस्तान, पृ0 203-204.

भी वर्णन मिलता है। यह पर्व उल्लास और धूम-धाम से सम्पन्न होता था।[107] "शिवरात्री" मनाने का विवरण प्राप्त होता है । यह त्योहार फाल्गुन के महीने में चतुर्दशी को सम्पन्न होता था ।[108] सोमनाथ पूजा का भी उल्लेख मिलता है । यह व्रत सोमवार को रखने का विधान है ।[109] "एकादशी" जिसे देवठन प्रबोधिनी अथवा देवोत्थापिनी एकादशी भी कहते हैं । यह त्योहार कार्तिक शुक्ला एकादशी को पडता है ।[110] कृष्ण जीवन से सम्बन्धित नाटक आदि करने का उल्लेख मिलता है । सोने के सिंहासन पर कृष्ण की मूर्ति स्थापित की जाती थी ।[111]

हिन्दू धर्म में तीर्थ-यात्राओं का भी बहुत महत्व था इन तीर्थयात्राओं की चर्चा में उस काल के साहित्य व यात्रा- वृत्तान्तों में प्राप्त होती है ।

107- पृ०रा० {का० प्र०} पृ० 1562, छन्द 78-79, तथा अलबरूनी पृ० 178-179,

108- पृ० रा० {उ० प्र०} भाग 1, समय 6, दोहा 2, पृ० 139, पृ०रा० {का० प्र०}, पृ० 329, छन्द 1-2 एवं छन्द 6, अलबेरूनीज, इण्डिया, {सचाऊ} 2, पृ० 184,

109- चंदायन, दाउद कृत 251/6-7, 250/1-4, 402/4, 253/1, 254/1-2, 4, 255/6-7, 256/1, 271/6 तथा श्री राम प्रताप त्रिपाठी, हिन्दुओं के व्रत पर्व और त्योहार, पृ० 380,

110- चंदायन दाउद कृत 405/7 एवं राम प्रताप त्रिपाठी , हिन्दुओं के व्रत पर्व और त्योहार पृ० 288-289,

111- पृ० रा० {का० प्र०} पृ० 1562, छन्द 69 से , पृ० 1564, छन्द 69,

तीर्थयात्राएँ हिन्दुओं के लिए अनिवार्य न थी बल्कि वैकल्पिक और कीर्ति-प्रदायी हैं । कोई व्यक्ति किसी पवित्र प्रदेश, किसी पूजनीय प्रतिमा या पवित्र नदियों के जल में स्नान के लिए यात्रा पर चलता था । वो उन स्थानों में पूजा करता, प्रतिमा की अर्चना करता, भेंट-दान आदि देता, अनेक प्रार्थना गीत करता और वन्दना कर, व्रत रखता और ब्राह्मणों पुरोहितों आदि को दान-दक्षिणा देता था । फिर वह सिर और दाढ़ी मुड़वा लेता था और घर लौट आता था ।[112] उस काल में आनन्दोत्सव के साथ हिन्दू लोग समय-समय पर सूर्य और चन्द्रग्रहण भी मनाते थे ।[113]

मुसलमानों के त्यौहार, तीर्थ यात्राएँ आदि :-

मुस्लिम समाज में भी कुछ त्योहार और तीर्थयात्राएँ लोकप्रिय थी । अधिकांश मुसलमान मक्का की तीर्थयात्रा करते थे, जबकि कुछ ईद के मौके पर होने वाली इबादतों में शामिल होते थे । सम्भवतः इस सम्बन्ध में भारतीय वातावरण और परम्पराओं का मुस्लिम लोगों पर प्रभाव पड़ा था ।[114] हिन्दू भाइयों की भांति बदलते समय के साथ इन लोगों ने अपने त्योहर का

112- अलबेरूनीज इण्डिया, (सुधाज) 2, पृ 142,

113- वही, पृ0 107-114 तक.

114- के0 एम0 अशरफ, लाइफ एण्ड कन्डीशन्स आफ दि पीपुल ऑफ हिन्दुस्तान, पृ0 204,

सामाजिक और मनोरंजनात्मक महत्व था । प्रसिद्ध " नौरोज" सामान्यत: ईरानी नव-वर्ष के दिन मनाया जाता था । यह बसन्त ऋतु का त्योहार था जो बड़े उद्यानों और नदी-तट पर स्थित बगीचों में मनाया जाता था और इसके मुख्य आकर्षण थे संगीत और रंग-बिरंगे फूल।[115] किन्तु यह त्योहार मुसलमानों के उच्च वर्गों तक ही सीमित था ।[116] मुसलमानों के बीच कट्टर धार्मिक लोग ईद (ईद-उल-फित्र) और ईद-उल-जुहा को सर्वाधिक महत्व देते थे ।[117] जैसा कि अब तक यह प्रथा प्रचलित है कि इन त्योहारों की तारीखें चांद के देखे जाने पर निर्भर करती थी । विदेशी यात्रियों ने विशेष रूप से इन दोनों ईद-त्योहारों के पूर्व निकलने वाले शाही जुलूसों का उल्लेख किया है । सुल्तान गयासुद्दीन तुगलक शाह के पुत्र अब्दुल मजाहिद मुहम्मदशाह के विषय में उल्लेख मिलता है कि ईद के पूर्व की रात्रि को सुल्तान अमीरों, दरबारियों, प्रसिद्ध व्यक्तियों और "आयज्जा" तथा सचिवों प्रबन्धकों, महल के अफसरों (नकाबों) सैनिक प्रधानों, गुलामों और नये पत्राचार करने वालों को बिना किसी अपवाद के, पोशाकें भेजता है । ईद के दिन सभी हाथी सिल्क,

- -

115- अमीर खुसरो "एजाज-ए- खुसरवी भाग 4, पृ0 399-330 तथा
(नूह सिपेहर" पृ0 367-368 एवं कुल्लियात-ए-खुसरवी भाग 1
पृ0 15-16,

116- के0 एम0 अशरफ, लाइफ एण्ड कन्डीशन्स आफ दि पीपुल ऑफ हिन्दुस्तान
पृ0 205,

117- अमीर खुसरो का एजाज-ए-खुसरवी, भाग 4, पृ0 326-327

स्वर्ण और रत्नों से सजाये जाते हैं और उनमें से सोलह हाथी ऐसे थे, जिन पर कोई सवारी नहीं कर सकता था वे केवल सुल्तान के द्वारा उपयोग में लाए जाते थे। प्रत्येक पर रत्न जटित एक सिल्क का छत्र रहता था और सोने का दण्ड खड़ा कर दिया जाता था, तथा प्रत्येक की पीठ पर एक आसन रहता था जो सिल्क से ढँका एवं रत्नों से जड़ा रहता था।[118]

मुसलमानों का दूसरा महत्वपूर्ण त्योहार " शबे-बारात" (अभिलेख की रात्रि) था जो शाबान महीने की चौदहवीं रात को मनाया जाता था।[1] मुसलमानों के धार्मिक दृष्टि से उत्साही लोग यह पूरी रात खास इबादतें करने और पवित्र कुरआन पढ़ने में बिता देते थे। इस अवसर पर मस्जिदों में मोमबत्तियां भेजने और फूल झाड़ियाँ, पटाखे आदि छोड़ने के लोक प्रिय रिवाज का भी हमें उल्लेख मिलता है।[120] सम्भवतः शबे- बरात मनाने के लिए फुलझाड़ियाँ पटाखे छोड़ने का सर्व-साधारण प्रचलन शुरू हुआ उसकी प्रेरणा मुसलमानों को हिन्दुओं और ईसाइयों से मिली होगी।[121] दिल्ली के सुल्तान इसमें गहरी दिलचस्पी लेते थे। उदाहरणार्थ, फिरोजशाह तुगलक यह त्योहार चार दिनों

- -

118- दी रेहला ऑफ इब्नबतूता, पृ0 60 एवं 62-63

119- डा के0 एम0 अशरफ लैब्ड कन्डीशन्स ऑफ दि पीपुल ऑफ हिन्दुस्तान पृ0 205,

120- अमीर खुसरो एजाज-ए-खुसरवी, भाग 4, पृ0 324.

121- डा0 के0 एम0 अशरफ, लाईफ एण्ड कन्डीशन्स, पृ0 205.

तक मनाता था । शबे-बारात निकट आने पर वह फुलझडियाँ और पटाखे ढेर के ढेर खरीदवाता था । शाबान की लगातार 13वी , 14 वी, और 15 वी, रातों को फुलझडियाँ और पटाखों के छोडे जाने की धूम रहती थी । पटाखे और फुलझडियाँ चार बडे थालों में भरकर उन सामान्यजनों के बीच बाँटे जाते थे जो फीरोजाबाद में इकट्ठे होते थे । इन थालो के संगीतज्ञ और गायक भी होते थे जो संगीत को धारा बहाते चलते थे।[122]

मुहर्रम[123] यानिकि शोक का पर्व भी मुसलमानों में प्रचलित था जो खास कर शियाओं कट्टर और धार्मिक विचारों के मुसलमानों द्वारा मनाया जाता था जो मुहर्रम के प्रथम दस दिन कर्बला के वीरों की शहादत के विवरण पढने में बिताते थे और उनकी आत्माओं की चिरशांति के लिए खास तौर पर प्रार्थनाएँ करते थे । वे दिल्ली के सुल्तानों के आधीन इन निहित सीमाओं से बाहर न जाते थे । [124] इस अवसर पर जुलुसो में ताजिये निकलते थे जिन्हे मकबरों का लघु रूप माना जा सकता है ।

मुसलमानों की लोकप्रिय तीर्थयात्राएँ, साधारणत: संतों, औलियों

122- अफीफ, तारीख-ए-फीरोजशाही, पृ0 365-67 तथा के0 एम0 अशरफ, पृ0 206,

123- एजाज-ए- खुसरवी, भाग 4, पृ0 328,

124- के0 एम0 अशरफ0 पृ0 206-207.

और दिव्यपुरुषों की कब्रें ﴾ दरगाह﴿ होती थी। इन संतों की मरण -वार्षिकियाँ का "उर्स" 125 बडे उत्साह से मनाये जाते थे। दिल्ली के सुल्तान मुबारक शाह, शावल आदि मई, जून में अपने अनेक बहादुर सिपाहियों के साथ धार्मिक व्यक्तियों के मकबरों पर तीर्थ - यात्रा के लिए जाते थे। 126.

- -

125- मीरात-ए- सिकन्दरी, फतेहुल करीम, प्रेस, बम्बई, पृ0 सं0 1308 अल हिजरी पृ0 103,

126- ﴾ तारीख-ए- मुबारक शाही ﴿, याहिया बीन अहमद, सरहिन्दी, अनुवादक के0 एम0 बसु0 , ओ, आई, बी0, 1932, पृ0 238.

ग्रन्थ-सूची

हिन्दी और राजस्थानी § प्राकृत, अपभ्रंश आदि सहित §

1- चन्दबरदाई- "पृथ्वीराज रासो, कविराव मोहन सिंह द्वारा सम्पादित तथा साहित्य-संस्थान, राजस्थान विश्व विद्यापीठ,
चार भाग, उदयपुर §राजस्थान§ द्वारा वि0 सं0 2011-2012 में प्रकाशित ।

2- नरपति नाल्ह- "बीसलदेव रासो" हिन्दी-परिषद विश्व विद्यापीठ प्रयाग§ प्रथम संस्करण , 1953 §

3- अमीर खुसरो - कविता-कौमुदी§ भाग 1§रामनरेश त्रिपाठी द्वारा सम्पादित एवं नवनीत प्रकाशन, बम्बई द्वारा प्रकाशित अष्टम संस्करण , 1954 §

4-मौलाना दाऊद दलमई- "चंदायन" सम्पादक-डा0 परमेश्वरी गुप्त, प्रकाशन-हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर §प्रा0§ लि0 प्रथम संस्करण 1964

5-ज्योतिरीश्वर- "वर्ण-रत्नाकर" कवि शेखराचार्य ठाकुर कृत §सम्पादक-सुनील कुमार चटर्जी एवं बबुआ मिश्र, प्रकाशन-रायलएशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, बिब0 इण्डिका, कलकत्ता 1940 §

6- विद्यापति ठाकुर- §क§ कीर्तिलता, सम्पादक-वासुदेवशरण अग्रवाल , प्रकाशक-साहित्य सदन, चिरगाँव § झाँसी §

﴾ख﴿ विद्यापति की पदावली सम्पादक-श्री रामवृक्ष शर्मा, बेनीपुरी, प्रकाशन हिन्दी पुस्तक भण्डार, लहेरियासराय, प्रथम संस्करण , 1982 वि0 सं0

﴾ग﴿ "विद्यापति की पदावली श्री बसन्त कुमार माथुर प्रकाशक, भारतीय भाषा भवन, दिल्ली प्रथम संस्करण 1952

7﴿ पृथ्वीराज रासो भाग1-6 चन्दवरदाई, सम्पादक डा0 श्याम सुन्दर दास

8- पृथ्वीराज रासउ, चंदबरदाई सम्पादक डा0 माताप्रसाद गुप्त

9-बीसलदेव रास, नरपति नाल्ह सम्पादक डा0 माताप्रसाद गुप्त

10-पृथ्वीराज रासो, चन्दवरदाई ﴾ ना0 प्र0 स0 संस्करण ﴿

11-चंदायन, डा0 माताप्रसाद गुप्त, प्रकाशन आगरा प्र0 सं0 1967,

﴾12﴿ पृथ्वीराज रासो, चन्दवरदाई, सम्पादक डा0 वी0 पी0 शर्मा

13-परमाल रासो, अज्ञात रचयिता, सम्पादक डा0 श्याम सुन्दर दास ।

प्रारम्भिक मुस्लिम विद्वानों, विदेशी यात्रियों के वृत्तान्त आदि

§1§ अलबेरूनी का भारत	अनु0 रजनीकान्त शर्मा, सचाउकृत अंग्रेजी अनुवाद से अनूदित
§2§ अबूरेहान अलबेरूनी	अलबेरूनी इण्डिया § दो भागों में § । अनुवाद क डा0 एडवर्ड सी0 सचाऊ प्रकाशन एस0 चाँद एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली प्रथम भारतीय पुनर्मुद्रण , 1964
§3§ इब्नबतूता	§1§ वायजेज डी इब्नबतूता§ तुहफतन नज्जर फी घराइबुल अम्सर वा अजायबुल अफासर § टेक्स्टे अरेबी , अकम्पेन डयन ट्रेडुक्सन पार सी0 डिफ्रेमरी एट0 डा0 बी0 आर0 सेंगुइनेत्री 4, टोम्स § पेरिस§ 1914§

§2§ दि रेहला ऑफ इब्नबतूता सटिप्पणी अनुवाद कर्ता डा0 महदी हुसैन, ओरिएण्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा 1953 ।

§3§ "इब्नबतुताज ट्रेवल्स इन इण्डया एण्ड अफ्रीका, लेखक एच0 ए0 आर0 गिब § रोटलेज ऐंड सन्स लि0 ब्राडवे हाउस, कार्टर लेन, लन्दन 1929 में प्रथम बार प्रकाशित §

§4§ ट्रेवल्स ऑफ इब्नबतूता अनुवादक-रेवरेन्ड सेमुएल ली, लन्दन 1929

§1§ अमीर खुसरो :-

§क§ अफजल-उल-फवैद, रिवजी प्रेस दिल्ली § तिथि रहित §

§ख§ आईन-ए-सिकन्दरी सम्पादक-मौलाना- सईद अहमद फरूकी ।

§ग§ एजाज-ए- खुसरवी § पाँच भागों में §नवलकिशोर प्रेस , लखनऊ 1875 -76

§घ§ किरानुस-सा देन नवलकिशोर प्रेस , लखनऊ मार्च 1871

§च§ कुल्लियात-ए-खुसरवी § दो भागों में § अलीगढ़ 1918

§छ§ खजाए नुल-फतह सम्पादक-सैयद मोईनुल हक, मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़ जून 1927 तथा अंग्रेजी अनुवाद, दि केम्पेन आॅफ अलाउद्दीन खिलजी अनुवादक प्रो0 मुहम्मद हबीब, प्रकाशन- डी0 बी0 तारपोर वाला सन्स एण्ड कं0 हार्न बी रोड, बम्बई 1931

§ज§ देवल रानी खिज्रखाॅ अलीगढ़ 1917

§झ§ नूह सिपेहर सम्पादक-मुहम्मद वाहिद मिर्जा, पब्लिश्ड फाॅर दि इस्लामिक रिसर्च एसोसियेशन प्रकाशक-ज्योफ्रे कम्बरलेज§ आई0 आर0 ए0 सिरीज नं012§ आॅक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, कलकत्ता 1950 §

§ट§ मतला-उल-अनबार§ दो भागों में § लखनऊ 1884 पुनः वही प्रकाशक मुर्तजबाई प्रेस, दिल्ली § तिथि रहित §

§ठ§ लैला-मजनूॅ, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, तृतीय संस्करण दिसम्बर 1880 § 1298 ए0 एच ? §

§ड§ हश्त-बहिश्त, सम्पादक-मौलाना सैयद सुलेमान अशरफ, अलीगढ़, 1918

2- अहमद यादगार:- तारीख-ए-शाही §तारीख-ए-सलातीन-ए अफगाना § सम्पादक-हिदायत हुसैन, बिबलियोथिक इण्डिका वर्क नं0 257 कलकत्ता 1939

3-जिया-उद्दीन बरनी:- §क§ तारीख-ए-फिरोजशाही, सम्पादक सैयद अहमद खॉ, बिब0 इण्डिका एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, कलकत्ता , 1862

§ख§ फतवा-ए-जहॉदारी "दि पलिटिकल थ्योरी ऑफ दि देल्ही सल्तनत नामक अंग्रेजी में अनूदित अनुवादक-प्रो0 हबीब और डा0 §श्रीमती§ अफसर अमर सलीम खॉ, किताब महल दिल्ली§ तिथि रहित §

4-फखरूद्दीन मुबारक शाह:- तारीख-ए-फखरूद्दीन मुबारक शाह सम्पादक ई डेनिसन रॉस, प्रकाशन-रायल एशियाटिक सोसाइटी 74 ग्रेसवेनोर स्ट्रीट ; लन्दन 192

5-फीरोजशाह तुगलक फतुहात-ए-फीरोजशाही:-

सम्पादक-शेख अब्दुर्रशीद प्रकाशन- डिपार्टमेंट ऑफ हिस्ट्री मुस्लिम यूनिवर्सिटी ,अलीगढ़ 1954

6- मिन्हाज-उस-सिराज:- तबकात-ए-नासिरी, बिब0 इण्डिका कलकत्ता 1864, पुनः वही अंग्रेजी अनुवाद§दो जिल्दोंमें अनुवादक, मेजर एच0 जी0 रेवर्टी, गिलवर्टएवं

रिविंगटन, लन्दन 1881 ।

§7§ मुहम्मद कासिम हिन्दू बेग फरिश्ता:

गुलशन-ए-इब्राहिमी उर्फ तारीख-ए-फरिश्ता§ फारसी मूल ग्रन्थ, बम्बई , 1832§ पुन: जॉन ब्रिग्स द्वारा अंग्रेजी अनुवाद हिस्ट्री ऑफ दि राइज ऑफ मोहमडेन पावर इन इण्डिया टिल दि ईयर 1612§ चार भागो में§ प्रकाशन आर0 कम्ब्रे एण्ड कम्पनी कलकत्ता 1909 -10

§8§ शम्स-ए-सिराज अफीफ:-

तारीख-ए-फिरोजशाही, सम्पादक मौलवी वलायत हुसैन, बिब0 इण्डिया कलकत्ता 1861 ।

(1) हिन्दी साहित्य का आदिकाल- डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी (राष्ट्र-भाषा परिषद पटना द्वि० सं० 2013 वि०

(2) हिन्दी साहित्य की भूमिका डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी (द्वि सं०)

(3) हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी

(4) हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास- (प्रथम-भाग) सं० डा० राजबली पाण्डे

(5) हिन्दवी साहित्य का इतिहास गार्सा दतासी अनु० डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय

(6) हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास- डा० रामकुमार वर्मा(ई० 1954) तृतीय सं०

(7) राजस्थानी साहित्य का इतिहास डा० पुरुषोत्तम मेनारिया

(8) भाषा साहित्य और संस्कृति डा० राम विलास शर्मा

(9) राजस्थानी साहित्य की गौरवपूर्ण परम्परा- श्री अगरचन्द नाहटा

(10) मध्यकालीन भारतीय संस्कृति गौरी शंकर हीराचन्द्र ओझा (प्र० सं०1945)

(11) प्राचीन भारत के प्रसाधन अत्रिदेव, भारतीय ज्ञान पीठ (प्र० सं०1958

(12) पूर्व मध्यकालीन भारत का इतिहास (प्रथमसंस्करण) डा० अवध बिहारी पाण्डे

(13) शैव मत(प्रथम संस्करण) डा० यदुवंशी

(14) हिन्दुओं के व्रत पर्व और त्योहार (प्र० सं०) राम प्रताप त्रिपाठी

(1) अलबेरूनी का भारत — अनु० रजनीकान्त शर्मा, सचाऊ कृत अंग्रेजी अनुवाद से अनुदित ।

(2) चन्देलकालीन बुन्देल खण्ड का इतिहास — डा० अयोध्या प्रसाद पाण्डे

(3) जाति भेद का उच्छेद — डा० बी० आर० अम्बेदकर

(4) धर्म और समाज — डा० राधाकृष्णन

(5) ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास — श्री प्रभुदयाल मीतल

(6) भारतीय संस्कृति — डा० लल्लन जी गोपाल

(7) भारत वर्ष में विवाह और परिवार — श्री के० एम० कापड़िया

(8) भारतीय संस्कृति के मौलिक तत्व — डा० सत्यनारायण पाण्डेय

(9) भारतीय धर्म-व्यवस्था — श्री वाचस्पति गैरोला

(10) भारत की संस्कृति और कला — डा० राधा कमल मुखर्जी

(11) भारतीय संस्कृति और सभ्यता — डा० प्रसन्न कुमार आचार्य

(12) भारतीय धर्मों का इतिहास — डा० आर० जी० भण्डारकर

(13) भारत का इतिहास — डा० ईश्वरी प्रसाद

(14) भारतीय संस्कृति के स्रोत — डा० भगवत शरण उपाध्याय

(15) मानव और संस्कृति — श्री श्यामाचरण दूबे

(16) मध्यदेश — डा० धीरेन्द्र वर्मा

(17) मध्ययुगीन भारतीय संस्कृति — डा० युसुफ हुसेन

(18) राजपूत राजवंश — डा० अवधबिहारी लाल अवस्थी ।

(19) संस्कृति के चार अध्याय — श्री रामधारी सिंह दिनकर

(20) सांस्कृतिक भारत — डा० भगवतशरण उपाध्याय

(21) संस्कृति संगम — आचार्य क्षिति मोहन सेन

(22) सांस्कृतिक निबंध — डा० भगवतशरण उपाध्याय

(23) हिन्दू संस्कार — डा० राजबली पाण्डेय

(24) हिन्दू सभ्यता — डा० राधाकुमुद मुकर्जी

(25) हिन्दू विवाह का संक्षिप्त इतिहास — श्री हरिदत्त वेदालंकार

(26) भारतीय मध्यकालीन संस्कृति — लईक अहमद

अंग्रेजी

§1§ अली अमीर , दि एथिक्स ऑफ इस्लाम कलकत्ता , द्वितीय संस्करण, 1951

§2§ अली मौलवी मुहम्मद, दि होली कुरआन,§अंगरेजी अनुवाद§ द्वितीय संस्करण, अहमदिया अंजुमन इशात-ए-इस्लाम, लाहौर , 1920 ।

§3§ अल्टेकर ए0 एस0 एजुकेशन इन ऐन्सिएन्ट इण्डिया, नन्द किशोर एण्ड ब्रदर्स बनारस, तृतीय संस्करण, 1948

§4§ अल्टेकर ए0 एस0 दिस्टेट एण्ड गावरमेन्ट इन एन्सिएन्ट इण्डिया § बनारस 1949§

§5§ अल्टेकर ए0 एस0 दि पोजिशन आॅफ दी मैन इन हिन्दू सिविलिजेशन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, तृतीय संस्करण 1962 ।

§6§ अल्टेकर ए0 एस0 , ए0 हिस्ट्री ऑफ बनारस, प्रकाशक-बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी 1937

§7§ अल्टेकर ए0 एस0 राष्ट्रकूटाज एण्ड देयर-टाइम्स §पूना§ 1934

§8§ अरबेरी ए0 जे0 § सम्पादक§ दि लिगॅसी ऑफ पर्सिया आक्सफोर्ड§ एट द कैलेन्डेरियन प्रेस§

§9§ मैशरफ के एम0 लाइफ एण्ड कंडीशन ऑफ दि पीपल ऑफ हिन्दुस्तान जे0 ए0 एस0 बी0 भाग -1 1935 आर्टिकुल नं0 7 पुन: वही प्रकाशक जीवन प्रकाशन नई दिल्ली प्रथम संस्करण अप्रील 1959

§10§ अहमद अजीज़, पालिटिकल हिस्ट्री एण्ड इन्सटिट्यूशन आफॅ दि अरली टर्किश एम्पायर ऑफ देहली § 1906-1290 ई§ लाहौर, 1949

§11§ अहमद अजीज

(11) अहमद अजीज स्टडीज इन इस्लामिक कल्चर इन द इण्डियन एन्वायरमेंट केलेरेन्डन प्रेस, आॅक्सफोर्ड , 1964

(12) इलियट एवं डाउसन दि हिस्ट्री आॅफ इण्डिया ऐज टोल्ड बाई इट्स आन हिस्टोरियन्स (आठ भागों में) लंदन 1867

(13) एलफिन्सटन, माउन्टस्टुअर्ट , द हिस्ट्री आॅफ इण्डिया (दि हिन्दू एण्ड मोहेमडेन पीरियड्स) जान लंदन , चतुर्थ संस्करण 1957

(14) ओझा डा० पी० एन० आस्पेक्ट्स आॅफ मेडियॅवल इण्डिया कल्चर, पुस्तक भवन, राॅंची प्रथम संस्करण , अप्रैल 1961

(15) ओझा डा० पी० एन० नार्थ इण्डियन सोशल लाईफ ड्यूरिंग मुगल पीरियड, ओरियंटल पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1975

(16) ओझा, जान केम्पबेल, दि मिस्टिक्स , एसेटिक्स एण्ड सेन्ट्स आॅफ इण्डिया लंदन , 1905

(17) ओझा जान केम्पवेल, दि ब्रम्हण थेईस्ट एण्ड मुस्लिम आॅफ इण्डिया लंदन, 1907

(18) डा० ए० के० [illegible] आर्ई दि अरब ट्रेवलर्स

(19) डा० ए० बी० अवस्थी, राजपूत पोलिटी

(20) डा० ए० रशीद, सोसायटी , एण्ड कल्चर इन मेडिकल इण्डिया,

(21) प्रो० ए० बी० एम० हबीबुल्लाह दि फाउन्डेशन आफ मुस्लिम रूल इन इण्डिया

(22) प्रो० ए० एल० बाशम, दि वन्डर दैट वाज इण्डिया,

(23) के० दामोदरन, मेन एण्ड सोसायटी इन इण्डिया फिलासफी ।

(24) कबीर हुमायूॅं दि इण्डियन हेरिटेज एशिया पब्लिशिंग हाउस बम्बई, तृतीय संस्करण , नम्बर 14, 1955

§25§ कारपेन्टर जे0 ई0 थेइज्म इन मेडियॅवल इण्डियाT, लंदन , 1921

§26§ की एफ0 ई0 ईण्डियन एडुकेशन इन एनसियेन्ट एण्ड लैदर टाइम्स, ओ0 यू0 प0 डॅडली ब्रदर्स , किंग्सवे, लंदन, 1938 ।

§27§ की एफ0 ई0 ऐन्मिमेन्ट इण्डियन एडुकेशन , ओ0 यू0 पी0 हम्फरी मिलफोर्ड, लंदन, 1918

§28§ की एफ0 ई0 ए0 हिस्ट्री ऑफ एडुकेशन इन इण्डियाT एण्ड पाकिस्तान ओ, यू0 पी0 चतुर्थ संस्करण , लंदन 1964

§29§ की एफ0 ई0 -हिस्ट्री ऑफ हिन्दी लिटरेचर§ दि हेरिटेज ऑफ इण्डियाT सीरीज § प्रकाशक- वाई0 एम0 सी0 ए0 पब्लिकेशन हाउस द रसेल स्ट्रीट, कलकत्ताT, 1933

§30§ कीथ ए0 बी0 ए हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर § दि हेरिटेन ऑफ इण्डियाT सीरीज§ 1993

§31§ केनेडी पी0 हिस्ट्री ऑफ दि ग्रेट मुगलस, भाग 1, कलकत्ताT 1904

§32§ केयर रोन, ओरियंट अंडर दि कैलिफ्स § अनुबादक- एम0 खुदाT बक्श § कलकत्ताT 1920

§33§ कुमार स्वामी ए0 के0 सबी लंदन, 1913

§34§ कूपर एलिज बेथ , दि हरेम एण्ड दि परदा, टी0 फिशर अनविन लि0 कलकत्ताT प्र0 प्रथमावृत्ति 1915 ।

§35§ कूक विलियम रिलिजन एण्ड फोकलोर ऑफ नार्दन, इण्डियाT, लंदन 1926

§36§ केनेडी पी0 हिस्ट्री ऑफ दि ग्रेट मुगल्स भाग 1 कलकत्ताT 1904

§37§ कोडिमसरियट एम0 एल0 हिस्ट्री ऑफ गुजरात , भाग-1 बंबई 1938

§38§ गनी एम० ए० प्रिमुगल पर्सियन इन हिन्दुस्तान इलाहाबाद, 1941

§39§ ग्रियर्सन जी० ए० दि मार्डन गनोक्युलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान
ए० एस० व्ही० कलकत्ता 1889

§40§ ग्रियर्सन जी० ए० बिहार पीजेन्ट लाईफ कलकत्ता 1885

§41§ ग्रॅब्स फ्रेन्क पोयरपोन्ट, ए हिस्ट्री ऑफ एजुकेशन दि मेक मिलन एण्ड क०
न्यूयार्क, 1911

§42 § गेरेट जी० टी० दि लिगेसी ऑफ इण्डिया क्लेरेन्डन प्रेस, आक्सफोर्ड 1962

§43§ घूरये जी० एल० इण्डियन कास्ट्यूम्स पापुलर बुक डिपो, बंबई 1951

§44§ घूरेय जी० एम० कास्ट क्लास एण्ड ऑक्युपेशन पापुलर बुक डिपो, बंबई,
अक्टूबर 1961

§45§ घोष जे० सी० बंगाली लिटरेचर, आक्सफोर्ड 1948

§45§ चोपड़ा प्राणनाथ, सम आस्पेक्ट्स ऑफ सोसायटी एण्ड कल्चर ड्यूरिंग
दि मुगल एम § 1526-1707 ई०§ शिवलाल अग्रवाल एण्ड कंपनी §प्रा०§
लि० आगरा द्वितीय संस्करण 1963

§46§ चोपड़ा प्राणिनाथ, सम आस्पेक्ट्स ऑफ सोशल लाइफ ड्यूरिंग मुगल एज,
शिवलाल अग्रवाल एण्ड कं० § प्रा§ लि०, आगरा प्रथम संस्करण, 1963

§47§ जाफर एस० एम० एजुकेशन इन मुस्लिम इण्डिया, प्रकाशक- एस० मुहमद सा
खाँ, पेशावर प्रथम संस्करण 1936

§48§ जाफर एस० एम० सम कल्चरल आस्पेक्ट्स ऑफ मुस्लिम रूल इन इण्डिया पेश
प्रथम संस्करण, 1939

§49§ जाफर एस० एम० मेडियॅवल इण्डिया, अंडर मुस्लिम किंग्स, भाग-2 दि
राइज एण्ड फॉल ऑफ दि गजनवीन पेशावर, प्रथम संस्करण 1940

§50§ जाफर शरीफ कानून-ए-इस्लाम, जी0 ए0 हरक्लोट्स द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित मद्रास, द्वितीय संस्करण, 1863

§51§ निर्दल के0 बी0 ए हिस्ट्री ऑफ हिन्दी लिटरेचर इलाहाबाद , 1955

§52§ जेम्स हेस्टिंग्स ऐन साइक्लोपीडिया ऑफ रिलिजन एण्ड एथिक्स बारह भागों में एडिनवर्ग 1915

§53§ बोड सी0 ए0 एम0 , दि स्टोरी ऑफ इण्डियन सिविलिजेशन, मैक मिलन एण्ड कम्प0 लि0 सेन्ट मार्टिन स्ट्रीट , लंदन 1936

§54§ जौहरी डा0 आ0 सी0 फीरोज तुगलक , शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्प0 आगरा 3, प्रथम संस्करण, 1968,

§55§ राइट्स मेर्र टी0 इंडियन इस्लाम, हम्फरी मिलफोर्ड, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी, लंदन-1930

§56§ टाड जेम्स, अनाल्स ऐण्ड ऐन्टिक्वीटीस ऑफ राजस्थान तीन भागों में हम्फरी मिलफोर्ड, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी , लंदन, 1920.

§57§ डॉउ अलेक्जेन्डर , दि हिस्ट्री ऑफ हिन्दुस्तान, तीन भागों में, लंदन 1879-1872

§58§ डॉगलस पियेजन जविडन हॅनम नोवेल, हरेम लाईफ , लंदन 1931

§59§ डेविस सी0 कोलिन्स ऐन हिस्टोरिकुल एटलस ऑफ दि इण्डियन पेनिन्सुला, ऑक्सफोर्ड, यूनिवर्सिटी प्रेस द्वितीय संस्करण 1949

§60§ ताराचंद, इनफ्लुएन्स ऑफ इस्लाम ऑन इंडियन कल्चर, इलाहाबाद 1946

§61§ थामस एडवर्ड , दि क्रोनिकल्स ऑफ दि पठान किंग्स ऑफ देहली , लन्दन 1871 वही मुंशीराम मनोहर, ओरियटल पब्लिशर्स, दिल्ली 6, प्रथम भारतीय सस्करण दिसम्बर 1967

§62§ थॉमस एफ0 डब्ल्यू , म्युचुअल, इन्फ्लुएन्सेज ऑफ मोहम्डेन्स एण्ड हिन्दूज इन इण्डिया , केंब्रिज , 1892

§63§ थॉमस पी0 इण्डियन वीमेन थ्रू दि एजेज , एशिया पब्लिशिंग हाउस , बंबई 1964

§64§ इन भूपेन्द्रनाथ स्टडीज इन इण्डियन सोशल पॉलिटि, कलकत्ता , प्रथम द्वारा प्रकाशित § 1944§

§65§ दत्ता एन0 के0 ओरिजिन एण्ड ग्रोथ ऑफ कास्ट इन इण्डिया

§66§ दासगुप्त टी0 सी0 आस्पेक्ट्स ऑफ बंगाली सोसाइटी कलकत्ता ,यूनिवर्सिटि 1985.

§67§ दास गुप्त शशिभूषण , आब्सक्योर रिलिजियस कल्चर ऐस बैकग्राउन्ड ऑफ बंगाली लिटरेचर , कलकत्ता, यूनिवर्सिटी 1946.

§68§ दिवाकर आर0 आर0 बिहार थ्रू दि एजेज, बिहार सरकार के लिए प्रकाशित ओरियन्ट लोगमैन्स प्रथम प्रकाशन जनवरी 1959

§69§ दबॉयस अब्बे जे0 ए0 हिन्दू मॅनर्स, कस्टम्स एण्ड सेरेमॉनिज क्लेरेन्डन प्रेस ,आक्सफोर्ड, 1897

§70§ दे एस0 के0 अरली हिस्ट्री ऑफ दि वैष्णव फेथ एण्ड मूवमेंट इन बंगाल, कलकत्ता, 1942

§71§ नाजिम मुहम्मद , दि लाईफ एण्ड टाईम्स ऑफ सुल्तान महमूद ऑफ गजनी, केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी, प्रेस, लंदन 1931

§72§ निजामी खालिख अहमद, दि लाईफ एण्ड टाईम्स ऑफ शेख फरीद उ-द्दीन गंजे शकर, प्रकाशक-डिपार्टमेंट ऑफ हिस्ट्री मुस्लिम यूनिवर्सिटी अलीगढ़ प्रथम प्रकाशित 1955

§73§ निजामी खालिद अहमद, सम आस्पेक्ट्स ऑफ रिलिजन एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया ड्यूरिंग दि थर्टीन्थ सेन्चुरी प्रकाशक - एशिया पब्लिशिंग हाउस बंबई 1961

§74§ निजामी खालिद अहमद, स्टडीज इन मेडियेवल इण्डियन हिस्ट्री, कास्मोपोलिटन पब्लिशर्स बन्दरबाग , अलीगढ़ 1956 ।

§75§ पूल जान एच0 फेमस वीमेन आफ इण्डिया कलकत्ता 1954

§76§ प्रकाश ओम , फुड एण्ड ड्रिंक इन एन्सियेन्ट इण्डिया , प्रकाशक- मुन्शीराम मनोहर लाल, दिल्ली 6 प्रथम संस्करण, 1961

§77§ प्रसाद बेनी, दि हिन्दू मुस्लिम क्वेश्चन्स, इलाहाबाद, 1941

§78§ प्रसाद ईश्वरी ए हिस्ट्री ऑफ कुरौना तुर्क्स इन इण्डिया दि इण्डियन प्रेस , इलाहाबाद 1948

§79§ प्रसाद ईश्वरी, हिस्ट्री ऑफ मेडियेवल इण्डिया, दि इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद 1968

§80§ पाण्डेय ए0 बी0 दि फर्स्ट अफगान इम्पायर इन इण्डिया § 1451-1526 ई0§ कलकत्ता 1956

§81§ प्राइस मेजर डेविड कोनोलोजिकल, रिट्रोस्पेक्ट ऑफ मेमॉयर्स ऑफ दि प्रिंसिपल इवेन्ट्स ऑफ मोहम्मडेन हिस्ट्री फ्रॉम दि डेथ ऑफ दि अरेबियन लेजिस्लेटर टू दि एक्सेशन हिस्ट्री आफ दि एम्परर अकबर § फ्रोम ओरिजिनल पर्सियन आथारिटिज § तीन खण्डों में लंदन, 1812

§82§ फरक्यूहर जे0 एन0 आउट लाइन्स ऑफ दि रेलिजियस लिट रेचर्स इन इण्डिया हम्फरी मिलफोर्ड, 1920

§83§ फरक्यूहर जे0 एन0 मार्डन, रेलिजियस मूवमेन्ट्स इन इण्डिया, लंदन, 1924

§84§ वर्थ ए0 दि रेलिजन्स ऑफ इण्डिया , लंदन , 1921

§85§ बनर्जी जमिनी मोहन, हिस्ट्री ऑफ फीरोज तुगलक, प्रकाशक मुंशीराम मनोहर लाल, पोस्ट बाक्स नं0 1165, नई सड़क, दिल्ली 6, प्रथम प्रकाशित, जून, 1967

§86§ ब्राउन ई0 जी0 , ए लिटररी हिस्ट्री ऑफ पर्सिया, चार खण्डों में लंदन, 1909

§87§ बृजभूषण जमीला, इण्डियन ज्वेलरी, ओरनामेन्ट्स एण्ड डेकोरेटिव डिजाइन्स , तारपोरेवाला, सन्स एण्ड कंपनी लि0 प्रथम संस्करण बंबई

§88§ बेवेरिज हेनरी, ए कॉम्प्रेहेन्सिव हिस्ट्री ऑफ इण्डिया , तीन भागों में लंदन

§89§ बेले टी0 ग्राहम, स्टडीज इन नार्थ इण्डियन लैंगवेजेज, लंदन, 1938

§90§ बोस शिवचंद, दि हिन्दूज ऐज दे आर, कलकत्ता 1881

§91§ ब्लैण्ड एन दि पर्सियन गेम ऑफ चेस, लंदन, 1950

§92§ भट्टाचार्य जोगेन्द्रनाथ, हिन्दू कास्टम एण्ड सेक्ट्स , थक्कर स्पिंक एण्ड कं0 कलकत्ता , 1896

§93§ भारत पण्डे विष्णु नारायण ए कम्प्रिहेन्सिव स्टडी ऑफ सम ऑफ दि लीडिंग म्यूनिक सिस्टम ऑफ दि फिफ्टीन्थ, सिक्सटीथ, सेवेन्टीन्थ एण्ड एइटीन्थ सेंचुरी, अलरी बुकडिपो, बंबई ।

§94§ भारत खण्डे विष्णुनारायण, ए हिस्टोरिकल सर्वे ऑफ म्यूनिक इन अवर इण्डिया बुंबई , 1934

§95§ भूयान एस0 के0 अनास ऑफ दि देल्ही बादशाहत, प्रकाशक दि गवर्नमेण्ड ऑफ आसाम इन दि डिपार्टमेन्ट ऑफ हिस्टोरिकल एण्ड ऐन्टिक्वेरियन स्टडीज, गोहाटी, 1947

§96§ मजूमदार आर0 सी0 § सम्पादक§ दि हिस्ट्री एण्ड कल्चर आफ दि इंडियन पीपुल भाग 5 § दि स्ट्रगल फार एम्पायर§ भारतीय विद्याभवन, बंबई , प्रथम बार प्रकाशित , मई 1957

§97§ मर्रे एच0 जे0 आर0 ए0 हिस्ट्री ऑफ चेस, क्लेरेन्डन प्रेस, आक्सफोर्ड -1913

§98§ मिर्जा एम0 डब्ल्यू0 दि लाइफ एण्ड वर्क्स ऑफ अमीर खुसरो लन्दन 1929

§99§ मिश्र डा0 जयकान्त ए हिस्ट्री ऑफ मैथिली लिटरेचर भाग-1 इलाहाबाद 1949

§100§ मुन्शी के0 एम0 दि देल्ही सल्तनत भारतीय विद्याभवन बम्बई ..50

§101§ मुखर्जी आर0 के0 ऐन्सिटोन्ट इण्डियन एडुकेशन लन्दन द्वितीय संस्करण 1951

(102) मूलर एफ0 मेक्स सेकरेड बुक्स ऑफ दि ईस्ट (भाग-25) दि लॉज ऑफ अनु(अनुस्मृति का अंगरेजी अनुवाद) क्लेरेन्डन प्रेस, ऑक्सफोर्ड 1886

(103) मूलर एफ0 मेक्स0 सेलेक्टेड एजेज ऑफ लैंग्वेज माइथोलाजी एण्ड रेलिजन भाग-1 लोंगमेन्स ग्रीच एण्ड कम्पनी लन्दन 1881

(104) मेज ऐडम दि रेनासा ऑफ इस्लाम लन्दन 1937

(105) मेक निकाल नोयेल इण्डियन थीइज्म लन्दन 1915

(106) मेकक्रिन्डले जे0 डब्ल्यु 0 ऐन्सिएन्ट इण्डिया ऐज डेस्क्राइब्ड बाई मेंगास्थनीज एण्ड अरियन कलकत्ता संशोधित संस्करण 1960

(107) मीरलेन्ड डब्ल्यु0 एच0 दि एग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुस्लिम इंडिया केम्ब्रिज 1929

(108) मीरलैन्ड डब्ल्यु0 एच0 दि एग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुस्लिम इण्डिया केम्ब्रिज 1929

(109) यासीन मुहम्मद , ए सोशल हिस्ट्री ऑफ इस्लामिक इण्डिया, 1605-174 प्रकाशक- दि अपर इण्डिया पब्लिशिंग हाउस लि0 लखनऊ , 1958

(110) युसुफ अली, मेडियॅवल इण्डिया, सोशल एण्ड इकोनोमिक कन्डीशन्स , लंन्द 1932

§111§ राय एच0 सी0 दि डाइनेस्टिक हिस्ट्री आँफ नार्दन इण्डिया, भाग 2 कलकत्ता यूनिवर्सिटी, 1936 ।

§112§ रीo जे0 डी0 दि मोहमडेन्स §1001-1761 , लोंगमेन्स सीन एण्ड कं0 कलकत्ता 1894,

§113§ रब्बी खुन्दकार फजली , दि ओरिजिन आँफ दि मुसलमान्स आँफ बंगाल § हकीकत-ए-मुसलमान-ए बंगला§, थाक्केर स्पिक एण्ड0 को0 कलकत्ता 1895

§114§ राँस ई0 डेनिसन, ऐन अल्फाबेटिकल लिस्ट आँफ दि फीस्ट्स एण्ड होलीडेज आँफ दि हिन्दूज एण्ड मोहमडेन्स कलकत्ता 1914

§115§ राजाराम मोहन राय, दि वोमेन आफ इण्डिया ।

§116§ लाॅ एन0 एन0 प्रोमोशन , आँफ लर्निंग इन इण्डिया, ड्यूरिंग मोहमडंन रूल, लोंगमेन्स, ग्रीन एण्ड को0 , कलकत्ता, 1916

§117§ लाल किशोरीशरण, हिस्ट्री आँफ दि खिलजोज §1290-1320§ दि इण्डियन प्रेस लि0, इलाहाबाद 1950

§118§ लाल किशोरीशरण, ट्वोलाईट आँफ दि सल्तनत, एशिया पब्लिशिंग हाउस बम्बई, 1963

§119§ लाल किशोरी शरण, स्टडीज इन मेडियॅवल इण्डियन हिस्ट्री , रंजीत पिंटर्स [illegible] एण्ड पब्लिशर्स, चाँदनी, चौक, दिल्ली , 1966

§120§ लूनिया बी0 एन0, इवाॅल्यूशन आँफ इण्डियन कल्चर, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा 3, चतुर्थ संस्करण, 1967

§121§ लूनिया बी0 एन0 सम हिस्टोरियन्स आँफ मेडियॅवल इण्डिया, प्रकाशक,

§122§ लेनपूल स्टेनले, मेडियॅवल इण्डिया अण्डर मोहम्डेन रूल § सन 712-1764§ भाग-1, सुशील गुप्ता § भारत§ लि0 कलकत्ता प्रथम संस्करण 1951

§123§लेनपूल स्टेनले, बाबर, आक्सफोर्ड, 1899

§124§ बसु पी0 ए0 ए ब्रीफ स्केच ऑफ दि ओरिजिन एण्ड हिस्ट्री ऑफ दि कारन्ट सिस्टम इन इण्डिया ।

§125§ वसु नागेन्द्र नाथ ए शार्ट हिस्ट्री ऑफ दि इण्डियन कायस्थाज, कलकत्ता 1915

§126§ वाहिद डा0 ए0 इवोल्यूशन ऑफ मुस्लिम एजुकेशन मुद्रक -अब्दुल हमीद ऑ, लाहौर ।

§127§वारसी सुलतान हमीद, हिस्ट्री ऑफ दि अलाउदीन खिलजी प्रकाशक राय साहब राम दयाल अग्रवाल , इलाहाबाद 1930

§128§ विद्यापति पदावली बगीय § अंग्रेजी अनुवाद§अनुवादक-कुमार स्वामी एण्ड सेन, लन्दन, 1915

§129§ विद्यभूषण सतीशचन्द्र, हिस्ट्री ऑफ दि मेडियॅवल स्कूल ऑफ इण्डियन लॉजिक कलकत्ता, यूनिवसिटी 1909

§130§ विद्यभूषण सतीशचन्द्र, हिस्ट्री ऑफ दि मेड्यॅवल स्कूल ऑफ इण्डियन लोजिक, कलकत्ता, यूनिवसिर्टी, 1909

§131§ विश्वनाथ एस0 पी0 रेसियल सिन्थेसिस इन हिन्दूज कल्चर, लन्दन 1928

§132§ वेंकटेश्वर एस0 वी0 इण्डियन कल्चर थ्रू दि एजेज भाग, 1 जोगमेंन्स 1928

§133§ वैद्य सी0 वी0 , हिस्ट्री ऑफ मेडियॅवल हिन्दू इण्डिया § तीन खण्डों में § पूना, 1921

§134§ शास्त्री ए0 एम0 ए0 आउटलाईन्स ऑफ इस्लामिक कल्चर, दि बंगलोर प्रेस, बगलोर 1938

§135§ शामाशास्त्री आर0 कौटिल्य अर्थशास्त्र § अंग्रेजी अनुवाद§ प्रकाशक- मैसूर प्रिटिंग एण्ड पब्लिशिंग हाउस , मैसूर, प्रथम संस्करण 1961

§136§ शाह के0 टी0 स्प्लैन्डर , दैट वाज इण्डिया बंबई 1925

§137§ श्रीवास्तव डा0 आशीर्वादी लाल सल्तनत ऑफ दिल्ली, शिवलाल अग्रवाल एण्ड को0 § प्रा0 § लि0 आगरा तृतीय संस्करण 1959

§138§ श्रीवास्तव डा0 आशीवादी लाल मेडियॅवल इण्डियन कल्चर, शिवलाल अग्रवाल एण्ड को0 § प्रा0 § लि0, आगरा, प्रथम संस्करण, 1964

§139§ श्रीवास्तव0 डा0 आशीर्वादी लाल, मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, अस्पताल रोड आगरा2 द्वितीय संशोधित संस्करण 1973

§140§ श्रीवास्तव डा0 आशीर्वादी लाल, स्टडीज इन इण्डियन हिस्ट्री , शिवलाल अग्रवाल कं0 § प्रा0§ लि0 आगरा खण्ड, प्रथम संस्करण 1974 ।

§141§ संकलिया हंसमुख डी, दि यूनिवर्सिटी ऑफ नालन्दा, मद्रास , 1934

§142§ संजना जे0 ई0 कास्ट एण्ड आउटकास्ट, थाक्कर, वैस्पंक एण्ड कं0 लि0 बम्बई प्रथम बार प्रकाशित 1946

§143§ सरकार एस0 पी0 एजुकेशनल आईडियाज एण्ड इन्सटिट्यूशन्स इन एन्सियेन्ट इण्डिया, पटना ।

§144§ सरकार सर जदुनाथ § सम्पादक§ दि हिस्ट्री ऑफ बंगाल §1200-1757§ भाग 2, कलकत्ता, प्रथम संस्करण, 1948

§145§ सरकार सर जदुनाथ, इण्डिया थ्रू दि एजेज, प्रकाशक, एम0 सी0 सरकार एण्ड सन्स, कलकत्ता, तृतीय संस्करण, 1925

§146§ सरकार डी0 सी0 सम आस्पेक्ट्स ऑफ दि आर लिएस्ट सोराल हिस्ट्री ऑफ इण्डिया हम्फरी मिलफोर्ड, ओ0 यू0 पी0 लन्दन, 1928

§147§ सहाय डा0 विनोद कुमार, एजुकेशन एण्ड लिर्निंग अन्डर दि ग्रेट मुगल्स प्रकाशक -ए0 एस0 लजी, न्यू लिटेट्चर पब्लिशिंग कम्पनी, 12 बॉके हाउस फोर्ट बम्बई। प्रथम संस्करण 1968

§148§ स्कॉट जोसेफ ऐन इन्ट्रोडक्शन टू इस्लामिक ला, आक्सफोर्ड, 1964

§149§ स्टील फ्लोय ऐनरि इण्डिया थ्रू दि एजेज, जार्ज सटलैज एण्ड सन्स लन्दन, चतुर्थ संस्करण 1919।

§150§ स्टूअर्ट एमिल कास्ट इन इण्डिया मैथ्युएन एण्ड कम्पनी लि0 लन्दन प्रथम बार प्रकाशित 1930

§151§ स्मिथ बी0 ए0 दि ऑक्सफोर्ड, हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, ऑक्सफोर्ड द्वितीय संस्करण, 1923

§151§ स्टेवर्ट चार्ल्स, दि हिस्ट्री ऑफ बंगाल, कलकत्ता 1903

§152§ सिंह एस0 एन0 तथा वसु एन0 के0 हिस्ट्री ऑफ पास्टीट्युशन इन इण्डिया भाग 1 कलकत्ता, सितम्बर 193[illegible]

§153§ सिक्वीरा टी0 एन0 दि एजुकेशन ऑफ इण्डिया, ऑक्सफोर्ड चतुर्थ संस्करण 1952

§154§ सुभान जॉन ए० सूफीज्म इट्स सेन्ट्स एण्ड श्राईन्स , लखनऊ पब्लिशिंग हाउस, हजरतगंज , लखनऊ , मार्च 1938

§155§ सेन असीत कुमार, पीपुल एण्ड पॉलिटिक्स इन अरली मेडियॅवल इण्डिया §1206-1398§ कलकत्ता , 1963

§156§ सेन राय साहब दिनेश चन्द्र दि फॉक लिटरेचर ऑफ बंगाल, कलकत्ता यूनिवर्सिटी, 1920

§157§ सेन राय साहब दिनेश चन्द्र, दि वैष्णव लिटरेचर ऑफ मेडियॅवल बंगाल, कलकत्ता यूनिवर्सिटी, 1917

§178§ हक एस० माईनउल, हिस्ट्री ऑफ दि तुगलक्स, पाकिस्तान हिस्टोरकल सोसायटी, करॉची सितम्बर 1959

§159§ हटन जे० एच० कास्ट इन इण्डिया ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लन्दन चतुर्थ संस्करण 1963

§160§ हरटोग फिलिप , दि इण्डियन एजुकेशन, पास्ट एण्ड प्रेजेन्ट

§161§ हबीब , मुहम्मद , सुल्तान महमूद ऑफ गजनी, प्रकाशक तारपोरेवाला सन्स एण्ड कम्पनी, हार्नबी, रोड बम्बई, 1927

§162§ हबीब मुहम्मद, हजरत अमीर खुसरो ऑफ देल्ही, डी० बी० तारपोरेवाला सन्स एण्ड कम्पनी, हार्नबी रोड, बम्बई 1927

§163§ हबीब उल्ला ए० बी० एम० , दि० फाउन्डेशन ऑफ मुस्लिम रूल इन इण्डिया प्रकाशक- शेख मुहम्मद अशरफ , कश्मीरी बाजार लाहौर , सितम्बर 1945

§164§ हार्डी पी० हिस्टोरियन्स ऑफ मेडियॅवल इण्डिया , ल्यूजक एण्ड कम्पनी लि० 46, ग्रेट रसेल स्ट्रीट , लन्दन, 1960

लन्दन, सप्तम संस्करण, 1960

§166§ हुसैन आगा महदी, दि राईज एण्ड फाल ऑफ मुहम्मद बिन तुगलक, ल्यूजक एण्ड कम्पनी , 46 ग्रेट टसेल स्ट्रीट लन्दन 1938

§167§ हुसैन आगा महदी, तुगलक डाईनेस्टी, प्रकाशक, थाक्कर स्पिंक एण्ड कं0, कलकत्ता प्रथम संस्करण 1963

§168§ हुसैन युसूफ , गिलम्पेस ऑफ मेडियॅवल इण्डियन कल्चर, एशिया पब्लिशिंग हाउस बम्बई 1962 ।

§169§ हैण्डले थोमस होल्बिन, इण्डियन ज्वेलरी, § जर्नल ऑफ इण्डियन आर्ट, 1906-1909 लन्दन ।

§170§ हबीब खलीफ अहमद निजामी, ए कम्प्रेटिव हिस्ट्री आफ इण्डिया, वाल्यूम काइफ

§171§ हैवेल ई0 बी0, बनारस दि सेकरोड सिटी, डब्ल्यू0 थाक्कर एण्ड कम्पनी, द्वितीय संस्करण , लन्दन, 1805

§172§ हैवेल ई0 बी0 दि हिस्ट्री ऑफ आर्यन, रूल इन इण्डिया, जार्ज जी0 हरेप एण्ड कम्पनी लि0 लन्दन, 1918

§178§ होदीवाला, एस0 स्टडीज इन इण्डो -मुस्लिम हिस्ट्री , बम्बई, 1939

§174§ त्रिपाठी आर0 पी0 सम आस्पेक्ट्स ऑफ दि मुस्लिम ऐडिमिनिस्ट्रेशन , इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद , 1936

§176§ मो0 हबीब, सुल्तान महमूद आफ गजनी

§177§ निकोल्स, दि मिस्टिक ऑफ इस्लाम

§178§ एम0 एम0 पिक्थल दि ग्लोरियस कुरआन

शोध-पत्रिकाएं

§1§ अध्ययन- इलाहाबाद

§2§ इण्डियन- एन्टिक्वेरी ।

§3§ इण्डियन -अकाइब्स ।

§4§ इण्डया एण्ड हिस्टोरिकल रिसर्च ।

§5§ इण्डियन कल्चर ।

§6§ इण्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टर्ली ।

§7§ इस्लामिक कल्चर हैदराबाद ।

§8§ इलाहाबाद यूनिवर्सिटी , स्टडेज ।

§9§ जर्नल ऑफ अलीगढ़ हिस्टोरिकल रिसर्च इन्सटिट्यूट

§10§ जर्नल ऑफ उत्तर प्रदेश हिस्टोरिकल सोसायटी ।

§11§ जर्नल ऑफ इण्डियन हिस्ट्री

§12§ जर्नल ऑफ गंगानाथ झा रिसर्च इन्सटिट्यूट, इलाहाबाद ।

§13§ जर्नल ऑफ दि एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, कलकत्ता ।

§14§ जर्नल ऑफ मुस्लिम इन्स्टिट्यूट अलीगढ़

§15§ जर्नल ऑफ मुस्लिम यूनिवर्सिटी अलीगढ़

§16§ जर्नल ऑफ एण्ड प्रेरिन प्रोसीडिंग्स ऑफ दि रायल एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, कलकत्ता ।

§17§ प्रोसिडिंग्स ऑफ इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस ।

§18§ भारतीय विद्या, बम्बई ।

§19§ नागरी प्रचारिणी पत्रिका, काशी §हिन्दी§

§20§ राजस्थान भारती §हिन्दी§

§21§ हिन्दी अनुशीलन

शोध प्रबंध

§1§ हेरम्ब चतुर्वेदी- सोसायटी आॅफ नार्थ इण्डिया इन द सिक्सटीन्थ सेन्चुरी एज डिपेक्टेड थ्रु कानटम्पोरेरी हिन्दी लिटरेचर, इलाहाबाद वि० वि० 1990 § अप्रकाशित§

§2§ बी० एन० एस० यादव- सोसायटी एण्ड कल्चर इन नार्दन इण्डिया इन द ट्वेल्थ सेन्चुरी § प्रकाशित§ सेन्ट्रल बुक डिपो इलाहाबाद 1973